

ॐ

श्री जगदीश्वरी विजयते

चारण

अखिल-भारतीय-चारण-सम्मेलन

का

त्रैमासिक-मुखपत्र

—:~:~:~:—

सत्य अभय स्वातंत्र्य उपासक,—सिखा भरण-जीवन का मार्ग ।

ज्ञानधर्म-उद्बोधक चारण,—रहा सदा साधक युगधर्म ॥

वर्ष १]

विजया-दशमी

[अंक १]

विक्रम सम्वत् १९९५

जगन्माता से

मां !

कहते हैं, तेरी स्तुति शिव महानिबन्ध करते हैं । फिर, मैं कहूँ कि तेरी स्तुति-कण तो कितना पागलपन है ?

तथापि इतनी सी प्रार्थना तो सुन लेना मा !

रहै विराजी हृदय में, मङ्गलदा तव मूर्ति ।

अमिनव नित उन्नत रहै, सेवा हित तेन स्फूर्ति ॥

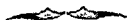
हां यह तो ठीक किन्तु मा ! तू अक्षरपूर्णा है; और तेरे असंख्य परिश्रमी दाने २ को क्यों तरसते हैं ?

और ये बलि के भूक पशु ! क्या उनकी तू मा नहीं, जगद्गवा ?

तू जगदीश्वरी भी है; तो तेरे साम्राज्य में यह भाई २ की गलांतराशी क्यों ?

वेर !

देवि ! दया कर के जरा समझा—तरा गति लखी न परे !



आत्मनिवेदन

अखिल भारतीय चारन सम्मेलन के उद्देश्योंकी पूर्ति के लिये उसके द्वारा एक मासिक मुखपत्रको निकाला जाना. सम्मेलनके तीसरे अधिवेशन (वि. सं. १९८३ पुष्कर) में जरूरी समझा गया और स्वर्गीय डा. किशोरसिंहजी वारहट्ट M. R. A. S. (London) स्टेट हिस्टोरियन पटियाला (पंजाब)के सिपुर्द यह काम किया गया ! उन्होंने बड़ी योग्यतापूर्वक " चारन " मासिक-पत्रका सम्पादन प्रारंभ किया; वि. सं. १९८५ के प्रारंभ में " चारन " का प्रथम अंक निकला और अंत में ग्यारहवां अंक. सम्पादक महोदय पटियाला नरेश की सेवा में थे. अतः फुरसत न मिलने से ये ग्यारह अंक भी ठीक समयपर नहीं निकलते रहे और उक्त कारण से ही वे बारहवां अंक तक भी न निकाल सके और पत्रका प्रकाशन रुक हो गया.

सम्मेलन के तीसरे अधिवेशन में चौथे अधिवेशनका निमंत्रण मारवाड की ओर से था किन्तु मारवाडी बन्धु करोव दश वर्षतक अपने यहां अधिवेशनकी आयोजन न कर सकें ! जब सम्मेलन का अधिवेशन ही खडाई में पड़ा हुआ था तो " चारन " के संचालन की योजना का विचार कैसे हो सका था !

आखिर संवत् १९९४ के चैत्र मास में जोधपुर में चौथा अधिवेशन हुआ. और " चारन " के प्रकाशन का सुचारु कामने आया ही ! पहिले का तजरवा हुए भी इस कार्य के योग्य डा. किशोरसिंहजी जैसा अन्य कोई जाति में न बना, फिर उन्हीं के सिपुर्द यह काम किया गया ! किन्तु अत्यंत खेद है, अपनी बीमारी व खास कर प्रथम दिवस कारण से इस निश्चय के बाद छः मास तक वे एक अंक भी न निकाल सके और गत शरत् पौर्णिमा को सारी जाति को निराश्रय करके इस संसार से विदा हो गये !!!

उपरोक्त दुर्घटना से " चारण " के प्रकाशन की बात स्वभावतः सम्मेलन के पांचवें अधिवेशन पर जा पड़ी पांचवां अधिवेशन गत ज्येष्ठ कृष्ण ७, ८, ९, को राजकोट (काठियावाड.) में हुआ और उस में तै पाया की " चारण " मासिक रूप में नहीं, त्रैमासिक रूपमें निकाला जाय और केवल हिन्दी में ही नहीं उसका कुछ भाग गुजराती का हो जिसका सम्पादन मुहंरा (गुजरात) निवासी गढ़वी श्री. खेतसिंहजी मिश्रण करें. और हिन्दी भागका सम्पादन इन पंक्तियों के लेखकों को सौंपा जाय, और सहकारी रहे और शुभकर्णजी एम. ए. एल. एल. बी. !

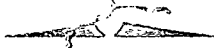
× × × × ×

यह एक, अजीब सा निश्चय था कि जिस कार्य के लियें अपनी जाति के द्वितीय विद्वान को उपयुक्त समझा गया उसी कार्य के लिये साधारण सूक्ष्म

व्यक्ति को योग्य मान लिया। और इस से भी अजीब यह बात मालूम हो सकती है कि इस निश्चय को स्वीकार कर लेने का साहस लेखकने कैसे कर लिया !

निश्चय ही लेखक के लिये यह साहस एक विडंबना होती। यदि वह अपने को इस कार्य के योग्य समझ कर उसे स्वीकार करता ! किन्तु बात ऐसी नहीं ! जैसे, किसी और को जब तक सम्मेलन का प्रधानमंत्रित्व स्वीकार न हुआ उसने, सम्मेलन के प्रारंभ से लेकर गत अधिवेशन तक अपना नाम उक्त पदके लिये देने में सम्मेलन की आज्ञा को मान दिया वैसे ही इस बार बहुत अनुनय विनय के साथ इस कार्य के लिये अपनी असमर्थता प्रकट करने पर भी जब सम्मेलन संचालककी सर्वसम्मति यही आज्ञा रही तो लेखक को शिर झुका लेने के सिवाय और कोई मार्ग नजर नहीं आया !

इस वस्तुस्थिति में भी पाठक यदि आज्ञा करेंगे कि उन्हें वैसे ही गवेषणा-पूर्ण लेख, मौलिक विवेचन, मार्मिक टिप्पणियाँ एवं काव्यकलापूर्ण कवितायें समुदाय दफ्ती ओर से पढ़ने को मिलें जैसी कि उन ग्यारह अंकों में है तो उन्हें अवश्य ही निराशा का सामना करना पड़ेगा किन्तु यदि विद्वान् जाति हितैषियों ने सतत सहयोग दिया और श्री जगदम्बा की दया रही तो यथाशक्ति इस प्रयत्न में कोई कमी न की जायेगी कि “चारण” इपराजित, प्रभाव के होतेहुए भी कुछ उपयोगी व मनोरंजक सिद्ध हो ! अपने इस चयन के प्रमाण में यह अंक ही पाठकों के सामने है !



सम्मेलन का पांचवां अधिवेशन

अखिल भारतीय चारण सम्मेलन का पांचवां अधिवेशन निश्चित अर्थात् पर गत ज्येष्ठ कृष्ण ७, ८ व ९ को राजकोट (काठियावाड़) में बड़ी धूमधाम से करने में गुजराती बंधु सफल हुए, अध्यक्ष महोदय को रेलवे स्टेशन पर उन के साथियों सहित पुष्पहार पहिना कर राजकीय बग्घी में बिठला बाजे गाजे के साथ जुलूस बना कर उन्हें अपने निवासस्थान पर ले जाते, खुले अधिवेशन में आम लोगों का इतनी बड़ी तीर्दी में प्रेमपूर्णक शामिल होना चारणोत्तर विद्वानों के चारण जातिश्री महत्ता एवं उपयोगिता पर कविता एवं भाषन होना और श्रीमान् राजकोट नरेश की ओरसे ही सम्मेलन में आने वाले प्रतिनिधियों के लिये भोजन आदि की सब व्यवस्था का होना ऐसी बातें थी जो पहिले के अधिवेशनों से अद्वितीय थीं ! स्वागत समिति का प्रबंध भी सराहनीय था, और सराहनीय था स्वयंसेवकों का प्रेमपूर्ण सेवामात्र !

पूर्वकथित बातों में जैसे यह सम्मेलन अद्वितीय रहा वैसे और कुछ बातों में भी यह अद्वितीय ही रहा, जैसे—विषय निर्वाचनी समिति में किसी विषय का व्यवस्थित रूप से निर्णय न होना, जो प्रस्ताव पास हुए उनके बनाने एवं उनके महत्व की ओर उदासीनता, प्रांतीय कार्यकर्ताओं की प्रांतीय कार्यसंलग्नता के कारण सम्मेलन कार्य को गौणता प्राप्त हो जाना। इस अंतिम बात के लिये अधिकांश सम्मेलन प्रेमी बहुत उद्विग्न रहे थे। वे यह देख कर खिन्न से होते थे कि सम्मेलन के लिये एकत्रित लोगों से सम्मेलन के कार्यालय खर्च, प्रचारकार्य, व उसके मुखपत्र और रिपोर्ट छपवाने के लिये अत्यावश्यक धन-संग्रह के लिये तो लोगों से अपील करने का भी विरोध किया जाय और उन्हीं लोगों को प्रेरणा कर हजारों रुपये प्रांतीय कार्य के लिये इकट्ठे कर लिये जायें ! किन्तु वातावरण को अशान्त न करने और परस्पर सहयोगमें अडचन पैदा न होने देने के खयाल से उन्होंने ने अपने मन को समझा लिया कि उस प्रांत को जहां सम्मेलन हो रहा है, सम्मेलन के वहाने से कुछ लाभ होता है तो वह सम्मेलन को तो अभीष्ट ही होना चाहिये। परन्तु इसका अनिष्ट परिणाम यह हुआ कि आज सम्मेलन के पास राजकोट अधिवेशन की रिपोर्ट छपवाने लायक भी वैसे नहीं हैं, फिर और जरूरी कार्यों की तो बात ही कहां !

•) ~ × • × × × × ×

प्रांतीय कार्यकर्ताओं की इसी मनोवृत्ति के कारण श्री चारण हितवर्द्धक-सभा जैसी जमी हुई प्रांतीय सभा होते हुए भी उन्हें सम्मेलन से संबंध बनाये रखने के लिये “बृहत्-गुजरात-चारण-सभा” का ढांचा खड़ा करना पड़ा। सम्मेलन कार्यकर्ताओं की समझ में अब तक न आया कि प्रांतीय कार्यकर्तागण चा. हि. सभा को ही सम्मेलन से संबंधित प्रांतीय सभा मान लेने में इतने क्यों चौंक पड़े थे ! शायद वे भयभीत से थे कि हितवर्द्धक सभा के इकट्ठे किये हुए पैसों पर कभी सम्मेलन अपना अधिकार न कर ले। किन्तु इसका कारण ? खैर। उन्होंने जो ठीक समझा किया और सम्मेलन ने भी उसे मान लिया। अब देखा चाहिये बृहत्-गुजरात-चारण-सभा सम्मेलन के अंगस्वरूप होकर वास्तवमें कुछ करती है या एकठ को सभा मात्र सिद्ध होती है।

• × • × × × × +

अध्यक्ष महोदय का भाषण इतना प्रेरक व आकर्षक नहीं मालूम हुआ जितना देनेकी आशा थी। इसका कारण यह भी हो सकता है कि भाषण तैयार करने का समय बहुत कम मिला था। वाल्टर कृत कमेटी के प्रबंध में इतने विस्तार से कहा गया कि जिनका इस सवाल से निकटका संबंध था वे राजस्थानी में भी उकता गये थे।

सम्मेलन के अध्यक्ष का चुनाव या यों कहे कि पसंदगी प्रायः पैदा वक्त

पर हुआ करती है और ऐसी हालत में अध्यक्ष जल्दी २ में जो कुछ उस समय सुझ पड़ता है लिख कर सुना देते हैं ।

x x x x x

स्वागताध्यक्ष का भाषण अति संक्षिप्त था और शायद रिवाज पूरा करने की दृष्टि से ही लिखा पढ़ा गया था. अतः उसमें किसी जातीय प्रश्न पर कुछ भी विवेचन सुनने को नहीं मिला ।

x x x x x

सम्मेलन में कृपापूर्वक सहयोग देनेवाले चारणेत看 प्रमुख सज्जनों में श्री राजकोट नरेश के अनुज श्रीमान् प्रद्युम्नसिंहजी महोदय, राजकोट नरेश के दीवान दरबार सा. वीरावाला के सुपुत्र श्री. भोजवाला, श्रीमान् पंडित कृष्णकान्तजी मालवीय एम. एल. ए. सम्पादक "अभ्युदय" (प्रयाग), श्रीमान् गंभीरसिंहजी साहिब ए. डी. सी. भावनगर नरेश, श्रीमान् डो. अंबकलालजी नंदकेश्वरजी दवे एम. ए. पी. एच. डी. प्रिंसिपाल, धर्मेन्द्र कॉलेज (राजकोट), श्रीमान् झवेरचंदजी मेघाणी सम्पादक "कुलछाव" एवं जन्मभूमि, कविश्वर श्री. पंडित त्रिभुवनदास व्यास (राजकोट), "शारदा" संपादक श्रीमान् गोकुलदासजी रायचुरा एवं सुरत के संगीत मास्टर श्री. वसन्त के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

x x x x x

श्री. पं. मालवीयजी का भाषण चारण जाति को राष्ट्रीय सन्देश के रूप में इतना स्पष्ट और उग्र था कि राजस्थानी प्रतिनिधि कहते सुने गये कि एक तो यह भी रियासत है जहां इस प्रकारका भाषण दिना किसी विघ्नवाधा के हो रहा है और एक हमारी तरफकी रियासतें हैं जहां अधिकारी, साधारण से साधारण सार्वजनिक हलचल को शंका और भय की दृष्टि से देखते हैं और उसे दबाने में ही राज्यका हित समझते हैं ।

x x x x x

"प्रिंसिपाल दवे साहिबने प्रतिदिन अधिवेशन के पूरे समय तक अपनी उपस्थिति से सम्मेलन की शोभाबृद्धिकी और दो दिन विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान देने की भी कृपा की । एक दिन चारण जाति की प्राचीनता बतानेवाला व्याख्यान था और दूसरे दिन के व्याख्यान में चारण जाति को ब्राह्मण जाति के समकक्ष सिद्धकर दोनों जातियों की कर्तव्य समता के साथ उनके कार्यक्षेत्र भिन्न २ होनेका विवेचन बड़े विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया था । आपने बतलाया था कि ब्राह्मण सर्वोपरि वर्ण है, और उसका एक कर्म दान लेना भी माना गया है । यदि दान लेना नीच कर्म होता तो ब्राह्मण का यह कर्म कर्म न माना जाता । बात यह है कि किसीकी प्रशंसा इस भावना से करके कि थोड़ा कुछ दे या दान देने के लिये किसी को प्रोत्साहित करके उस से कुछ लेना अधमता है और यह वृत्ति त्याज्य है किन्तु किसी के गुणों पर मुग्ध हो कर अथवा किसी के हितकर वा उपकारी

कार्य के उपलक्ष्य में दृढ़ता भाव से यदि कोई श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक सादर कुछ दे तो वह तो दान लेने वाले के गौरव ही को अधिक सूचित करता है। ब्राह्मण एवं चारण ऐसे दान के पात्र होते थे।" आगे चलकर आपने कहा था कि—अच्छी बात है चारण भी वकील बैरिस्टर बन रहे हैं, डोफ्टर व माजिस्ट्रेट बन रहे हैं, किन्तु इस के साथ ही मैं उन लोगों से प्रार्थना करूँगा कि ये सब बनने के साथ आप अपने चारणपन को न खो दें। डोफ्टर आप हों, लेकिन चारण भी बने रहें। आप मेजिस्ट्रेट या वकील बैरिस्टर हों या समय के प्रवाह के साथ आप भी औरों की तरह और सब कुछ हों परन्तु चारण तो आप रहें ही। समाज को आपकी जरूरत आ पड़ी है—यदि आप उसे पूरी कर सकें। कितनी भावपूर्ण, प्रेमपूर्ण सम्मति है यह ! क्या यह आशा करना अधिक होगा कि जिनके लिये ये शब्द हैं वे उनके मर्म को समझ तदनुसार अपना जीवन बनायेंगे ?

x x x x x

श्री. गोकुलदासजी रायचुरा संपादक "शारदा" (गुजराती) का चारण जाति-प्रेम उनके व्यवहार से प्रति पल प्रकट होता था। वे यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए प्रतीत होते थे कि चारण जाति में भी कुछ प्रेज्युप्ट हैं, वकील हैं, और मेजिस्ट्रेट भी हैं। उन्होंने अपनी पत्रिका में प्रकाशित करने के लिये वहाँ उपस्थित प्रेज्युप्टों का फोटो भी लिवाया था।

x x x x x

और श्री. मेघाणीजी का व्यक्तित्व और व्याख्यान ? श्री मेघाणी नाटे कहके, मुझ्से ढाँचे के मेघाणी अपनी खदर का पोशाक में किसी शहरी की अपेक्षा प्रेमी ही अधिक जंचते हैं। पहली मुलाकात में उन्हें देखते ही शायद ही कोई माँप सके कि इस व्यक्ति में इतनी प्रतिभा और इतना जोश होगा ! उन्होंने जब अपना व्याख्यान शुरू किया तो बड़ी धीमी आवाज से। परन्तु वह बड़ी और इतनी बड़ी कि मानो किसी शेर की गर्जना हो रही है। मेघाणी का व्याख्यान क्या था स्वयं एक काव्य था। उनकी वह धाराप्रवाही भाषण शैली भावानुरूप कभी मंद और कभी तीव्र और बीच २ में चारण कवियों की प्राचीन कविता—श्रोतास्विनियों का सहयोग प्राप्त करती हुई एक प्रबल सरिता वेग के समान थी जिस में बहकर श्रोतागण वेसुध से हो जाते थे। और कभी कभी तो वक्ता स्वयं ही भावावेश में वेसुध हो जाते थे मालूम होते थे। यही तो कारण था कि जिस समय वीररस का वर्णन होता श्रोता जोश में आते और करुणरस के वर्णन से उन के हृदय द्रवित होने लगते थे। चारण जाति के प्रति मेघाणीजी की श्रद्धा, उनका प्रेम और इस जाति के उत्कर्ष के लिये उनकी अभिलाषा तो शब्दोंद्वारा प्रकट करने की वस्तु नहीं। उन्होंने भाषण के प्रारंभ में ही कह दिया था कि काव्य का रस तो मेरे रक्त में घुलामिल गया है। इसी से मेघाणीजी जब डिगल कविता बोलते तो यह नहीं मालूम होता था कि कोई चारणेत看 बोल

रहा है। मेवाणीजी गुजराती के ख्यातनामा जेजोड राष्ट्रीय कवि और यशस्वी पत्र संपादक हैं। उन्होंने जब अपनी "लाडकवाया" नामकी कविता सुनाई तो श्रोता-मंत्रमुग्ध से हो गये थे।

× × × × ×

पं. व्यासजीने बड़े ही प्रेम से तीनों दिन सम्मेलन में सहयोग दिया था। प्रथम दिन उन्होंने "धन्य हो धन्य सौराष्ट्र धरणी" नामक अपनी मनोहर कविता सुनाई थी। दूसरे दिन "ऊठ चारण ऊठ तहारी ऊँचने अलगी करी" नामक कविता मधुर वाणी से सुना कर चारण समुदाय को प्रोत्साहित करने के साथ ही आभारी बना दिया था। इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित इस कविता को पढ़कर पाठक देखें कि चारण जाति के प्रति इस ब्राह्मण हृदय का कितना विशुद्ध प्रेम है। अधिवेशन के अंतिम दिन सुनाई हुई "वनवासी पोपडजी तमने बंधन केम गमे" कविता भी बड़ी भावपूर्ण और उद्बोधक थी।

× × × × ×

उपरोक्त महानुभावों के अतिरिक्त पूर्वकथित क्षत्रिय महानुभावों के पट्टाभूषण से सम्मेलनकी बहुत शोभावृद्धि हुई थी। क्या ही अच्छा होता ये सज्जन भी चारण जाति के प्रति अपने मनोभावों का शाब्दिक परिचय भी उपस्थित जनता के सामने प्रदान करते। उन के मौनवलंबन से इस अवसर पर गोहिल कुलभूषण मेजर जोरावरसिंहजी साहिब (भावनगर) की अनुपस्थिति कइयों को बहुत खटकती थी।

× × × × ×

इस सब वर्णन के साथ राजकोट की प्रगतिशील जनता के सम्मेलन-सहयोग का जिक्र न करना अनुचित होगा। सम्मेलन के दिनें में ही राजकोट में थी। पं. कृष्णकान्तजी मालवीय की अध्यक्षता में आर्यभाषा सम्मेलन हो रहा था। लेखक एक दिन कुछ समय के लिये उसमें जा सका था। अतएव कहा जा सकता है कि उक्त सार्वजनिक सम्मेलन से भी बहुत अधिक उपस्थिति से राजकोट के नरनारीशों ने चारण सम्मेलन में सहयोग दे कर चारण जाति के प्रति अपने प्रेम का परिचय दिया था। हो सकता है इस के लिये प्रेरक कारण "मेवाणी" व "काग" के व्यक्तित्व ही प्रधान हों।

× × × × ×

सम्मेलन के अंतिम दिन सूरत के प्रसिद्ध संगीत-मास्टर श्री वसन्त ने अपने शुभागमन द्वारा सम्मेलन में गायनवादन की जो कमी थी उसे दूर कर अपनी हारमोनियम ब्रजानि की कम्मालियत के साथ राष्ट्रीय गायनों से रस बरसा दिया था।

× × × × ×

उपरोक्त चारणोत्तर महानुभावों के अतिरिक्त सम्मेलन में कुछ सजातीय भी ऐसे थे जो विशेष उल्लेखनीय हैं। भावनगर राज्य के मजादर ग्राम निवासी

भक्तकवि श्री दुलाभाई भायाभाई काग का नाम इन में सर्व प्रथम आता है । काग जन्म जात कवि हैं और इस अंग्रेजी कथन को सत्य सिद्ध करते हैं—Poets are born not made (कवि पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते) । चालीस वर्ष से भी कम आयुका यह स्वाभाविक कवि अपने सतेज नेत्र व काली जटा दाढ़ी वाली मांजल मुखमुद्रा का प्रभाव दर्शक के हृदय पर यकायक डालती है और जिस समय उस मुख में से वाणी की सुधाधारा बहती है तो चारों ओर जीवन और आनन्दओतप्रोत हो जाता है । कविवर काग ने कहने लायक कोई शिक्षा प्राप्त नहीं की है अतः कोई पुस्तकी विद्वान् चाहे तो उनकी कविता को काव्य एवं साहित्य के सूक्ष्म नियमों द्वारा कुछ त्रुटिपूर्ण भी शायद करार दे सके । किन्तु इस भक्तकवि के भावपूर्ण शब्दों में वह जादू है कि इसके लिये वह समय ही नहीं देता और कागवाणी को सुनने वालों के मुख से एकबार तो बाह २ ही निकलवा देता है । और यदि पेसा नहीं होता है, तो उन्हीं प्राचीन शब्दों में कह देना पड़ेगा—स योगी हाथवा . पशुः ।

जिन चारणों ने समयानुकूल साहित्य रचना का प्रयत्न किया है या जो पेसा करना चाहते हैं उन लोगों की श्रेणी में श्री. कागका नाम सर्वोपरि रहेगा ! जो कोई काग रचित “रुष्ण प्रेरित कागवाणी” पुस्तक पढ़ेगा या उसके बाद रची हुई उनकी कविता ये सुनेगा वह इस कथन को सच माने बिना न रहेगा । श्री काग की काव्यकृति बतलाती है कि चारणो ! यदि तुम्हें प्रकृत कवि होने का अभिमान है या तुम्हें कविता करने का शौक ही है तो पेसी कविता करो जिस से मानव सुसुदाय का, अपने देश व समाज का या उस क्षत्रिय जाति का ही, जिसे तुम अपनी चिरसंगीनी मानते हो उसका, कुछ सच्चा हितसाधन हो सके अथवा तुम्हारा ही अग्रमकल्याण हो ।

क्या ही अच्छा हो कविवर काग अपने राष्ट्रभाषा (हिन्दी) के अभ्यास को कुछ बढ़ाने और उसके द्वारा अपनी मातृभाषा (गुजराती) में की हुई कविता का लाभ अन्य भाषाभाषी लोगों को पहुँचाने में भी समर्थ हों ।

x x x x x

सम्मेलन में काग की कविता को उन्हीं के ढंग से सफलतापूर्वक सुनने वाले श्री मेरुभाई लीला के पूज्य पिता वयोवृद्ध श्री मेघाणंदभाई भी उपस्थित थे जिनकी सत्तर्फी वर्षगांठ पर श्री माननीय कन्हैयालाल मुन्शी (गृह सचिव बम्बई गवर्मेन्ट) प्रमुख बम्बई के प्रसिद्ध साहित्यिकों—ने बड़ा सत्कार किया था । खेद है, वे उन दिनों रूग्ण थे अतः सम्मेलन में कुछ सुना न सके । किन्तु इस कमी को उनके सुपुत्र ने मालूम नहि होने दिया । मेरुभाई की शैली—कविता बोलनेकी और विवेचन की, इतनी मधुर व आकर्षक है कि अफ्रीका प्रवासी गुजराती भाइयों ने उन्हें अफ्रीका में बुलाया जहाँ दो तीन महीने रह कर कई सभाओं में अपने व्याख्यानों से लोगों को आनन्दित व प्रोत्साहित किया था !

उपरिंकथित दोनों सज्जनों के अलावा जिन लोगों ने काठियावाड़ गुजरात के चारण समाज में समाज सुधार की कुछ भावना और चिन्ताकी तरफ अभिरुचि उत्पन्न करने का सफल प्रयत्न किया है उनमें से जो लोग सम्मेलन में सम्मिलित हुए उनमें श्री. शंकरदानजी देवा राज्यकवि, लीवडी, श्री. ठारणभाई महडू राज्यकवि बला, श्री. रामदानजी टापरिया राज्यकवि मूली, श्री. पिंगलशी पायक बी. ए. एल. एल. बी., श्री. खेतसिंहजी मिश्रण मूढेरा, श्री. हरदाभाई नरेला राज्यकवि भावनगर एवं श्री जीवणलालजी वरसडा भादरवा, आदि सज्जनों ने सम्मेलन को सफल बनानेमें भरसक कोशिश की थी और उसकी कार्यवाही में सानुराग भाग लिया था।

श्री. शंकरदानजी का जातिप्रेम एवं सेवाभाव तो यहां तक है कि उनके सामने जाति हितके किसी खर्च का सवाल आता है तो जहां तक उनसे हो सकता है वे खुद उसे हल कर देना चाहते हैं। इसका प्रत्यक्ष परिचय तब हुआ जब सम्मेलन के मुख्यपत्र का गूराइ का पत्र सामने आया। पैसे का सवाल सीधे आते ही जब सब चुपसे थे, तब यही उदारचेता थे जिन्होंने इस त्रैमासिक के छपवानेका भार अपने सिर सभ्य लिया था। और यह बात किय कि पत्रका वार्षिक आय से यदि खर्चकी पूर्ति न हुई तो एक सौ रुपये तक तो स्वयं भर देंगे।

x x x x x

सौराष्ट्री बंधुओं की उदारता, एवं पारस्परिक प्रीति जहां प्रत्यक्ष थी, सम्मेलनमें उनका हुक्काप्रेम भी उतना ही प्रकट था। कैसा ही महत्त्वपूर्ण विषय क्यों न चल रहा हो, कैसा ही प्रभावशाली व्याख्यान क्यों न हो रहा हो, कैसी ही मार्मिक कविता क्यों न सुनाई जा रही हो, खडकी लंबी नलीवाले चांदी मेंढे हुए हुफ्फेकी गुड २ और उसका धुँआ तो बंद होने की बीज न थी। इस तरह सुधारक सभामें व्यसन का प्रदर्शन यही सूचित करता है कि गुजराती बंधुओंमें इस तरह हुक्का पीना अब भी शायद प्रतिष्ठा की बात समझी जाती है। उनके इस व्यवहार से लेखक को अपने प्रपितामह सूरतरामजीका हुक्काप्रेम याद आ गया था संयोगवश वे भी काठियावाड़ में बहुत रहे थे और प्रसिद्ध ग्रंथ "प्रवीनसागर" वे रचयिताओं में से, एक थे। जब वे मेशाड में वापस आये तो उनकी विद्वत्ता का प्रशंसा सुनकर तत्कालीन श्री. महाराणा साहिबने उन्हें अपने पास बुलवाना चाहा। किन्तु हुक्केको दरवार में स्थान मिलनेका सवाल आने पर उन्होंने कह दिया कि काठियावाड़ के बड़े २ राजा महाराजा मुझे अपने हाथों से हुक्का पिलाते हैं और यहां यह खयाल है तो मुझे दरवार में जाना मंजूर नहीं। लेकिन अब यह जमाना गया। हुक्का प्रेमीयों का समझना चाहिये कि सम्प्रसारण कम से कम

विचार है, क्रमशः इन विषयोंपर लिखा जाय, यथा:— (१) सार्वजनिक भावना (२) राजाका व्यक्तित्व. (३) राजा और वृ. गवर्नमेन्ट. (४) शासन. (५) राजाओंका पारस्परिक संबंध. (६) राजा और वृटिशमार्त. (७) राजा और सरदार व माफीदार (८) राजा और प्रजा. (९) सरदार और प्रजा. (१०) हिन्दु मुसलमान. (११) राजपूत और चारणजाति ।

सार्वजनिक भावना.

मनुष्य विश्वासका दास है: "थोयच्छब्द स एवसः" [गीता]। जो जैसा विश्वास करता है वही वैसाही बन जाता है. जो सिद्धांत व्यक्तिके लिये है वही समाजके लिये है, क्योंकि व्यक्तियोंकी समाष्टका नामही समाज है। जब कोई व्यक्ति या समाज या देश परिस्थितियोंके वश अपने आपको निर्बल पराधिन और अनधिकारी मानलेता है तो फिर उस दलदलसे दूसरा कोई उसका उद्धार नहीं कर सकता, यदि कदाचि कोई महान शक्ति उसे ऊंचे आसन पर बठाभी दे तबभी वह वहां ठहर नहीं सकता। जब कोई प्रतिभाशाली, विभूतिसम्पन्न व्यक्ति प्रादुर्भूत होता है। (यश यदाहि धर्मस्य लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्-गीता) वह महान विभूति, शक्ति-कांक्षिकारीके रूपमें कभी रुग्ण, बुद्ध, अरस्तु, प्लेटो, कान्फ्यूशस, ईसा, जर्थोस्त, मुहम्मद आदि अनेक नामोंसे और फिर दयानंद, मेजिनी, तिलक, सुनूपास्तेन, लेनिन आदि रूपोंमें आई और महात्मा गांधीके रूपमें इस समयभी जिव्वा और लेखिनीसे मानवजातिके हृदयको हिला रही है। वह अदृश्य शक्ति कहां कब और किन नामरूपोंमें आचुकी और आवेगी कौन गिना सकता है "कालोद्धार्य निरवश्विर्विपुला च पृथ्वी" वैसाही असाधारण व्यक्ति जब देशकालानुसार अग्रपूजा लेनेके योग्य आगे बढ़ता है. रुढ़ अंधकारके भेदकर नवीन आ लोक बताता है तो समाज हिचकते हिचकते उसका अनुगमन करने लगता है और सफलताकी प्रतीतियां उस नेताके आदर्शके आसनपर बैठा देती हैं। जब वह अपने सिद्धांत और कार्यके समाज धारणकी सद्युद्दिष्टेही सदी ईश्वरीय आदेश अथवा प्राकृतिक नियमके नामसे पुष्ट कर देता है तो वह जनताके लिये राजपथ बनादेता है। फिर जब उसी सिद्धांत और कार्यके पोषणमें वैसेही या उसी सिद्धांतके अनुयायियोंका समय समयपर पुनरावर्तन होता रहता है। और वे विविधशास्त्र, इतिहास, कथानक आदिसे जनभावनाके परिपोषित करते रहते हैं तो समाज उन भावनाओंमें रंगजाता है, इतनाही नहीं किंतु अपनी भावी पीढ़ियोंके लिये उस रंगकी आनुवंशिक धारा बहादेता है। वह श्रद्धा विश्वास का प्रवाह फिर सौज बदलनेका नहीं; क्योंकि "गतानुगतिके लोका न लोकः परमार्थिकः" मेडिटेशन धसानही सामान्य समाजका स्वभाव है। उपरोक्त अटल सिद्धांत धार्मिक, सांसारिक, आर्थिक, और राजनैतिक प्रत्येक क्षेत्रमें अच्छी या बुरी किसीभी दशामे अपना कार्य करता रहता है। उत्थान और पतनके विरुद्ध किनारोंका भी एकही मूल है यह "विश्वास"

यह सब होते हुए भी प्रकृति संसारका चक्र कभी स्थिर नहीं रहता, यह सत्य है कि वह इतना धीरे अपना कार्य करता है कि उसकी गति सहजमें नहीं जानी जाती। विश्वासपर चिपके रहनेवाले मानव स्वभावकोभी “वायुनाच मिवाग्भसि” जलमें स्थिर पड़ी हुई नावको वायु धीरे धीरे कहींकी कहीं लेजाता है के अनुसार यद्यपि प्रतीत होता है कि हम अपने स्थान परही हैं, परंतु देशकालकी नवीन टकराव सचेत करती है तब भान होता है कि हम कहाँ और कहाँ आगये। इसीका नाम है सहज क्रांति। संसारमें कोई कार्य सहसा नहीं होता। इस क्रांति परिवर्तनकी अमोघ गति संसारमें कारणरूपसे, कुछ आगे पीछे, किंतु समानभावमें चलतीही रहती है। प्रत्येक क्रांतिके बीज अलक्ष्यरूपसे लक्ष्यमेंही पोषण पाते रहते हैं और विपाक अवस्थामें, तीव्र कर्मानुष्ठानमें अवतरित होकर परिणामके सुख दुःखमें प्रतिफलित होता है।

एक वह समयथा जब जनताके हृदयमें यह इठ भावना जमी हुईथी कि “नराणां च नराधिपः” राजा इश्वरहीका रूप हैं, राजा मार सकता है, तार सकता है। राजाका अधिकार अबाध और असोम है। पृथ्वी राजाकी है; इसपर, हमारा रहना, इससे कमाखाना और जीना, केवल राजाकी कृपासे हैं राजाके हितमें मर मिटना अपने लिये स्वर्गका द्वार खोलना है। यदि एकांतमेंभी कोई राजाके कर्म पर कटु आलोचना करता तो विद्वान और मूर्ख सबहीको समानरूपसे इतना अखरता कि वक्ताको फटकार देनेकी शक्ति न होती तो स्वयं वहांसे उठजाते। यह भी नहीं कि उस समय राजाके लोभ, व्यभिचार, क्रूरता, कृतघ्नताके दोष प्रजाके सामने आतेथे। किंतु, लोग जानकरभी यही कहते कि राम राम अच्छा अच्छा राजा होकर पेसा क्यों करते हैं। फिरभी, अपवाद छोड़कर, विद्रोह भावना तो नहीं ही उठती, यदि कोई किसी को यह कह देता कि पेसा किया या पेसा न किया तो तुझे दरबार (यद्यपि दरबार शब्द राजाके सभाभवनका वाचक है परंतु राजपूतातामें स्वयं राजाकोही दरबार कहनेकी रूढ़ी है) की आण-सपथ-हैं या दुहाई है, मजाल नहीं कि कोई उस आणका उल्लंघन कर सके। परंपरागत संस्कारोंसे राजाकी महत्ता और राजभक्ति बाल्यकालहीसे लोगोंके हृदयमें जड़ जमाये हुएथी। इसके लिये न किसी स्कूलकी आवश्यकता थी न किसी प्रोपेगेंडाको, जनतामें इसी प्रकारकी ईश्वरदत्त राजसत्ताकी भावनासे एक विचित्र राजभक्तिका शून्य प्रवाह बहा जा रहाथा और वही प्रवाह इन राजाओं और राज्योंके अस्तित्वमें फौलादी बुनियाद रहा है।

रूढ़ीप्रदत्त इस राजभक्तिकी भावनाको एक सामान्य उदाहरणसे जान सकते हैं। प्रायः ६० वर्षकी-मेरे बचपनकी स्मृतिकी बात है। जब जब राजाकी सवारी निकलनेका दिन होता तो दूर देहातों तक जनतामें राजदर्शनकी उत्कट इच्छा लहरास जाती (जैसाकि इस समय महात्मा गांधीजी और राष्ट्रपतिके लिये होता है) सवारी के समय प्रत्येक घर खाली होकर राजपथ ठस जाता! ज्योंही हाथी घोड़ा या

खासा महायानमें सवार होकर राजा सामनेसे गुजरते तो उस समय आवाज वृद्ध नरनारीके हृदयमें अकृत्रिम राजमत्तिका ओत उमड़ पड़ता। वस्त्रोंको गोदीमें लेकर जानेवाले, अपने प्यारे वस्त्रोंको जमीन पर उतार कर आप जमीनतक झुक कर प्रणाम करते और वस्त्रोंसेभी वैसाही कराते, देखा है, भीड़के कारण राज पथ तक न पहुंचने वाली स्त्रियां, दूर गलियोंमें खड़ी खड़ी, ज्योंही छत्र चमर देखतीं वड़ी भक्तिसे बंदियां लेतीं, मालिकानो चिरायुके लिये विविध प्रार्थना श्वरसे करतीं।

किंतु समयने करघट बदली, प्रजापर अपने वैभवप्रदर्शनसे आतंक और आकर्षण स्थापन करनेवाली जलूसकी वे सवारियां तो आज भी होती हैं। पलटन, रिसाले, बेंड आदि साधन बढ़कर चटक मटक भी पहिलेसे कुछ अधिक ही हुई है; परन्तु वह बात नहीं, लोग अबभी देखने तो जाते हैं, किंतु फौतूहल उसीढंगका है जो एक तमाशा देखनेमें होता है सवारीमें चलने वाले उमरावों सरदारों आदिके निस्तेज चहेरे, मुखझाये दिल, स्वांगसी पोशाक और घोड़ेकी सुस्ती स्वतःसिद्ध करती है की वे बेगारमें पकड़े हुये हैं, बोझा ढेर रहे है। मुसलमानोंकी ताजिया जलूसमें फिरभी शोकात्सवकी झलक आजाती है, उतनीभी अब राजाओंकी सवारीमें नहीं, समझदार लोगतो इन तमाशावीनोंके जमघटमें जानाभी पसंद नहीं करते। अभी कुछ अरसे पहिले ऐसीही सवारी (जलूस) में शरीक न होने पर एक बड़े राज्यके चीफ जस्टीसने उस राज्यके एक उमरावके सामने प्रसंगवश कहा था कि लोग तमाशा देखने जाते हैं और हम अपनेको तमाशा नहीं बनाने चाहते आदि। यही सोचकर जोधपुरके भूतपूर्व मुस्ताहिब आला म. रा. सर प्रतापसिंहजीने जोधपुरमें सवारियोंका किकालनाही बंद कर दिया किंतु लोगोंके विचारसे वे घाटे में ही रहे, क्योंकि इन तमाशोंकी असलियत समझनेवालोंकी संख्या अबभी सामान्य बुद्धिकी जनतामें कमही है, प्रभाव न सही, फिरभी, राष्ट्रीय उत्सवोंमें राजा प्रजाके सहयोग जन्य आमोदकी लहर किसी अंशमें एक दुसरेको आत्मीयभावके निकट पहुंचाती ही है जो कि राजपक्षके लिये भी स्पृहणीय है और प्रजा भी अपने राष्ट्रीय उत्सवोंमें जीवन समझती है!

पहिले यह धारणा सर्वत्र ही काम कर रहीथी कि राजाके बिना राज्यका रहना और मानव समाजका शांति पूर्वक चलना असंभवहो है; शरीरमें प्राणों के समान ही देशके लिये राजाकी आवश्यकता है। पृथ्वीके प्रायः समस्त भाग कुछ रूपांतरसे कभी इसी भावनाके लीला क्षेत्रये। किंतु परिवर्तनशील प्रकृतिने पुराने पाठोंके पन्ने बदल दिये और सिखाया कि राजाकी आवश्यकता नहीं। प्रजा जनता स्वयं अपने उपर राज्य कर सकती है। लोकतन्त्र ही पूर्ण शक्ति सुख और शान्तिका निकेतन है। यदि जनता अपनी इच्छासे किसीको अपना राजाभी रखेता वह स्वच्छन्द मालिकहोकर नहीं, किंतु प्रजाकृत नियमोंके आधीन प्रतिष्ठित सेवकके नाते रह सकता है। समता, तन्त्र्यता और वन्धुत्व प्रत्येक मनुष्यका जन्मसिद्ध अधिकार है, आदि। इस, नूतन

लहरके सात समुद्रभी न रोक सके, उससे भारतभी अछुता न रहा। संयोगोंनेभी प्रकृतिका साथ दिया। इस्ट इण्डिया कंपनी-वन्द विलायती व्यापारियोंके गुट-ने शासन चलाकर ब्रिटिश भारतीय जनताकी उस पुराने पाठकी धारणाको तोड़ बहाइ। किंतु राजपूताने की प्रजा लोकतंत्रके स्पष्ट वातावरणसे दूर थी। आज कलके शब्दोंमें राजपूतानेका वह अंधेरा युग राजाओंके लिये गनीमत था।

जिस लहरके सामने हजारों कोसकी दूरीभी तुच्छथी वह पड़ोसमें या यों कहे, हमारे घरके द्वारपर आकर कुंठित कैसे होती। फिरभी बृटीश भारत और राजस्थानमें अन्तर बनाही रहा है और वह है राजा और प्रजाका सांनिध्य और तज्जन्य आत्मीयभाव-अपनापन-के संस्कारोंका अस्तित्व, इतना सच है कि लोगोंके हृदयमें घुसकर टँडालने पर वह धर्मसम्पुट राजभक्ति तो अब शायदही कहीं मिलेगी, जवानी जमाखर्च दूसरी बात है।

प्रेम और प्रभाव, ये दो भाव शिला ये राज सत्ताकी बुनियादमें प्रधान हैं। उनमेंसे प्रेम तो राजा और प्रजाके स्वार्थमें सबसे एकता मिटो तभीसे गया, "प्रभाव" भी गया। उधर ब्रिटिश भारतसे भी गया, इधर देशी राज्योंसे भी गया, ब्रिटिश भारतसे जानेका कारण हैं, समय समय पर कियेगये असत्य वादोंका घटस्फोट असत्य सदा निर्वलताका प्रतीक होताही है-एवं साम्राज्य शाहोंका, अपनी निःशस्त्र तथापि अहिंसा और सत्यके बलसे बलीमान प्रजापर घोर दमनका नाच बताकर थक बैठना और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओंमें द्यू नीतिपर विचरना। इधर देशी राज्योंमें कारण हुआ, स्वराज्यकी भावनाका अखंड भारतमें समान रूपसे फैलते जानेके अतिरिक्त, अनेक राजा महाराज साम्राज्य सत्ताके द्वारा-नीकरशाहीकी इच्छा पर-राज्यव्युत्त, अधिकार व्युत्त करा दिये जाते और अभ्रज अधिकारियोंके आनेपर उन्हे रिश्वानेके लिये की जानेवाली दौड़धूपके प्रत्यक्ष देखनेसे प्रजाके हृदयमें प्रथम कल्पित राजाओंका वह स्वतंत्र एवं समर्थ रूप न रहना। इसके लिये राजालोग सिर्फ उतनेही दोषी है जितनाकि घुड़दौड़की शिकार (Pig sticking) में सूअरके अपनी रक्षाके नीचे घुसनेका मोका देकर स्वयं माराजाने वाला शिकारी सवार। फिरभी यदि राजगण देश कालानुसार दूरदर्शितासे प्रेम सहित अपनी प्रजाके साथ जनहित मूलक सत्य व्यवहार करें तो राज्योंका जीवन बढ़नेकी आशा रखी जा सकती हैं! अभी तक उन्होंने अपनी प्रजाके विश्वास और आत्मीय भावनाके सर्वथा खो नही दिया है! कोटाके वर्तमान महाराज उम्मेद खिहजी एवं ऐसेही कुछ अन्य नरेश इस क्षण तक इसके प्रमाण हैं!

चारण-वाणी

चारणों की स्फुट कविता अधिकांश व्यक्तिगत ही सुनने में आती है। यहीं क्यों, जिस काल की चारण-कविता प्राप्त होती है उस काल की अधिकांश अन्य जातीय कविता भी कदाचित् व्यक्तिगत ही मिलेगी। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि चारणोंने अन्य विषयों पर कविता की ही नहीं। और जो व्यक्तिगत कविता की गई है, वह भी प्रायः धीर और वीर्यवान् व्यक्ति के लिये ही की गई है जिस के श्रवण या पाठ से लोगों के चित्तमें इन मानवोचित दो गुणों के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होती है। आज भी महात्मा गांधी एवं वीरप्रणी जवाहरलालजी आदि लोक नायकों की व्यक्तिगत कविता कर के कई चारणेंतर कुशल काव्यलेखक अपनी प्रतिभा का परिचय देते हैं और इससे जन समुदायका हित ही साधन होता है। यह सब होते हुए भी आजकल शिक्षित जनता किसी व्यक्ति का प्रयोगान सुनने या पढ़ने की अपेक्षा किसी स्वतंत्र विषय पर की गई कविता को अधिक रुचि से पढ़ती या सुनती है। अतः हमारा विचार है कि “चारण” में “चारण-वाणी” नामक एक संग्रह रहे जिसमें चारणों की वे अच्छी कविताएँ जो व्यक्तिगत नहीं हैं, छपीं रहें। इस प्रकार चारणों की ऐसी कविता का एक अच्छा संग्रह हो जाने की आशा है। जब ऐसी कविता इस प्रकार पर्याप्त उपलब्ध हो जायगी तो उसे पुस्तक रूप में छपाया जा सकेगा जिस से लोक रंजन लोकहित के साथ ही उन कवियों की स्मृति भी सुरक्षित हो जायगी। किन्तु यह तभी संभव है जब वे सब सज्जन जिनके पास कुछ कविता संग्रह हो उसे टूटोले और उसमें से टूट २ कर ऐसी कविता स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजने का कष्ट स्वीकार करें। आशा है हमारा यह विचार सबके पसंद आयेगा और आगामी अंक के लिये ऐसी कविता की हमें कमी न रहेगी। साथ ही हम यह भी चाहते हैं कि कविता के साथ ही कविका नाम शाखा व गाँव तथा हो सके तो कुछ जीवन वृत्तान्त भी भेज देने की कृपा की जाय।

इसी अंक से कुछ ऐसी कविता जो कदाचित् कहीं छपी नहीं है उस से हम “चारण-वाणी” का प्रारंभ करते हैं।

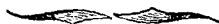
ओपाजी आढाकी कविता



ओपाजी आढा की कविता जितनी सरल है उतनी ही प्रासादिक एवं भाव-पूर्ण है। प्रायः इनकी कविता पारलौकिक ही सुनने में आती है। किन्तु कुछ छप्पय और “त्याग” लेने वालों के मीठी चुस्की लेता हुआ एक उपदेश प्रद “गीत” भी सुना है, इस से अनुमान होता है कि उन्हेनि कुछ सामायिक काव्य

रचना भी की होगी । अतः जिन सज्जनों के पास ओपाजी की वनाई हुई जो भी कविता हो वे कृपा कर भेज दें । हमारे पास उनके केवल दस-बीस “गीत” हैं । किन्तु उनकी कुछ ‘तुकों’ या शब्दों के अर्थ ठीक २ समझ में नहीं आते इसलिये जिनके पास “गीत” ही हों वे गीत भी स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेज दें ताकि कहीं पाठभेद से भी अर्थ की स्पष्टता संभव हो । अन्यत्र प्रकाशित तीन “गीतों” में भी पहले गीत के तीसरे ‘देहे’ के प्रथम दो चरण, चौथे ‘देहे’ का अंतिम चरण, पांचवे का दूसरा व तीसरा चरण और आठवें “देहे” का प्रथम चरण, संदिग्ध अर्थ का है, अतः डिंगल के जानकार महानुभाव या इन चरणों को शुद्ध जानने वाले सज्जन इन चरणों के अर्थ को या आगे भी ऐसे संदिग्ध अर्थ को स्पष्ट कर देने अथवा अशुद्ध को शुद्ध कर भेजने की कृपा करेंगे तो उनका आभार माना जायगा ।

ओपाजी के वंशज या और कोई सरदार ओपाजी का जीवन वृत्तांत उनके जन्म एवं स्वर्गवास की श्रृंगारिक तिथियों सहित सविस्तर लिख भेजेंगे तो बड़ी कृपा होगी ।



चारण-वाणी

परम हरिभक्त स्व. श्री. ओपाजी आढा (पेशुचा-सिराही) कृत—

गीत

१

तुलम देह पाई भमे भाइके घणा दिन, हर समर हर समर मैं फर हूँ ।

कण्ठ रा मूल अन्तर तणा कालिया, भाळिया तिके दिन कईं भूँला ॥ १ ॥

वसैं भ्रमवास दस मास ऊंचे वदन, भेटतो दने मळ-मूत्र भेळा ।

अवरके नीसहं तरे कहतोइ यूं, वीसहं नहीं हर नमख घेळा ॥ २ ॥

जां नरां पाळिया संकट विखमी जिके, मनख रा पामिया जनम मीठा ।

नीत रा शबरका, याद आवे नहीं, दूधरा टवरका नीठ दीठा ॥ ३ ॥

पांतरे गयो दुंख, खीर पीयां पहल, हां करै हमें तू घान हळियो ।

पांखियो दूध, रोटा करै पछाडै, मनख थो खोर जिम लाभ माळियो ॥ ४ ॥

नार परणूं नयो कहां मंदर नवां, आथ जोडे रहं कोथ आढे ।

आणग्री अंगहतो जणे इम ओरड़ी, गोरड़ी तणे कस नेम गाढे ॥ ५ ॥

सवारथ बठारो भूल सजियो नहीं, अठारो सवारथ कीध आंघै ।
 चोळ रंग हुआ अंतर तणो चापड़ो, बापड़ो नत नवो आस बांधै ॥ ६ ॥
 कठे गो बाप ने गयो दादो कठे, खंडगं जमराण रै जको खूटा ।
 उयां बीली जका थने दन आवसी, फोड़ मत हिया री हियाफूटा ॥ ७ ॥
 कसी कोइ म कीजो काय अवगुण कदे, वुहां धैंतां तजो बात बस री ।
 "ओप किय" कहै मरदां ! प्रभू ओळखो, मानखो सुधारो होय मसरी ॥ ८ ॥

२

मूठी जीत लो जमारो नरां ! काय ग्रहो काठी मूठी;
 पुर्न किया गांठी मूठी साबतो प्रमाण ।
 मोटो धणी याद करो मूठी बातों लागै मती;
 मूठी धूळ तणी थारी देह रो मँडाण ॥ १ ॥
 हीर चीर हेमतार घड़ी में विराणा होसी;
 लाखां द्रव धंधो सब हाथी घोड़ा लंठ ।
 धंधे भूठे लगा नरां ! भार रा कहावौ धणी;
 गार रा मणा रै लागी वायरा री गांठ ॥ २ ॥
 हूं करूं हूं करूं करे गाढा टेढ़ा कई हालो;
 नमेख में गाढा टेढ़ा करै दीनानाथ ।
 'मेदनी आकाय दोलू काळ तणा डाढा मोटा;
 हेल मात्र गंदी काया साड़ा तीन हाथ ॥ ३ ॥
 वेग तेग धपाड़ो जिमाड़ो कहै सारी दुनी;
 'मीठा बोलो सांई भजो राखो मोटा मन्न ।
 जाय आया बांधी मूठी खूटी मूठी परा जासो;
 "ओपो आढो" कहै नरां ! बांटो मूठी अन्न ॥ ४ ॥

मन जाणै चद्रं हाथियां माथै, खुर धासंतां जनम खुवै ।
 नर री चींती बात न होवे, हर री चींती बात हुवै ॥ १ ॥
 मन जाणै पदमण हूं मारुं, गो वंद बाधै पधरे गळै ।
 मांडण हारे लेख मांडिया, मेठण वाली ण मळै ॥ २ ॥
 यू जाणै पकवान अरोगूं, पापर मिलै न लूको धान ।
 हचियो खाय काय हींचोळा, भोळा रे रचियो भगवान ॥ ३ ॥
 दिल में जाणै पांव दबाऊं, औरां रा पग दावे आप ।
 कळयै कसूं कसूं मन कोपै, प्राणी लेख तणो परताप ॥ ४ ॥
 चित्त में जाणै हुकम चलाऊं, हुकम तणै वस नार न होय ।
सांमा चा लेख लिख्या उण साईं, काचा करण न दीसै कोय ॥ ५ ॥
 धापै मन वैठां धोळाहर, तापै सूनो दूढ़ तडै ।
 आदू रीत असी है “ओपा” । कुटो लिखी सो महल कटै ! ॥ ६ ॥
 (कमशः)

अपने समय के सुप्रसिद्ध विद्वान्, कवि एवं इतिहास वेत्ता स्वः कविराजा
 बांकोदासजी आशिया (जोधपुर) कृत—
 गीत

वस राखौ जीम कहै इम “बांको”, कड़वा बोल्यां प्रभत कसी ।
 लोह तणी तरवार न लागै, जीम तणी तरवार जसी ॥ १ ॥
 भाई ! अंगे अंगरे भारथ, हेकण जीह प्रभाव हुआ ।
 मन मिलियोड़ा जिके मादुवां, जीम करै खिण मांह जुवा ॥ २ ॥

मैला मनख वचन रै माथै, वात वणाय करै विस्तार ।
 बैठ सभा बिच मूँढा वारै, वचन काढणौ सोच विचार ॥ ३ ॥
 मन में फेर धणो री माळा, पकड़ै नहँ जमदूत पलौ ।
 मिळै नहीं वकणै सूँ माया, भाया ! कम धोलणो भलौ ॥ ४ ॥

२

नहँ पंचां जाय लाकड़ी नाकै, धणौ जोर सजगीर घणा ।
 चरचा करै कचैड़ी चढ़िया, नीर ऊतरै तिकां नरां ॥ १ ॥
 वणन-बँभौ हळ-हांसल बिगड़ै, कुवद कमाई जगत कहै ।
 झगड़ो लागौ जिकां मूँपड़ां, रगड़ौ तलवां तणौ रहै ॥ २ ॥
 महियळ कुशळ पराये मूँढै, सूँक हंमेस बांटणी सेस ।
 कजिया रौ कीजै मुँह काळौ, कजिया में नित नवा कलेस ॥ ३ ॥
 राखै संप जिके धन राखै, “बांको” आखै साच बधो ।
 न्याव निवेड़ौ तिके निवेड़ौ, राज चढयां के तणी रधी ॥ ४ ॥

३

कुण जाय जिकण ठाली कोटड़ी, खान पान नहँ लियै खबर ।
 जिण ग्वाड़ी देखर जग जावै, करवौ पावै कोड कर ॥ १ ॥
 डोंधी पौळ दीसती डाकण, रोटी देण तलाक रही ।
 फळसौ दीसै धणौ फूटड़ौ, पोखीजै जिण माँह पही ॥ २ ॥
 आयां मिळै नहँ अन आदर, धवळहरां अळगा सूँ धोक ।
 क्यावर रा मूँपा कांटाळा, लै विसराम बटाऊ लोक ॥ ३ ॥
 रोटी-राव-खाटलौ राली, मिळियां राखौ नको मगा ।
 गाम धणी तो पाछै गणियै, घर रा धणियां रंग घणा ॥ ४ ॥

स्व. कविवर आशिया जवानसिंहजी (मंगटिया-मंगडा) कृत—
मनहर

१

होकर प्रमादवश मानै या न मानै तोह,
जानै जिय जैसी कहै, मूँठ न प्रचार का ।
शासन विहित लोक लाज सों ग्रहित सदा,
पक्षपात रहित, बहै सहित विचार का ॥
आदि अवसान मध्य नेक सब कहैं नर,
एकहु न होय जामें बोल अनाचार का ।
सेवक का काम यही उचित सलाह देना,
करना कुराना सो तो काम सरकार का ॥ १ ॥

२

उचित अनुचित को राखत विचार बड़े,
स्यार छाँड़ि, सिंह वार करत करीन पै ।
सेस सहै भार, वारि नरै बड़बागनि तैं,
तदपि प्रहारत ना विपति परीन पै ॥
निबल न गाहैं, राहैं चलत स्वधर्म धीर,
युद्ध को उमाहैं वीर सबल अरीन पै ।
नृपति कुलीन, मन करैं ना मलीन कदा,
आश्रितन—दीन की जनीन उदकी न पै ॥ १ ॥

कविरत्न ठाकुर केसरीसिंहजी बागहट (केरा) कृत—

शुभेच्छु चाबुक—सूक्ष्मी

(वर्तमान राजाओंकें लक्ष्य करके)

सोरठा

अवधी अब ओछीह; सोचीजै सह भूषत्यां ।
पड़गी पल पोचीह; नीत सलोची नहँ रखी ॥ १ ॥

भावार्थ

भूतियो ! सोचिये, समय कम रह गया है । आपका पक्ष निर्बल हो गया है क्योंकि आपने अपनी नीति को लेचदार (परिस्थिति अनुसार) नहीं रक्खी ॥ १ ॥

साइयो वणकां साज; रजवट घट खोवे रघू ।

रहसी नहँ ये राज; आज लगा जिण बिध रखा ॥ २ ॥

आपने राजपूती शान को खोकर वनियापन का रूप सज लिया है; परन्तु अबतक जिस प्रकार रहे वैसे अब ये राज्य नहीं रहेंगे ॥ २ ॥

दुख सह भेले देह; प्रजा पूत सम पाळता ।

(अव) भूँट प्रपंच सजेह; लूटीजै घर ही लखै ॥ ३ ॥

आप ही देखिये; पहले सब तरहके दुःख अपने शिर लेकर प्रजाका पुत्रवत् आश पालन करते थे और अब भूँट एवं प्रपंचों के द्वारा उसके घर लूटे जाते हैं ॥ ३ ॥

हो न पराया, हेत; राजां यो घर राजरो ।

खाण लगा वयूं खेत; बाड रूप वणिया रखा ॥ ४ ॥

आप गैर नहीं हैं, इसलिये कहते हैं कि राजाओ ! यह घर आप ही का है । आप जिस खेत के बाडरूप बने रहे थे उसीको क्यों खाने लगे हैं ? ॥ ४ ॥

पग पग जरबां पीट; नीठ आज लग यूं निभी ।

पण अब परजा दीठ; खुली मीट संकर किना ॥ ५ ॥

पैर २ पर जूते खार्कर भी सब तक ज्यों-त्यों कर प्रजा आपके साथ निभती रही । परन्तु अब उसका गानचभु संकरकी पलक के समान खुल गया है ॥ ५ ॥

परजा जितै अजाण; महिप हालिया मन-मते ।

वरतै मिन्त प्रमाण; पँदरह वरसां पूतड़ी ॥ ६ ॥

प्रजा जब तक अवोध थी, आप लोग मनमाने चलते रहे । लेकिन, खयाल खिये, हेशियार होने पर तो पुत्र के साथ भी मित्र के समान व्यवहार करना उचित होता है ॥ ६ ॥

निरभै हित निरभेळ; जे नर चाहै राज रो ।

वस चुगलां इण वेळ; जेल मांह पट्को जिकां ॥ ७ ॥

जो लोग बिना किसी लाग लपेटके निर्भय होकर राज्य का हित-साधन चाहें, उनको आप चुगलखोरों की बातों में आकर जेल में ट्रेस देते हो ॥ ७ ॥

नभ सोभा निरस्वाय; ऊंचा नेणां आप रा ।

(एण) अब जहाज अथड़ाय, आगे भाळो जधपत्यां ! ॥ ८ ॥

आपकी ऊंची निगाहें, ऊपर आकाश की शोभा देख रही हैं; किन्तु, अधिपतियो ! जरा आगे देखो, आपका जहाज अब टकरानेवाला है ॥ ८ ॥

ऊपर रै आधार; पग समेट मूलै पड्या ।

की जाणै करतार; (कद) खसक पड़े खतिया कड़ा ॥ ९ ॥

ऊपरके सहारे के बलपर आप पैर सिकोड़ कर झूठे में पड़े हुए हो, लेकिन जिन जंग खाये हुए कड़ों के भरोसे पर आप हो, वे ईश्वर जाने, न मालूम की खिसक पड़ेंगे—कुछ पता है ? ॥ ९ ॥

जीवन अहळो जाय; सहल सिकार सलाम में ।

मांटी मौज उडाय; परजा बिलखै पेट नै ॥ १० ॥

आपकी जिन्दगी दुआ-सलाम, सैर-सपाटे और शिकारमें वरवाद हो रही है जोंरावर लोग मौज उड़ा रहे हैं, और उधर प्रजा उदर-पूर्ति के लियें बिलख रही है ॥ १० ॥

हुकमत गी पर हात; घर में खूण घालिया ।

बालक भी या बात; जाण चुक्या जग माहिने ॥ ११ ॥

अब यह बात बच्चे तक जान चुके होंगे कि आपकी हुकमत लोगों के हाथ में चली गई है और आप अपने ही घर के कोने में बिठा दिये गये हो ॥ ११ ॥

हाथों बैठ हगाम; किना करै कठपूतली ।

देखीजै बिन दाम, अजब तमाशो आज रो ॥ १२ ॥

आजकल हाथियों पर सवार होकर जो आपके जुलूस निकलते हैं, वे लोगों की निगाह में कठपुतली के खेल के समान हैं, और बिना पैरों का तमाशा खयाल किया जाता है ॥ १२ ॥

दोहा

साद प्रजारो सींवियो; फिट कानूनों फांस ।

ज्वालामुख ज्यू जाणजे; सो धुँधवायो सास ॥ १३ ॥

बाहियात कानूनों में फांस कर आपने प्रजा की आवाज को सीं तो दिया है; परन्तु ध्यान रखना, वह घुटा हुआ श्वास ज्वालामुखी साबित होगा ॥ १३ ॥

कै जंगल रणवास कै; कै उडतां आकास ।

जाय जमारों राज री; न्हकै प्रजा निसास ॥ १४ ॥

आपका जीवन जंगल में, जनाने में या आकाश-विचरण में बीतता है और यह देखकर निश्वास छोड़ती है ! ॥ १४ ॥

रुस-चीन-जर्मन-तुरक; आदि हुता पतसाह ।

वे सिंहासन फिट गया; सोचीजै नरनाह ॥ १५ ॥

नरपतियो ! जरा सोचो. रुस, चीन, जर्मनी और टर्की आदि देशों में जो शाहशाह थे उनके सिंहासन आज कहाँ हैं ? ॥ १५ ॥

परजा ही पलटाविया, अणचीत्या बिन फौज ।

काल्ह निके धर गंजता; आज मिलै नहँ खोज ॥ १६ ॥

कल तक जो पृथ्वी को रौंद रहे थे उनके तख्तों के प्रजाने ही अकस्मात् और बिना फौज-फाटि के, बदल दिये और आज उनका पता भी नहीं है ! ॥ १६ ॥

समै पलदतां जेज नहँ; जठे प्रजा जुँफलाय ।

धर-धूजण बस की चहँ, पळ में महल दहाय ॥१६॥

जहाँ प्रजा झुंझला उठती है तो समय को बदलते देर नहीं लगती। भूकम्प होने पर क्या किसीका कुछ बश चल सकता है-क्षणभर में महल ढह पड़ते हैं! ॥१६॥

सुखी समृद्ध विटानिया; जारज-सुतने जोय ।

ऊहिज मारग आदरौ, सुख री नीदां सोय ॥१७॥

खूब सुख निद्रा ले लेनेके बाद अबतो आपको भी उचित है कि आप समृद्ध और सुखी विटैनके जार्ज-तनयको देखो और उसी मार्ग को ग्रहण करो। ॥१७॥

आछा कामां ऊधमौ; धणियां ! निज धन रास ।

नहँ तो नेड़ा आवणा; महल मजरां बास ॥१८॥

स्वामियो! अपनी धन-राशिको उत्तम कामों में खुले दिल से खर्च करो वरन इन महलों में मजदूरों के निवास के दिन नज़दिक प्रतीत होते हैं। ॥१८॥

सोरठा

पितु-सम ताजी प्रीत; कर रानी परना करण ।

निभ जाफ़ी सुध नीत; हँ वाजी हातां हणा ॥१९॥

पिता के समान अभिनव प्रीति से प्रजा को खुश करनेके लियेआप शु-उत्तम नीति का अवलम्बन करा तो अब भी वाजी आपके हाथ में है-॥१९॥

नर सुख गाफल नीद; जाणू कड़वी जागणो ।

(पण) बेलां चँवरी बीद; जोग हुवै जम्मेड़णो ॥२०॥

जानता हूँ कि गफ़लतकी नींद के सुख में मनुष्य को जगाना बहुत बुरा माल होता है। किन्तु क्या, सभी नहीं जानते कि लगन-समय पर तो बूढ़े को झटके देक भी जगाना पड़ता है! ॥२०॥

सत्रयट माँहे सोद; देखे दुख पावै दुसह ।

(जद) चारण जुभती चोद; हिरदै सवशं री हणै ॥२१॥

चारण आपके हृदय पर तभी अपने शब्दों की चुभती हुई चोट पहुँचाता ।
जब उसे आपके क्षात्र-धर्म में कमी नजर आती है और उससे उसको असह
वेदना होती है । ॥२१॥

नृप ! नहँ व्हो नाराज, स्वीकारे सत सांपरत ।

आखी ईहग आज, हित री वातां हेत थी ॥२२॥

राजाओ ! नाराज मत हो जाना । प्रत्यक्ष सत्य को स्वीकार करके ही आपसे
लाभकी बातें आज प्रेमके पश हो चारण ने कह दी हैं । ॥२२॥



❀ स्तुति ❀

बल के बल हो श्री जगदम्ब ।

अशरणशरण अधन के धन हो आरत के अवलम्ब ।

करे अकंटक जन, नसि बंकट संकट के निकुरम्ब ॥

निबलके..... ॥१॥

दुखी देव लखि सदय पधारे मारे शुम्भ निशुम्भ ।

आरनजन पै करुणा धारे, हारे बलेश कदम्ब ॥

निबलके..... ॥२॥

दुय कर कैर कहा, जब रक्षक बाहू बीस प्रलम्ब ।

है विलम्ब सुमिरन में राउर, करुणा में न विलम्ब ॥

निबलके..... ॥३॥

तब सुदृष्टि में विघ्न कि व्यापें, हे जननी हेरम्ब !

पालहि का न पतित पावन व्रत "अक्षय" हित अविलम्ब ॥

निचलके..... ॥४॥

—आर्यकुमार अक्षयसिंह रत्न, अलवर

कविवर ठा० सा० श्री किशोरसिंहजी के स्वर्गवास पर शोकोद्गार

॥ (१) ॥

[कवित]

कारक स्वजातिन की सेवा को अयाक कर्म,
धोरी पुरातत्त्व-रथ धारक धुरा गयो ।
ध्वांत में स्वतंत्र मंत्रदायक महीपन कौं,
दीपक समीर काल तंत्र में दुरा गयो ।
गौरव 'हर्षार' ज्ञाति युवक-जनिहृ बनि,
शत्रुजीत उन्नति को अंकुर स्फुरा गयो ।
अकारण भित्र श्री किशोर प्रतिभा को चित्र,
चिंतामणि चारण चरित्र को युरा गयो ॥१॥
पुहुमि प्रसिद्ध सिद्ध करिकै दिखायो जिन,
सन्निभ-समाज मध्य राज पटियाला पुर ।
जाके बल विपुल विकास में स्वर्ग-हित को,
उलट अरातिन कौं सैले जिमि साल्यो उर ।

१-उत्पादक । २-प्रतिष्ठन नया नया प्रकट करनेवाली बुद्धि । ३-विघ्न उठ

काव्य-कृति कोविद 'हमीर' श्रीकिशोर वर्म,
 नीक^१ निरभीक^२ स्थिर धी^३ के धुर्य^४ कीन^५ तुर ।
 दृष्टयो आज ज्ञाति-धनु-रौदा^६ हाय ! काल-रूप,—
 हस्तिन के हौदा चढि सौदा गो सभा में सुर ॥२॥
 —निवेदक, कवि श्री हमीरदानजी लाखाजी मोतीसर,
 पालणपुर.

(२)

[कवित]

जाति पथ-उन्नति सुधारक सिधार गया,
 हाहाकार ! भयो, परी दिल में दरार है ।
 आज सेक-सिंधु महुँ बूढ़िगो समाज निज
 नाव के तरैया हाय ! गयो नाक-द्वार है ।
 मरुधर-मेव्रार औ हुंदार-कच्छ-काठीवार—
 वासी चारनन-तन फरत अंगार है ।
 'जैमल' स्वजाति के करेजो हो किसेर कवि,
 ताहि छीन कीनी ईस ! क्रूरता अपार है ॥ १ ॥
 नागर सभा के हो सुसागर धी-साहित के
 कैवट कुसल हुतो जाति के जहान के ।
 चारनन-तारक प्रचारक त्यों 'चारन' के
 तम के नसावन बचैया कुल-लाज के ।
 दिल दरियाव पाज सर इतिहासह के
 पंडित प्रखर त्यों करैया देस-काज के ।
 "जैमल" जगत-स्वामी ! बूँके गुन-ग्रामी तैने
 काहे कियो अंत वा किसेर कविराज के ! ॥ २ ॥
 —निवेदक, श्री जयमलदानजी शिवदानजी पायक,
 लोदराणी (कच्छ)



स्व. कविवर टाकुर विश्वरसिंह जी सा. सौदा, एम. आर. ए. एस
भूतपूर्व संवादक, "चारण"

जन्म

विक्रम संवत् १९३६

आश्विन शुद्ध १४

शाहपुरा (मेवाड़) में

मृत्यु

विक्रम संवत् १९९४

आश्विन शु. पूर्णिमा

पटियाला (पंजाब) में

सहसा हृदय की गति रुक जानेसे.

[श्री खेतसिंहजी मिश्रण के वंद्य-हृदय से]

લાડકડો વર

સ્વચિંતા

મક્તકવિ દૂલાભાઈ માયાભાઈ કાગ

વહુ કોડ કુમાર જુવાન થયા,

નહીં ઘંટી છોડાવળહાર થયા;

હવે હાલી શકે નહીં. હાથડિયા.

ગ્રહી માત ની વાત વિચાર કરી,

વર રાજ હજાર તૈયાર થયા;

સુળી માંડવડા ની જ્યાં સામગરી,

લૂગનો લલિયા પછી નાસી ગયા.

વરવા તળાં મીષમ નીમ ગ્રહાં,

એળે માત હિતે વહુ દુઃખ સહાં;

એનાં હાડ ને ચાંમ ઘસાઈ રહ્યાં.

વઢતી દઢતી જોડ માવડલી,

એના આતમ ને સઢગાવી રહ્યાં;

જળનારી ના માત ને કારણિયે,

ન સહાય એવાં અપમાન સહ્યાં. ॥૨॥

વર : પાંત્રીસ કોડ નો તારક છે,

ભુવ માર અપાર ઉતારક છે;

સત ધારક પાપ સંહારક છે.

નિજ શિશું શ્રીફલ હાથ લીધું,

શરણાઈ ને દેલ ના શોર થયા;

પતિતો તળો પાવન આ નવશ,

એળે પીઠી નાં કેસરિયાં કરિયાં. ॥૩॥

એને પેલ્લિય કાઢ તળા ગળ છે,

એનો માંડવડો પ મહારણ છે.

તલવોરો તળા અને તોરણ છે.

જાનીવાસ તળા એ ઉતારા તળી,
મહેમાનીમાં જેલ તળાં ઘર છે;
લલકારો સહુ એનાં ગીતડિયાં,
હિંદ માત નો લાડકડો વર છે. ॥૪॥

દિન રાત ધખેલ હતી તપતી,
એણે કૈંક નમાવી દીધા નૃપતિ;
એવી નાઠ જંજાઠ કરાઠ હતી.
ભયકાર મુખે વિકરાઠ હતી,
ઋગતી જમ આંખ ક્ષી જામગરી;
એવી તોપને મોઢેઢે વાથ ભરી,
પછી હાકલ દાગવવાની કરી. ॥૫॥

સઠમે એવી દારુની શેરી હતી,
એમાં આગ લગારેક ભેરી હતી;
મેઢી વાયુના કોપ ની લે'રી હતી.
વર કૈંક થયા પળ ભાગી ગયા,
નમ મંડલ માં એની ખાઠ ગઈ;
નિરખી મન મોહન મૂરતીઓ,
ઉતપાત ની આગ ઓલાઈ ગઈ ! ॥૬॥

એક કાઠનો થાઠ ત્યાં પીરસિયો,
વિષ વાઠો કંસાર એ સ્વાઈ ગયો;
પછી પેટડિયા માં પચાવી ગયો.
સુલકારી હતી ને કુમારી હતી,
હતી નામે સ્વતંત્રતા સુંદરી;
એને મોહની મોહનની પ્રગટો,
વરમાઠ હસી કેઠ માંચ ધરી. ॥૭॥

स्वागत

(कर्ता : आर्यकुमार अक्षयसिंहजी रत्न—अलवर)

समागत स्वागत चारण—पत्र ॥

बहुत बिछुड़े, अब फिर पगु धार ।

सँभालो निज भुज भार—सुधार ॥

तुम्हीं इस युग के महदाधार ।

करो हम पतितों का उद्धार ॥

चाहते हम तो छाया—छत्र । समागत स्वागत चारण—पत्र

समझ कर गन्ता देश विदेश ।

प्रकाशित करते दूरन्देश ॥

वही पूरा कर दो उद्देश ।

जाति जागृति का शुचि संदेश ॥

रूपा कर पहुँचा दो सर्वत्र । समागत स्वागत चारण—पत्र ॥ २ ॥

तुम्हारा वह किशोरपन रंग ।

ले गया वह किशोर ही संग !

जमेगा तो भी कुछ तो दंग ।

छिड़ेगा उन्नति—कथा प्रसंग ॥

इसीसे उत्पन्न “ अक्षय ” अत्र । समागत स्वागत चारण—पत्र ॥ ३ ॥

७८/

हम "चारण" कैसे हैं ?

(लेखक : शंकरदान जेठीभाई देथा, लॉन्ड्री)

कवित

क्रीतपूत-कृत्रिम-कुक्षत्रि व्याल-नाल वाकों,
अति दुःखकारी हम लगे उरगारी हैं ।
क्षात्र-धर्म-पथ के पथिक शुद्ध क्षत्रिन कों,
संजीवनी-मंत्र जैसे हम सुखकारी हैं ।
शंकर भनंत जाके अंतर में निरंतर ,
सुर-गुरु जैसे हम पूज्य-प्रिय भारी हैं ।
ऐसे देव-अंशी जो विशुद्ध राज-वंशी ताके ,
पुनित-पुराने हम चारन पुजारी हैं ॥ १ ॥

सम्वाद

श्री० अलवरेंद्रकी महती उदारता

(लेखक : आर्यकुमार अक्षयसिंहजी रत्नू, मंत्री, अलवर राज्य चारण-मण्डल)

श्रीमान् महाराजाधिराज श्री. सवाई तेजसिंहजी वीरेन्द्र शिरोमणि अलवरेंद्र देव-पहिले से ही चारण जाति पर परम प्रेम रखते हैं । सिंहासनारोहण के पश्चात् श्रीमान् ने बलदेवदानजी कविया (सेवापुरा), जयसिंहजी कविया, करनीदानजी देवल (नेतड़वास) व रामसिंहजी रत्नू (थमावली) आदि सज्जनों को उत्तमोत्तम पदों पर राज्यसेवा में नियुक्त करने की अनुकम्पा कर अपने उस प्रेम का विशेष परिचय प्रदान किया है और ता. २२-५-३८ के श्रीमान् चिरंजीवी महाराज कुमार साहिब के शुभ जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में देने वाले दरबार में कैबड़ बलदेवदानजी कविया को ५०७ मासिक की वेतनावृत्ति प्रदान की एवं इन्हीं तथा पारहड बल-घन्तसिंहजी आदि चार स्थानीय महानुभावों को पुरस्कारादि से सम्मानित किया गया है ।

इसी शुभ प्रसंग पर की गई चारण-छात्रालय की स्थापना की प्रार्थना पर फरमाई गई और छात्रालय बनाने के लिये रपूजत बोर्डिंग हाउस के

पासकी भूमि प्रदान करना रहे हैं और छात्रवृत्तियों आदि सहायता के लिये उ विचार होकर श्रीमान् के करकमलों से इस छात्रालय के शिलान्यास एवं स पर इसके उद्घाटन का पुण्यप्रसंग शीघ्र आनेकी आशा है ।

श्री. नखवंशावतंस का यह पराणकारपूर्ण कार्य स्वर्णाक्षरों से उज्ज्वलनीय है और इसके लिये अलखरीय चारण जाति सदा आभारी रहेगी ।

श्री. अलखरेन्द्र का चारण-प्रेम अपने राज्य के चारणों तक ही सीमित न है प्रयुक्त समस्त चारण जाति के प्रति बड़ी उदारतापूर्ण भाव है । इसका प्र हमें श्रीमान् के उक्त प्रसंग पर जाधपुर के श्री उमेद-चारण-छात्रालय को की सहायता प्रेषित करने से बखूबी प्राप्त होता है ।

जगदम्बा ऐसे उदारचेता प्रजा-प्रिय नरेश्वर को सपरिवार सुखी एवं चिरायु रक्

श्री भूपाल-चारण-छात्रालय, उदयपुर

श्री भूपाल-चारण-छात्रालय का उद्घाटन, श्रीमान् आर्य-कुल-कमल-दिवा के करकमलों द्वारा ११ वर्ष हुआ और राजकीय सहायता भी प्रदान की ग छात्रालय-फंड में इस समय करीब २ बारह तेरह हजार रुपये हैं जिन्में दश हजार तो सूद पर राज्य की मारफत दिये हुए हैं और शेष दो तीन ह रुपये खेमपुर ठा. कर्णोदानजी दधिवाडिया के पास बिना व्याज पड़े हुए हैं (छात्रालय की स्थायी मासिक आय कुल मिलाकर कम से कम अस्सी नव्वे र होगी और खर्च पचास का । ऐसी हालत में मासिक बचत का छात्रों के में की फीस में कमी करने के लिये उपयोग में लाने का उक्त ठाकुर साहिब का धार कहा गया क्योंकि छात्रालय का प्रबंध आजकल इन्हीके हाथमें है और र ऐसे भी इन्हींके पास । परन्तु न मालूम क्यों इस आवश्यकता की ओर वे उ वृक्ष कर भी ध्यान नहीं दे रहे हैं । बिना भोजन फीस में कमी किये छात्रों तादाद नहीं बढ़ेगी और फलतः छात्रालय का लाभ जैसा हो सकता है न होगा क्या, खेमपुर ठा. सा. अपने कर्तव्य को समझ कर अपनी जिम्मेवारी पूर्ण करने ?

—जानकार

“श्री करनी चरित्र” छप गया

“चारण” के स्वर्गीय सम्पादक विद्वद्ग्रन्थ ठा. किशोरसिंहजी सौदा द्वारा सम्पा योग माया श्री करनीजी की जीवनी छप गई है । मूल्य २॥) दार्द्र रुपये, पता—मेने राजस्थान रिविस् सोसाइटी, ७३, ५ चासा घोवा, पाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता ।

चारण जातिका प्रथम-कर्तव्य

(लेखक : डाकुर भगवती प्रसाद सिंहजी, बीसेन, राजस्थान-रिविस्-सोसाइटी, कलक छात्रण जाति का साहित्य हिन्दू मात्र को एक-अपूर्ण देन है—हिन्दी म की वह बहुत ही उज्ज्वल सम्पत्ति है । हिन्दी में जिस चीज़की कमी है—वह उर पूर्ति कर सकता है । परन्तु तो भी हम उसकी चमक से प्रकाशमान न हो स यह विधि की विदग्धता नहीं तो क्या है ? आज जिनके मन में जो आता है

चारण जाति और उसके साहित्य के विषय में मनमाना लिख मारता है—परन्तु, उन्हें रोकने वाला कोई नहीं।

चारण जाति राजस्थान में मातबर है—छावोंकी जागीर उसके पास है—कंराडों का साहित्य उसकी गोदमें है—अरवों के काव्यरत्न राजस्थानकी धूलि में लिपटे पड़े हैं—पर तो भी वह दैन्य की प्रमाद निद्रा के खुरांटे ले रही है। किन्तु समय जागने का है, एकदम ऊठ कर खड़े हो जानेका है—सोने का नहीं।

राजस्थान का राजनैतिक चातावरण बदल रहा है—दिन पर दिन उसमें नये नये परिवर्तन हो रहे हैं—नाना प्रकार के नये नये कानून गढ़े जा रहे हैं—न जाने किस समय क्या हो जाय ? हमें समय रहते सावधान हो जाना चाहिये। समय का भरपूर उपयोग कर लेना ही हमारा धर्म है।

जागीरें किसीका मुस्त में नहीं मिलीं—उनकी कविताओं, उनकी सलाहों और उनके बलिदानों का परिणाम ये जागीरें हैं। जागीरों के साथ उनकी अमर कीर्ति—गाथा गुंथी हुई है। पर आज परिस्थिति दूसरी है—जमाना रंग बदल रहा है—न वे राजा हैं और न वह परिस्थिति ही है। जागीरों का स्थायित्व नष्ट होता जा रहा है। साथ ही चारण जाति के सपूत अपनी साहित्य रूपी जागीर का भी पछा रहे हैं। उनकी मनावृत्ति आज उसे दीसकों का ग्रास बना रही है—वे उसे कोठरियों में बंद किये बैठे हैं !

इस समय ज़रूरी था—आवश्यकता थी कि वे अपने साहित्य का भण्डार संसार के लिये खोल देते—उस के प्रकाश से सारे संसार को चमकृत करते। पर, गति दूसरी ही ओर है। चारण सम्मेलन की बैठकें हो रही हैं—चारण जाति में भी जागृति के चिह्न दिखाई पड़ने लगे हैं—पर प्रस्तावों, भाषणों के सिवा होता क्या है ? सामाजिक सुधारों की ओर ही ध्यान दिया जा रहा है—पर उससे हमारा क्या होगा ? हमारे सामने इस समय सबसे बड़ा सवाल है अपनी रक्षा करनेका—अपनी धनराशी बटोरनेका—अपनी अमूल्य निधि को नष्ट होने से बचा लेने का। चारण जाति के लिये एक ही कार्य है—चारण-सम्मेलन का सबसे आवश्यक कर्म भी एक ही है—बड़ है—बनाभाव से चाहे प्रकाशन अभी न हो सके पर अपने साहित्य का एक विशाल संग्रहालय निर्माण करना। साहित्य इस जाति के जीवन की रीढ़ है—इसकी स्थिरता ही इसका जीवन है। इसके बिना जाति का भावी जीवन अंधकार में ही समझना चाहिये।

आशा है, सम्मेलन के पदाधिकारी इस ओर ध्यान देंगे और अपने कार्यकी गति को इस ओर मोड़ कर अपने समाज के नष्ट होते हुए अक्षय भण्डार को बचाने में कृतसंकल्प होंगे।

[लेखक महोदय सम्मेलन की रिपोर्टों को पढ़ेंगे तो उन्हें झूत होगा कि सम्मेलन का ध्यान इस आवश्यक कार्य की ओर आकृष्ट है किन्तु धन-जनाभाव ने विशेष कुछ हो नहीं रहा है। “चारण” में “चारण-वाणी” नामक एक स्थायी स्तम्भ रखना भी इसी दिशा में एक प्रयास है। क्या, हम आशा करें कि लेखक महोदय के सपरामर्श से सहमत होकर प्रत्येक जातिहितैषी इस संबंध में अपने स्तम्भ की जिम्मेवारी पूरी करेगा ?]

—सम्पादक]

અખિલ ભારતીય આરણ સંમેલન (રાજકોટ) નાં સંસ્મરણો

(વિવિધ પત્ર-પત્રિકાઓમાં નીકળેલ લેખો, સમાચારો અને નોંધો)

[૧] સંશોધન વગર ધૂળ ખાતું ચારણી સાહિત્ય

આરણ કામના સંસ્કાર રક્ષણે !

શ્રી દૂસા ભગત

અખિલ હિંદ આરણ સંમેલન રાજકોટમાં તા. ૨૧-૨૨-૨૩ ના રોજ મળે છે. તેના પ્રમુખ શ્રી દૂસા ભગત એક સુકવિ છે.*

બાર વર્ષ પર એને પહેલ વહેલા પિછાન્યા. ત્યારેય એ ધૈર્યના ઉપાસક કવિ હતા. રંગદંડે ખેડૂત હતા. ગ્રામ્ય જનતાના સલાહકાર, રંજનકાર, નવા વિચારો દેનાર 'આદ્યણુ' હતા. એને શુદ્ધ અન્યયીત્વના ધારનાર હતા.

બાર વર્ષે એને આજે ફરીવાર તપાસું છું. આજે એને રામ મહારામ્લઓ શોધે છે. એના વાણી પ્રકારો સુણવા તકસે છે, ને એને હજારોનું જ્ઞાન હજુ કૃતાર્થ બનવા કંખે છે, છતાં દૂસા ભગત તો એના એ રામ, નિરભિમાની અન્યયીજ છે.

ઢોંગી નહિ. સાચા અન્યયી છે. ગ્રામ્ય રંગદંડના એવા ને એવા પ્રેમી છે, *ગ્રામ્ય જનતાના વધુ સમર્થ દોરવનાર બન્યા છે, ને એની ધૈર્યપાસક કવિતાએ આજે રાષ્ટ્રોપાસનાની રેવમહેલ વહાવી છે. નૂતન યુગના એ સ્વાભાવિક પ્રીછણદાર ગુજરાતી કાવ્યમાં અનોખી. કલ્પનાઓ, ઉપમાઓ ને ભાવનાઓ ઊતારી છે.

એની કવિતાના પ્રેરક ગરવા ગાંધીજી છે. આરણ કામના નવ જગરણનો એને નાદ સાંગેજ છે. આત્મ જ્ઞાનથી ભરેલી એની મેઘનાદીથી વાણીને એ મહેલોથી ઝુંપડાં સુધી વગર ભેદે વિશુ સંકોચે અને બહોળા હાથે પીરસ્યે જાય છે.

એમની દોરવણી હેઠળ આરણ સંમેલન એક કામ તો અવસ્થ કરે: ચારણી સાહિત્યની પ્રાચીન હસ્તપ્રતોના હગ્ગાને હગ્ગા કવિરાગ્નેના ઘરોમાં કુથા ખાય છે. એનું વેળાસર સંશોધન સંપાદન કરાવે. ગુજરાતી ભાષા પર મહાન ઉપકાર થશે.

આરણકામ આજે બહુ વાગોવાઈ છે. વિના કારણ વધુ પડતી બદખોઈ એ કામની ચાય છે. પ્રત્યેક કામ જ્યાં કર્તવ્યપ્રજ્ઞ બની છે ત્યાં આ બાપડી એકલીને કાં દંડીએ ?

તેમ એ કામને એની સ્થિતિમાં પણ કાં મૂકીએ, કે જ્યાં એનો વિશ્વાધનનો વારસોજ નષ્ટ થાય ? આરણી કામનો એ પુરાતન સંસ્કાર ન ઉઘેડીએ. એનો એક જૂથ તરીકે મુખ્ય વ્યવસાય વિદ્યોપાસનાનો, સાહિત્યોપાસનાજ ટકી રહે. બેરક એ ઉપાસના યુગરંગો ધારણ કરે તેવી કાશીશો કરવી ઘટે છે. એને રામઓની સ્તુતિ અથવા ભિક્ષા ત્યજતીને પછી સંસ્કાર હીનતાના આજે સજગતા ચેરાનમાં ધકેલી દેવાયી શો લાભ ?

—શ્રી ઝવેરચંદ મેઘાણી

('ફૂલછાંચ' તા. ૨૦-૫-૩૮ ના અંકમાંથી ઉદ્ધૃત)

*અગાઉથી સંમેલનના પ્રમુખનો નિર્ણય થયોજ નહોતો. શ્રી મેઘાણીએ કામના કહેવાથી કે અનુમાનથી શ્રી દૂસા ભગત પ્રમુખ થવાના છે, એનું લખ્યું છે. બાકી રાજકોટ સંમેલન શ્રી ભગતજીની કૃપાથીજ ભરાયું હતું. તેમને લીધેજ રાજકોટ સ્ટેડ તરફથી બધી અવસ્થા થઈ હતી.

તંત્રી, ગુજરાતી વિભાગ.

[૨] ગુજરાતનાં અઠવાડિક આંદોલનો.

ચારણોની નવ દષ્ટિ

રાજકોટ મુકામે અખિલ હિંદ ચારણ સંમેલન મળ્યું હતું. ટોળાં શાહીના રોગથી મુક્ત રહેલા એ સંમેલનમાં ચારણોથી વધુ ચારણો હાજર નહોતા. જે હતા તે વીણાઈ વીણાઈને આવ્યા હતા. એમના સંમેલનમાં મને ચારણોના નવયુગી સંસ્કારનું દર્શન થયું. વેદકાળ જેટલી પુરાતન વિદ્યાતિષ્ઠતાના એ વારસદારો પોતાની અત્યારની સ્થિતિથી લલ્લિત હતા. રાજસ્થાનનો રસ તેમને રહ્યો નથી. નૂતન રાષ્ટ્રભાવથી નીતરતી પોતાના નવોદિત કવિઓની વાણીપર તેઓ મુગ્ધ હતા. તેમની આંખો નવી સાહિત્ય વાટ તરફ મંડાઈ ચૂકી છે. તેમને આડંબર અને શબ્દ બનાવટ અણગમતી થઈ છે. તેમને સ્વભાવિક ભિન્ન નાદ લાગ્યો છે.

સંમેલનના રાત્રિએ ભરાતા દાયરામાં મેં તેમની કવિતાનું નવસર્જન દીધું પુરાતન કવિતાનાં બળો તેમના રસ અને અભ્યાસની વાત બનેલાં બેયાં.

રજપૂતાનાના શિક્ષિત યુવાનો

પાંચેક હતા. રજપૂતાનાથી આવેલા નવયુવાન ચારણો ખી. એ. અને એમ. એ. એલ. એલ. ખી. મુધી પહોંચેલા તેઓ પોતાના સાહિત્યની જુદી જુદી દિશાપર 'થેરીઝ નિબંધ' લખી લખી ઉપાધિ મેળવી ચૂકેલા હતા. તેમનામાં સમતોલ અને સરમાળ વિદ્વતા દીકી. ચારણી સાહિત્યનો સંસ્કાર તેમનામાં એવી જુક્તિથી વ્યાપી રહ્યો હતો કે જેવી જુક્તિથી મેંદીના ચાંદમાં લાલી વસેલી હોય છે. સોરઠી લોક કથાઓ તેમજ કાવ્યો દુહાઓનાં રાજસ્થાની પાંડાંતરે તેમને જીર્ણ છે. એ તોખા તોખા પાડોની મેળવણીમાંથી એક નૂતન આત્મીયતા નીપજતી હતી.

રાષ્ટ્રભાવનાને લડાવનારી જીભો

રાત્રિના દાયરામાં રાષ્ટ્રભાવની નૂતન લોકકવિતા રેલાવનારા એ ત્રણ 'પાતળી જીભો' વાળા 'સોરઠી ચારણોનાં નામતો નથી ભૂલવા જેવા. દૂલા ભગત, મેરલા અને ખેતસિંહ મીસણની ત્રિપુટી વ્યાસપીઠ પર પોતાના પરત્રિયા કઠોની મિલાવટ કરીને શા લાડકાડથી રાષ્ટ્રભાવનાં રમ્મ, ભયાનક, નાનુક તેમજ વિરાટ સ્વરૂપોને રમાડતા હતા !

“ ડોસાણની નોખત્યું વાગે છે,

“ લીલાં લીલાં માથડાં માગે છે,

“ સૂતેલાં માનવી જાગે છે. ”

એ ગાંધી ગીતના ઝળકતા શબ્દો સાંભળી, વિરાટની આલ-પાતાળ અને દિગ્માળપર પથરાતી કલ્પના નિહાળી તમે નવિન યુજ્જ્વલ ગર પ્રસન્ન થશે કેમકે એમાં બનાવટ નહોતી. એમાંથી પણ ગાંધીજી વિષેની જેટલી કલ્પના :

• શિષ કપાવે ને દેહ વેરાવે,

લૂંટાવે ઘરખાર;

એ અધુન વાણિયાઓ ભૂતકાળની તવારીખમાં કરતા આવેલ છે (સગાળશા વગેરે), પણ એક વાણિયો કદાચ નહિ કરે :

વાણિયો કે દિ'ય નમતી ધારણ,
નહિ તોળે તલભાર.

એવી એવી કક્ષના ગૂંથણીમાં ગાંધીજીના રાજકારણનું એક ચમત્કૃતિમય અને ચોટદાર સ્વરૂપ ઊભું થતું હતું. વર્તમાન રાષ્ટ્રભાવનાની એક પણ દ્રષ્ટિત રેખા એમાં નહોતી જડતી.

ગાયક ત્રિપુટિ

આ ત્રણે જણા ભેળા ગાતા, વચ્ચે વચ્ચે પ્રત્યેક ભાવને પ્રકાશિત કરવા માટે અનેક અન્ય કવિતા-દીપકો ધરતા હતા. માર્મિક ગદ્યનાં મોતી મઢતા હતા. દાયરો એકદીસ બનીને હલમચી જતો હતો. કોઈપણ શિષ્ટ સમીક્ષાને રસભેળ બનાવે તેવી આ 'કવિતા કહેણી અને કંઠ'ની સંપૂર્ણ મિઠાવટ હતી. જનસમૂહને ડાઘાવવાના શાબ્દિક ખેલોમાં ફસાઈ જવાની આજે જ્યારે બીડી દહેશત ઉમી થઈ છે, સારે બીજ બાલુ આ શબ્દાડંબરી લેખે હીણાયેલી ચારણી કવિના નૂતન અર્થ ગાંભીર્ય ને કટલી આસાનીથી ધારણ કરી રહી છે ! એ કવિતામાં તેમજ એ કવિતા પ્રત્યેના ચારણી સમૂહ-પ્રેમમાં એક મહાન વાતની પ્રતીતિ થઈ પડી છે કે, કુરુષિ તેમાં નહોતી; પ્રશસ્તિ રસ પ્રત્યે અણુગમેા હતો; નિર્મળ માનવ પ્રેમ હતો.

એને 'મીશનરીઓ'જ બનાવળે

આ ચારણીનું સ્થાન આપણા સમાજની નવરચનામાં ક્યાં છે ? તેમના એક જાતિ તરીકેના વિદ્યા વારસાને ભોગે કશુંજ જીવન-પણટો ન થવો જોઈએ એમ હું માનું છું. વિદ્યાનો સંસ્કાર વર્ષો જૂનો વડો છે; એને ઉચ્છેદીને એને સ્થાને આપણે જે રોપશું તેની ઘટા બંધાતાં ફેટીવાર લાગવાની ? એ આખી જાતિ વિદ્યાનીજ 'મીશનરી' રહે તેવો પ્રયત્ન શું મુશ્કેલ છે ?

આફ્રિકા જઈ આવેલા મેરૂલા

તાજેતરમાંજ એમાંના એક જોદ્ધાર ગાયક, ગણું જેનું પાતાળકૂટ જળ વાવડી જેવું છે તે ગદ્યી મેરૂલા, આફ્રિકાના નોતર્થા એ દરિયાપારને દેશ લાગટ ત્રણ મહીના સુધી શહેર-શહેરે લોક સાહિત્ય સંભળાવી આવ્યા, અને આપણાં દેશપાર બાંધવ જતોએ એ મેરૂલાની વાણી દ્વારા જનમહમિનું સંસ્કાર દૂધ પીધું. આફ્રિકામાં તેમજ આપણી અન્ય વસાહતોમાં અસારે કોણુ કોણુ જાય છે ? સંસ્થાઓના ફંડકાળા કરનારાઓ, વકીલો, વ્યાપારીઓ, પ્રચારકો, ચળવળીઓ. નથી જતાં કેવળ સંસ્કારના પ્રતિનિધિઓ, નથી જતા કેવળ શાયરો, ગાયકો, કથાકારો, સરસ્વતીના સંદેશવાહકો. જઈને ઝટ ઝટ ફંડકાળા આટોપી પાછા વળી આવનારાઓથી શું બળે ! આ મેરૂલા, આ દૂલા ભગત, અને એના સંસ્કારોના અનુગામી એકસો ચારણુ પુત્રો હિંદ તેમજ હિંદ બહારની યુર્જર વસાહતે વસાહતે ધૂમી વળે ત્યાં પેઠાન પેઠીનાં ખાસી પડેલાં સ્ત્રીઓ, બાળકો અને ધર્માર્થી પુરોહિતે દેશનાં દીસ બોલડાં કંદસ્થ કરાવતા પરિભ્રમણુ કરે, એ શું એક મહાન જ્વરિયાત નથી ?

એ કંઠોને ન ગુમાવશો.

આજે આપણી પાસે તૈયાર તાલીમ બદ્ધ કંઠો ક્યાં છે ? ગળાં આપણાં બોખરાં બોલે છે. આપણી તળપદી ભાવનાઓને સજીવન કરનારી સ્વર-શક્તિઓનો નાશ ન કરશો સુધારણાને નામે એનો ઉચ્છેદ ન આચરતે એનું જીવન જોત ન કરજો.

શ્રી. હવેરચંદ મેઘાણી

(' જનમહમિ ' (દૈનિક) તા. ૨૬-૫-૩૮. ' કલમ અને કિતાબ ' શિર્ષકમાંથી) ૨૧

[૩] ચારણ સંમેલન, રાજકોટ.

રાજકોટમાં ગયા અઠવાડિયામાં એક સાથે બે સમારંભો થયા. એક ચારણ સંમેલનનો અને બીજો હતો આર્ય સંમેલનનો.

‘ચારણ’ શબ્દની સાથેજ વાતો, દુહા અને રાજપૂત યુગની ઝાંખી થવા માંડે. એ રીતે ચારણી સંમેલનનું આકર્ષણ અન્ય હતું. ખુદ સ્વાગત પ્રમુખની ગુલખારી પાઘડી આપણી ગત પેઢીના પહેરવેશની વાતો કરતી હોય એવું લાગે. આ બધા જૂના અને રંગ ઘેરગી પહેરવેશ પાછળ નવા યુગનો પ્રાણ ધબકતો થયો છે, એવો રહેતાં રહેતાં ખચકો પડી.

ચારણ કોમનું ઐક્ય

સ્વાગત પ્રમુખશ્રી રામદાનજીના ભાષણમાં સંમેલનનો હેતુ અને લક્ષ્યર્થિન્દુ સ્પષ્ટ તરી આવતાં હતાં. તેમણે જણાવ્યું કે ચારણ કોમ રાજસ્થાની હિંદ, એટલે મુખ્યત્વે રાજપૂતાના અને કાઠિયાવાડમાં છે. તેમની વચ્ચે ભાષા અને ભૂગોળનું અંતર ગમે તેટલું હોય પણ સાંસ્કૃતિક અંતર નથી; બધેકે ઐક્ય છે. એટલે સમસ્ત ચારણ કોમ પોતાનાં જુદાં જુદાં અંગો સાર્થિ સહકાર સાથે એ જરૂરી છે. એ સહકારનું દબાંત આપતાં કહ્યું કે સદાવતો અપાતાં. હોય ત્યાં વ્યક્તિગત સાધુઓને લોટ કે પાશેર ખીચડી મળે, પણ સૌ પચાસ સાધુઓ કાંઈ મહંતના નેતૃત્વ નીચે ગામમાં દાખલ થાય તો તેમને પાકાં સીધાં મળે.

જેગેંદ્ર જેવા પ્રમુખ

એવા એક આગેવાન તરીકે સંમેલનના પ્રમુખસ્થાને રાજપૂતાનાના રાષ્ટ્રભક્ત ચારણ-યોગી કોટકારશ્રી કેસરીસિંહજી હતા. તેમનું વ્યક્તિત્વ પણ પ્રગળ હતું. ચારણો તેમના પ્રત્યે આદરભુક્તિથી જોતા હતા. તેમનું કૃશ છતાં નિર્માળ, યુવાખી ઝાંય પાડતું શરીર, ભગવું પહેરણ, ટુંકું ધોતિયું, ઉઘાડા પગ અને માથે રેશમી લાંબા કેશ સૌ કોઈનું આકર્ષણ હતાં.

આ વ્યક્તિત્વ પાછળ તેમણે રાષ્ટ્રકાળે આપેલો ભોગ હતો એ વસ્તુ તો તેમની ઓળખાણ આપનાર એક મારવાડી ચારણ કવિએ કહી સારે ખચર પડી. એક પદ્યન્ત્ર કેસમાં તેમને ૨૦ વરસની સજા થયેલી. તેમના જીવાન પુત્રનું કાષ્ઠક ક્રાંતિકારી ચળવળમાં લાગીદારી લેવાના સંશય તમે જેઠાંમાં કમોત થઈ ગયું. શાહપુરા (મિવાડ)માં આવેલો તેમનો દબરોનો ગરાસ જમ કરવામાં આવ્યો, મકાનો જપ્ત થયાં, પણ જેલમાંથી પાંચ વરસ પછીજ તેમનો છૂટકારો થઈ ગયો. સારથી તેમનું નિરૂપદ જીવન શરૂ થયું.

રાજપૂતાનાના આજે એ લોકસંમાનિત પુરૂષ છે. તેમણે ભાષણને બદલે થોડા ઉદગારોજ કાઢ્યા એમ કહીએ તો અવાસ્તવિક નહિ ગણાય. તેમાંના કેટલાક આ રહ્યા: “હું તો એકંતવાસમાં રહેવા માગું છું, પણ મારી પાસે જ્ઞાતિનાં કાર્ય માટે એક વર્ષ આપવાની માગણી થઈ; અને મારે તાબે થવું પડ્યું. પણ એટલેથી તમારી ફરજ પૂરી થતી નથી. તમે મને મદદ આપશો તોજ હું માથે નાંખેલો ઓળો ઉપાડી શકીશ.”

x

x

x

સભાનો પ્રાથમિક વિધિ શરૂ થયા પછી મસલત સમિતિ ચર્ચાણી. તેમાં ગુજરાત, કાઠિયાવાડ તથા રાજપૂતાનાના પ્રતિનિધિઓ ગૃહાયા. સમિતિમાં મુખ્ય ચર્ચા જીનું ‘ચારણ’

માસિક શરૂ કરવા અને તેના સ્થાપક સ્વ. કિશોરસિંહજીનું સ્મારક રચવાની વાત હતી. કિશોર-
સિંહજી પ્રમુખના નાના ભાઈ હતા, અને પ્રસિદ્ધ પુરુષ અને ઇતિહાસકાર ગણાઈ ગયા છે. કહે
છે કે સૌરાષ્ટ્રના સ્થામજી કૃષ્ણવર્મણિ ઉદેપુરનું દીવાનપદ અપાવનાર તેઓ હતા.* રજવાડી
પોશાકમાં શાભતા રાજપૂતાની ચારણ યુવકાએ આ ચર્ચામાં કીક ભાગ લીધો, પણ પ્રમુખે તો
એવા સ્મારકકાર્યને વ્યક્તિગત રીતે સહુ ભાઈઓ ઊપાડે અને સરેશા ઉપર તેનો ભાર ન
પડવો જોઈએ, એમ કહી ચર્ચા સમેટી લીધી.

જનગૃત બનતા ચારણો

પાંજળથી જાણવા મળ્યું કે, 'ચારણ' માસિક શરૂ થશે, એમાં પણ કામનાં દૂપણો ન
પેસવાં પામે એ માટે જે દલીલો યદ્ય તેતો ચારણોને પોતાની અવનતિનું કેટલું ભાન છે,
પોતાનામાં શુભપણો કરવા કેટલા ઇતેજ્ઞર છે તે બતાવનારી હતી. તે બતાવવા જુના સંસ્કાર
અને નૂતન કેળવણીનો પણ સંગ્રામ જણાયો.

રાજપૂતાનામાંથી આવેલા કેટલાક ચારણો તો બી.એ. અને એમ. એ. થયેલા હતા.
અહીંના કરતાં ત્યાં ચારણોને રાજ્યાશ્રમ ઓછો મળતો હોય એમ લાગ્યું. કદાચ એટલાજ
કારણે ત્યાં સ્વાશ્રયી બનવા તેઓ રૂપાટી ઉપાધિ મેળવતા થયા હશે. તેઓ બધા •વિદ્વાનો
હતા, સંશોધકો હતા, સ્વ. કિશોરસિંહજીના શિષ્યો પણ હતા. પણ દૂલા ભગત કહે છે તેમ
ચારણ પાસે કંઠ, કવિત્વ અને વકતૃત્વ હોવાં જોઈએ એટલા પ્રમાણમાં ઉત્તરના ચારણોમાં
જેવા ન મળ્યાં. આપણા દૂલા ભગત, ગઢવી મેરલા, ઠારણભાઈ, રામદાનજીભાઈ, ખેતસિંહજી
વગેરેને સાંભળ્યા પછી ચારણી કાવ્યશક્તિનો ખ્યાલ આવે.

ડાયરો જોઈ લ્યો !

સમજાવતો રજ કોઈ સલા કરતાં ડાયરો જોવો વિશેષ લાગે. ત્યાં પુરશી વગેરે નહોતું.
એક મોટો શમિપાનો ઉભો કરેલો. જમીન ઉપર જનજમ અને ગાદલાં બીજાવેલાં. ડાયરામાં
કસુંબા તો નહોતા ઘોળાતા પણ હોકા ન હોય તો વાતાવરણ લૂખ્ખું સૂકું જ લાગે ને ?
એટલે તે પણ પ્રમુખની પાસેજ ગગડતો હતો. અને ડાયરો હોય ત્યાં ગગડ્યા વગર રહે નહિ !
પુદ માજી વાઈસરોય કર્જનના દરબારમાં પણ જુનાગઢ નવાબ હોઝો શુરેશુડાબા સિવાય રહી
શક્યા નહોતા. કર્જન રોતો પીગો થયો પણ ત્યાં કરે શું ? તેણે પણ કાઠી રજવાડાંનો ડાયરો
જમાવ્યો હતો.

ડાયરાની મઝા

આવા ડાયરામાં ભાગણો કરતાંય વાતો અને આજુબાજુ થતા મર્મો સાંભળવાની મઝા
છે. પ્રે. દવેનું ભાગણ ચાલતું હતું ત્યારે એક ભાઈ બિચી ડોક કરીને તે સાંભળવા લાગ્યા.
આ જોઈ એક ચારણુથી ન રહેવાયું. તેણે ડાયરું મોં રાખી તરતજ કસું ભાઈ, આ તો સલા
છે. આમાં સાંધ્યા જેવી ડોક કરીને કોઈની આડે આવતું એ રીત ન કહેવાય.

* અહીં ખચરપત્રી મહાશયની જૂઝ થાય છે. કાકુરથી કિશોરસિંહજીએ નહિ, પરંતુ
કાકુરથી કેસરીસિંહજીએ જ્યારે તેઓ મહારાણા ઉદયપુરના સત્રાહકાર તરીકે ઉદયપુરમાં હતા,
ત્યારે પોતાના જેવા ક્રાંતિવાદી વિચારો ધરાવતા સ્થામજી કૃષ્ણવર્મણિ ઉદયપુરનું દીવાનપદ
અપાવ્યું હતું.

—ત્રી, ગુજરાતી વિભાગ.

સમૈલનમાં ખીન ચારણ વક્તાઓને પણ બોલવાની તક આપવામાં આવી હતી, તેમાં પ્રો. દવેનું ભાષણ ગમી જાય એવું હતું. તેમના ભાષણમાં કોઈની ઉપેક્ષા નહોતી. તેમણે કેવું કે, ભણેલા અને ઉપેક્ષા વર્ગના માણસો સંસ્કૃત ભાષા વાપરે છે, અને આમર્ગ પ્રાકૃતભાષા બોલે છે, તેવીજ રીતે કાવ્યમાં ધિંગળના ઉપાસકો સંસ્કૃત જનતાને પહોંચી શકે અને ધિંગળના ભકતો-ચારણો આમ જનતા સુધી પહોંચાડી શકે છે.

આજના રાષ્ટ્રભાવી ચારણો

ચારણ એટલે રાજાઓના ખુશામતખોરજ સમગ્રાય. પણ અહીં એ ભ્રમ ભાંગી જાય એવું હતું. રજવાડાંઓ પ્રત્યે એક પણ શબ્દ ખુશામત કે વાહ વાહનો ન મળે, એટલુંજ નહિ પણ શ્રી દૂલા ભગત અને મેરલા જેવા કવિઓએ તો તેમને હળવા ચાપકા માર્યા હતા, અને ચારણો તો પોતાના એ માનસ-દૂષણને દર પળે કાઢી નાખવા તૈયાર હોય એમ જણાતું હતું. તેનું સ્થાન અણીશુદ્ધ રાષ્ટ્રભાવનાએ લીધું હતું, પણ એનું વાહન તો ચારણી સાહિત્ય રહ્યું છે. એ તો દૂલા ભગતે ‘ગાંધી મારી દીકરી’ ગાઇ બતાવ્યું ત્યારે તો સહુને પ્રતીતિ થઇ.

તેમનાં આનંદ અને ખુમારી

એ સાહિત્યના ખીન ચારણી સંશોધકો અને ઉપાસકો પ્રત્યે પણ ચારણોનું પોતાના જાતભાઈ જેટલું મમત્વ બધાતું હતું એ પણ અહીં જેવા મળ્યું.

રાજપૂતાનાના ચારણોને પણ શ્રી ઈસરદાસજી જેવા કવિ વિષે શ્રી. મેઘાણીએ પૂછેલા ખારીક પ્રશ્નોથી તેમના સાહિત્યમાં આટલે સુધી ખીજઓ પણ રસ લઇ રહ્યા છે એ જોઇ એ આનંદ અને ખુમારી અનુભવતા હતા અને એ સાથે સહુ ચારણો વીખરાયા.

—‘કુલછાબ’ ના ખાસ ખબરપત્રી તરફથી.

(‘કુલછાબ’ તા. ૨૭-૫-૩૮ ના અંકમાંથી ઉધૃત).



[૪] શારદા પુત્રોનું સંમેલન

(લિખક: શ. શ. ગોકુળદાસ દ્વારકાદાસ રાયચુરા, તંત્રી ‘શારદા’)

ચારણ ચોથો વેદ, વણ પઢિયો વાતું કરે;

ભાષે આગમ ભેદ, જેને જીભે જોગણી.

x x x x

ચારણ, સતીને ગંગજળ, ઈર્ષ સભા અનુમાન;

કરે કપૂરે કોગળા, શિર ખેડે લોખાન.

Charans are born poets; Poetry is their sacred inheritance. They have the poet in their souls and their hearts are ever green haunts of the poetie music.

Kedarnath Tewari, M.A., LL. B.

કાઠિયાવાડને આંગણે તા. ૨૧ મી મે ૧૯૩૮નો દિવસ વર્ષો સુધી યાદગાર રહેશે. એ દિવસે કાઠિયાવાડના પાટનગર રૂપે ઝોળખાતા રાજકોટમાં શ્રી અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનની ખેડક દાકર શ્રી કેસરીસિંહજી જેવા સમર્થ ચારણના અધ્યક્ષસ્થાને મળી હતી. અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનનું આ પાંચમું અધિવેશન ગુજરાત, કાઠિયાવાડ, કચ્છ અને મારવાડના સરકારી ચારણોની હાજરીથી સહુ કોઇનું લક્ષ્ય ખેંચતું હતું. આ સંમેલનનું પ્રથમ અધિવેશન પુષ્કરરાજમાં, બીજું દેશણકમાં, ત્રીજું પુષ્કરરાજમાં અને ચોથું જોધપુરમાં મળેલ. જોધપુરના એ સંમેલનમાં કાઠિયાવાડ તરફથી કાઠિયાવાડી ચારણોના પ્રાણુસમા શ્રી પિંગળશીલાલ પાયક, શ્રી ગદવી મેરલા મેઘાણુંદ તથા શ્રી ખેતસિંહજી આમંત્રણ આપેલ. એ આમંત્રણ આપનારાઓને પણ આ અધિવેશન આટલું બધું સફળ થયે, એમ એ વખતે લાગતું નહોતું. પણ તા-૨૧-૨૨-૨૩ એ ત્રણ દિવસો કાઠિયાવાડના ચારણો માટે અભિનંદનીય હતા, એટલુંજ નહિ પણ રાજકોટની જનતાને એ દિવસો સદૈવ યાદ રહેશે. સંમેલનો તો રાજકોટને આંગણે ધણીય ભરાય છે અને ભરાશે, પણ શારદા પુત્રોનું આ સંમેલન તો કાઠિયાવાડને આંગણે એક ભવ્ય પ્રસંગ હતો. ચારણોની જન્મભૂમિ મારવાડ. મારવાડથી તેઓ કચ્છમાં આવ્યા અને જૂજતી પ્રજાલાખાની પાકશાળા એમની જ્ઞાનદાત્રી સંસ્થા બની, એટલે એની જ્ઞાનભૂમિ કચ્છ બન્યું.* કચ્છમાંથી જન્મ રાવળના વખતથી ચારણો કાઠિયાવાડમાં આવ્યા; અને કાઠિયાવાડના એ ઇતિહાસ પ્રસિદ્ધ બહેન રાજવીએ, એ શારદા પુત્રોને સન્માન્યા એટલે કાઠિયાવાડ એમની વસવાટ ભૂમિ બની. આજે ગાંધીજીના શુભમાં ગુજરાત ચારણોને સાંભળવા આતુર બન્યું છે. અને મારા છેલ્લા પંદર વર્ષના અનુભવ પરથી હું કહી શકું છું કે, ચારણી સાહિત્યે ગુજરાતનાં શિષ્ટ ગણુતાં નરનારીઓને પણ મુગ્ધ કરેલ છે. આજે ગુજરાત એ રીતે ચારણોને સત્કારે છે એટલે ગુજરાત એ ચારણોની નવી સત્કારભૂમિ બનેલ છે.

* અહીં લેખક મહારાજની જૂઝ યાચ છે. ત્રિવંગ દેશનો વસવાટ મુકા પછી ચારણોએ સર્વપ્રથમ સૌરાષ્ટ્ર દેશને પોતાની નિવાસ ભૂમિ બનાવ્યાનો ઉલ્લેખ મળે છે, અને તેથીજ રાજપૂતાનામાં આજેય કાઠિયાવાડને ‘ચારણો રા પીઢર’ તામથી પૂજ્યભાવે સન્મારજામાં આવે છે. નિકમની આઠમી સદીમાં ચારણ જાતિમાં પ્રધાન આરાધ્યા દેવી આવડ (ઉખખટ) તો જન્મ થયો. એ દેવીએ પોતાનું નિવાસસ્થાન રાજપૂતાના અને સિંધની સીમાપર બનાવ્યું હતું, તેથી સૌરાષ્ટ્ર તેમજ તેની આસપાસના પ્રદેશમાં વીખારાયેલી ચારણ જાતિએ એ મહારાજિતાના પ્રભાવથી પ્રભાવિત બની રાજપૂતાના પ્રદેશના પશ્ચિમી ભાગમાં પોતાનો વસવાટ કર્યો. અને ત્યાંથી પાછી આ જાતિ ગુજરાત, કાઠિયાવાડ અને કચ્છમાં આવી. એ રીતે રાવળ જામની પૂર્વે પણ કાઠિયાવાડમાં ચારણોના વસવાટના ઘણા દાખલા મળી આવે છે. જૂજતી પાકશાળા તો ફક્ત દોઢસો વર્ષ પૂર્વે સ્થાપિત થયેલી છે, અને તે ગુજરાત, કાઠિયાવાડ તેમજ કચ્છ પૂરતીજ જ્ઞાનદાત્રી સંસ્થા રહી છે. રાજપૂતાના ને તેમાં સંમિશ્રિત કરી શકાય નહિ. એ દેશમાંનાજ જોધપુરના કનકકુશળ નામે ગોરજીએ જૂજતી પાકશાળા સ્થાપી હતી. એટલે કે રાજપૂતાનાના ચારણોને તો તેમના દેશમાં જ સાહિત્ય જ્ઞાન મેળવવાની સઘાયથી સવડ રહી છે.

—ત્રી, ગુજરાતી વિભાગ

દેશના કેટલાયે આગેવાન નેતાઓએ મારી પાસે એક માગણી કરી છે કે ગદવી મેઘા-
ણુંદભાઈ, કવિશ્રી દૂલાભાઈ કાગ તથા ગદવી મેરલા જેવા ચારણો ગુજરાતને ગામડે ગામડે ફરી
રામકથાની પરબો ગામે ગામ માટે તો ગુજરાતની રાષ્ટ્રભાવના ને આજે છે એથી વિશેષ
જરૂર જાગૃત બને.

એવા ચારણોની હું શોધમાંજ રહું છું, અને આજે જ્યારે આ અખિલ ભારતીય આ-
રણુ સંમેલનમાં કવિ દૂલાભાઈ તથા ગદવી મેરલાની બેઠડીએ ‘માતાજીની નોખતુ વાગે છે, એ
ગીતને યાદવું’ ત્યારે ચારણોએ પ્રાચીનકાળમાં દેશની ને સેવા સાધી છે એમાં આ નવયુગમાં
આવી ચારણુ બેઠડીઓ રાષ્ટ્રની સેવા સાધી ચારણુ જ્ઞાતિને ઉજ્જવળ બનાવશે એ મારાં
સ્વપ્નાંઓ સાચાં પડતાં લાગ્યાં.

રાજદરબારના એ કવિઓ આજે લોક દરબાર જગાવી રહ્યા છે, નવયુગની પ્રેરણાની
ઝડી એમની ઝમકદાર ભાષા અને જોરદાર વાણીમાં વરસાવી રહ્યા છે. એને માટે શબ્દોનાં
વર્ણનો અધૂરાં છે. એતો લોકોએ સાંભળવું જોઈએ.

અખિલ ભારતીય ચારણુ સંમેલનમાં કેટલીક વિશિષ્ટતાઓ હતી. એમાં ખાસ કરીને
શબ્દસૂતાનાના ચારણુ અધુઓનું જ્યારે મારી સાથે મિલન થયું: ત્યારે એક વિશિષ્ટતા પહેલીજ
વખત જીવનમાં અનુભવી. ચારણો ઊંચી ટેજવણી લઈ આગળ વધે એ જોવાના અભિલાષ
તો મને વર્ષોથી છે. પણ ચારણુ ચારણુ ન મટે એ જોવા માટે હું આતુર રહું છું. મારવાડના
શિશિત ચારણુ ભાઈઓને જોયા તો એમાં આજની ઊંચી ટેજવણીની જ્ઞાનગંગા અને ચારણોની
ચારણુ તરીકે વિશિષ્ટતાઓની રસગાના સંગમ જોઈ મારી આંખો ફરી છે.

મારવાડ અને રજપૂતાના મળી લગભગ સત્તર ચારણો આજે ગ્રેન્ડ્યુએટ છે. એમાંના
ચાર ખી. એ. એમ. એ. એલ. એલ. ખી. ચારણો રાજકોટના આ સંમેલનમાં ભાગ લેવા
આવ્યા હતા. ચારેની પ્રતિભા, ચારેનો જ્ઞાતિપ્રેમ, ચારેની કવિતા અને ચારેની સાહિત્ય લક્ષિત
અનુભવવાની આવી સુંકર તક મને પહેલીજવાર સાંપડી.

શ્રી સત્યદેવ આદા, ખી. એ. એલ. એલ. ખી. મારવાડના ગામ પાંચેટિયાના મૂળ
રહીશ છે. ૨૩ વર્ષની ઊંમર છે. પતિયાળા રાજ્યના માનીતા ઇતિહાસકારક ઠાકુર શ્રી હિ-
શોરસિંહજીની સલાહથી આજે તેઓજ “પશ્ચિમ ભારતના ઇતિહાસમાં ચારણોનું સ્થાન” એ
વિષે હિંદુ વિશ્વ વિદ્યાલયની એમ. એ. ની ડિગ્રી માટે થીસીસ લખી રહેલ છે. અકબરના
જમાનામાં પ્રસિદ્ધ રાષ્ટ્રીય સાયર તરીકે પંકાયેલ કવિ દૂરસાજી આદાની બારમી
પેઢીએ તેઓ થાય છે. એમના પિતા મારવાડના પ્રસિદ્ધ કવિ ઠાકુર શ્રી શંકરદાનજી આદા
અખિલ ભારતીય ચારણુ સંમેલનના એક સભાપતિ હતા. એમના આ સત્પુત્ર સત્યદેવજી આદા
કાશીમાં રાજસ્થાન એસોસીએશનના મંત્રી છે.

શ્રી જયકર્ણુજી બારહડ, ખી. એ. એલ. એલ. ખી. એડવોકેટ મારવાડમાં સોજત ગામે
વકીલાત કરે છે. એમના પિતા શ્રી શકિતદાનજી બારહડ ચારણુ જાતિમાં સંસ્કૃતના અદિતીય
વિદ્વાન તથા કવિ તરીકે પ્રસિદ્ધ હતા. શ્રી જયકર્ણુજીની ઊંમર ૩૦ વર્ષની છે, જગીરદાર છે,
વકીલાત કરે છે અને કવિતાને પણ આરાધે છે.

શ્રી આશદાનજી બારહડ ખી. એ. એલ. એલ. ખી. હિંદુ વિશ્વ વિદ્યાલયના પહેલા વર્ગમાં
પ્રવેશ છે. જોધપુરમાં આજે ન્યાયાધીશ છે. મારવાડ જગીરદાર સભાના તથા મારવાડ

પ્રાંતીય ચારણ સંભાના મંત્રી છે. ૨૬ વર્ષના એ જુવાને કોલેજની કારકીર્દીમાં પણ જાહેર સંસ્થાઓના મંત્રી તરીકે નામના મેળવેલ છે.

શ્રી શુભકર્ણુજી કવિયા એમ. એ., એલ એલ. બી. દિંદીના પહેલા એમ. એ. છે, એલ. એલ. બી. માં ફર્સ્ટ ક્લાસ તથા એમ. એ. માં સેકન્ડ ક્લાસમાં આવેલ છે. 'ડિગ્રી સાહિત્યમાં ભક્તિ કાવ્ય' એ થીસીસ એમણે એમ. એ. માં લખી હતી. દિંદુ યુનિવર્સિટીના રિસર્ચ સ્ટોલર તરીકે એમનું નામ સુપ્રસિદ્ધ છે. ૨૪ વર્ષની એમની ઉંમર છે. કવિત્વ સંપન્ન છે અને બોલવાની દૃઢ પણ સારી છે. અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનના તેઓ સહ કારી મંત્રી છે. ઉત્સાહી અને યુવાનીને શોભાવનારા છે.

આ ઉપરાંત બીજા પાંચ એલ એલ. બી. અને સાત એન્યુએટેડ મારવાડમાં છે. એ મનો પરિચય સાધવાના પણ અભિજ્ઞાન છે. આ બધા ભાષ્યોને પચાસ હજારથી માંડી નાની રકમની જાગીરા છે. મારવાડનાં લગભગ ૩૦૦ ગામેમાં કુલ પાંચ લાખની ઉપજ આ રણેને મળે છે. મારવાડમાં ચારણોની વસ્તી પંદર હજારની છે; પણ એ લોકોમાં ભાષ્યે કોઈ ચારણ માગે છે. માગું એ એમના શબ્દકોષમાં નથી. ચારણને માગણ તરીકે ઓળખ નારાઓ ચારણ જાતિને પિઝાનતાજ નથી એમ કહી શકાય. કમનસીબે કાઠિયાવાડ-ગુજરાતમાં ચારણોમાંના કેટલાકો પોતાપણું ભૂટ્યા એટલે આજે એની માગણમાં ગણતરી થઈ. ચારણોને તે રાજાઓ ગામ ગીરાસ આપતા અને શ્રીમંતો એની વિદ્યાને પોષતા. ચારણોની એ ઉચ્ચ સ્થિતિનો ખ્યાલ મારવાડના ચારણો આજે આપી શકે છે.

આ સંમેલનની વિશિષ્ટતાઓમાં રાજકોટની ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના મુખ્ય આચાર્ય શ્રી ડી. એન. દવેનાં ચારણોની ઉત્પત્તિ અને સ્થિતિ વિશેનાં વિદ્વાત્મકાં ભાષણો મુખ્ય સ્થાન લાભ્ય છે. જૂનાગઢના માણ પોલીસ સુપ્રી. વીરના વરેલા શ્રી હેલ્ડાંકરબાઈ દવે, શ્રી જવેરચંદ્ર મેઘાણી, શ્રી ત્રિભુવન ગૌરીશંકર વાસ અને માસ્તર વસંત વગેરેનાં પ્રવચનો, દાગો અને સંગીત પણ આ સંમેલનની ઉપયોગિતામાં વધારો કરનાં હતાં.

ખાસ કરીને બે દિવસ સુધી રાત્રે દાવરાની જગેશી રમડટ. તેમાંય કવિશ્રી દ્વાભાઈ તથા ગદ્યી મેરલા, તથા મેઘાણીની અને કવિશ્રી ત્રિભુવન વાસ તથા માસ્તર વસંતની પ્રસાદ તો રાજકોટ વર્ષો સુધી યાદ કરશે.

આ સંમેલને કાઠિયાવાડ, ગુજરાત, કચ્છ અને મારવાડના ચારણોને સંગઠિત બનાવ્યું છે. ચારણ જાતિના કેટલાક સામાજિક રિવાજો પણ સુધારણા માગે છે. આ સંમેલને સાહિત્યની ચર્ચા સાથે સમાજ સુધારણાનો પણ પ્રયત્ન રચ્યો છે.

દરબોમાં 'ચારણ' ત્રૈમાસિક પત્ર પ્રગટ કરવાનો દરબ અતિ જરૂરનો છે. ચારણો વિં સાચી સમજ જનસમૂહને આપવા માટે આવા પત્રની જરૂરિયાત છે. મહાગુજરાત ચારણી સાહિત્ય અને ચારણોમાં રસ લેતું થયું છે, એવે વખતે આવું પત્ર જરૂર આવકારદાયક થઈ પડશે.

આ સંમેલનના અધ્યક્ષ દાકર શ્રી કેસરીસિંહજી એક રાષ્ટ્રીય ચારણ તરીકે મશહૂર છે એમના નેતૃત્વ નીચે ચારણો રાષ્ટ્રધર્મને સ્વીકારે એવા અભિજ્ઞાન આજે સહુ કોઈ સેવે છે.

—'શારદા' જુન ૧૯૩૮ માંથી ઉદ્ભૂત

ગઇ તા. ૨૧-૨૨-૨૩ એ ત્રણ દિવસો રાજકોટ માટે સદૈવ સ્મરણમાં રહે તેવા નોંધવા જેવા હતા. એ દિવસોમાં અખિલ સારતીય ચારણ સમેલનનું પંચમ અધિવેશન ભરાયું હતું. જેમાં કચ્છ, કાઠિયાવાડ, ગુજરાત, મારવાડ અને રજપૂતાનાના સરસ્વતી પુત્રો-સાચા ચારણો એકઠા થયા હતા. આ સમેલનને કાઠિયાવાડમાં લાવવાનું માન સ્વાગત પ્રમુખ શ્રી રામદાનજી દાપરિયા, શ્રી હારણભાઈ મહેડુ, લોંબડીવાળા શ્રી શંકરદાનભાઈ, શ્રી દૂલાભાઈ કાગ, શ્રી પિંગશીભાઈ પાપક, શ્રી મેરૂઆ-મેઘાણુંદ એ સર્વ કાઠિયાવાડના આગેવાન શારદા પુત્રોને ફાળે ગય છે. અને એ સમેલનની યંત્રસ્તી વ્યવસ્થા કરવાનો યશ પણ એજ સોરડી શાયરનેજ છે. એ સોરડી કવિઓ કાઠિયાવાડનું પરમ ધન છે. એમણે અખિલ ભારતના ચારણોને કાઠિયાવાડમાં નોતરી સાચા ચારણી સંસ્કારનાં દર્શન સહુને કરાવ્યાં છે. એટલુંજ નહિ પણ ચારણો એટલે 'ખુશા-મંતભોર' એ આક્ષેપ મૂકનારાઓ ખોટા છે, એ સિદ્ધ કરી બતાવ્યું છે. જેણે જેણે આ સમેલનમાં હાજરી આપી છે એ અમારી સાથે પોતાનો સર પુરાવી જરૂર કહેશે કે, ચારણોમાં યુગ કવિ, રાષ્ટ્ર કવિ થઇ શકે તેવા સમર્થ શારદા પુત્રો છેજ.

‘શારદા’ ના તંત્રી મહાશયની વિચારનોંધ. ‘શારદા’ જુન ૧૯૩૮.

સાહિત્ય અને જાતિ સેવાનો તપસ્વી.

લેખક:—શ્રી જીવણલાલ નાથાભાઈ વરસડા, ભાદરવા.

સરસ્વતી, લક્ષ્મી અને ઉચ્ચ અધિકાર જેમની સેવામાં હાજર હતાં છતાં જેઓ સ્વાર્થનું યાવી પૂતળું બન્યા નહોતાં : જેમણે સા વિદ્યા યા વિમુક્તયે ના મંત્રો ઝીલી સાહિત્ય અને આત્મ સમર્પણ ધર્મ અદા કર્યો હતો : જેઓ પ્રારબ્ધ તેમજ સ્વપુરુષાર્થથી પ્રાપ્ત થએલ જીવનનાં મીઠાં ફૂલો ખીજીએને વહેંચી શ્રેયસ્તા ભાગીદાર થયા હતા : એટલુંજ નહિ, જેમણે પોતાના દેશ અને જાતિ બંધુઓના કલ્યાણ માટે-સ્વામિ ધર્મ માટે-સ્વ સંસ્કૃતિના સર્વનાશને અટકાવવાને માટે-રાષ્ટ્રની બહિષ્કેદીપર પોતાના સર્વસ્વની અને પ્રાણની આહુતિ આપી હતી : જેઓ સુખ ભોગવવાને સમર્થ હતા છતાં રાષ્ટ્રની ઇજ્જત અને આઝાદી માટે દુઃખના પહાડ નીચે દગાયા હતા; એવા પવિત્ર પુરુષોના વંશમાં જન્મ થયો એ પણ એક પૂર્વના પુણ્યનું પ્રયણ પ્રમાણપત્ર છે.

આતું પ્રમાણ પત્ર ધરાવનાર એક માનવંત મહેમાન બહદુ ગુજરાતને આંગણે આવવાનો હતો. તેનાં દર્શન માટે ગુજરાતની ચારણ જનતા આતુર નયને રાહ જોઈ રહી હતી. એક તરફ અખિલ ભારતીય ચારણ સમેલનનું પંચમ અધિવેશન ગુજરાતમાં ભરાવાનું હતું. તેમાં પ્રમુખ તરીકે તેને હાજરી આપવાની હતી, બીજી બાજુ ચારણ દેવી બહુચરાજીના પ્રસ્તની ચર્ચા માટે શ્રીમંત ગાયકવાડ સરકાર વિજ્ઞાપતથી પંધારે કે તેના અધ્યક્ષપણા નીચે વિદ્વાન ચારણોનું એક ઉપયુક્ત વડોદરામાં આવવાનું હતું એટલુંજ નહિ, ચારણ જાતિને નવ યુગના સંદેશ સાથે અતીત સ્મૃતિની યાદ આપવા માટે સમેલનના મુખ્ય પત્ર ‘ચારણ’ ને પુનર્જીવિત કરવાની પણ તે સૈપારી કરી રહ્યો હતો. સર્વ કાર્યક્રમ ગોઠવાઈ ગયો હતો; ગુજરાતના ચારણ યુવાનો પોતાના યુવક ધર્મના ઝણ અદા કરવાની ફરજ સમજી તેની સેવામાં હાજર રહેવા અંધીરા બન્યા હતા; પરંતુ કાળની ગતી વિચિત્ર છે ! અચાનક એ મહા મોંઘા નર

રાત્ર કાકુર કિશોરસિંહજી સૌદાનો હૃદયની ગતિ અંધ પડી જતાથી દેહાંત થવાના માહા સમાચાર આગ્યા ? વિગળી વેગે ઉત્સાહના વાતાવરણમાં ગમગીની છવાઈ ગઈ : મનના મનોરથ મનમાં જ રહી ગયા, વખત વીતી ગયો ! સ્વાગતને બદલે એને અંગૂઠિ અર્પવાનો હુ.બદ પ્રસંગ આવ્યો !

એ નર શાફલનો જન્મ ધીરશૂભિ મેઘાડ. (રાજસ્થાન) માં થયો હતો, પ્રથમ અલવર સ્ટેટમાં અને છેલ્લાં પંદરેક વર્ષથી તેઓ પતિયાળા રાજ્યમાં ઇતિહાસ કાર્યાલયતા અધ્યક્ષ તરીકેનું સ્થાન શોભાવતા હતા. મોટા મોટા રાજ્ય મહારાજાઓ અને વિદ્વાનો સાથે તેઓ મૈત્રી ધરાવતા હતા. સંસ્કૃત અને અંગ્રેજી સાહિત્યના શ્રેષ્ઠ જાણકાર અને કાવ્ય શાસ્ત્રના પરમ મર્મજ્ઞ વિદ્વાન તેમજ ડિગ્રેજ, ગ્રગભાષા અને ખડી બોલીના દિવ્ય પ્રતિભાસંપન્ન કવિ હતા. ઇતિહાસ એ તેમનો ખાસ વિષય હતો, ઇતિહાસના વિદ્વાનોમા તેમનું ખાસ સ્થાન હતું. કાંપ્યા કાળની નવાનૂલીઓ તેમણે જ્ઞેષ્ઠ હતી. તેમના વિચારો અને દિશા—સૂચનો અગ્નિપરીક્ષામાં સિદ્ધ થયેલ શુદ્ધ સુવર્ણ જેવાં અનુભવસિદ્ધ હતાં. રાષ્ટ્રની આગાદી માટે તેમનો આત્મા તત્પ્રસૂતો હતો. રાષ્ટ્રભાવથી પ્રેરિત બની કેટલાંક વર્ષ પૂર્વે તેમણે ‘નવ રાજસ્થાન’ પત્રનું સફળ સંપાદન કૃષ્ટું હતું. તે વખતે તેમના વિચારો રાજ્યોની અખતૈમાં ઘણા કડક હતા, તેઓ વૃદ્ધ થયા હતા, પરંતુ તેમનો આત્મા ‘કિશોર’ હતો. તેમનું નામ પણ ‘કિશોર’ હતું અને તેમની પવિત્ર ભાવનાઓ ‘કિશોરજ’ હતી. તેમની કુશીનતા માત્ર ‘નામની’ ન હોતી; પરંતુ ઉદયપુરના હિંદુમુખ મહારાણાના પૂર્વજોના આશ્રિત ધર્મ વખતે અગ્ર સાથ દેનાર, સ્વધર્મનાં કવચ પહેરી આત્મસમર્પણ ધર્મમાં તેમની સાથે સાથે બલિદાન બનનાર આહુતિ રૂપે હતી.

ધર્મરક્ષાનાં પણ લેનાર : રાષ્ટ્રની વેદી ઉપર સમિધ બનનાર કુળમાં આવો એક કિશોર જન્મે તેમાં નવાઈ શી ? કારણકે એ સૌદા કુળમાં કર્મવીર યોદ્ધાઓ, આગાદીના પ્રેરક સદેશઓ આપનારા કવિઓ અને સર્વસ્વનો ભોગ આપનારા કાંતિવાદીઓ તેમજ દેશભક્તો પેદા થયા છે. આજે પણ એમાંના એક પુરુષ દેશભક્ત કાકુર શ્રી કેસરીસિંહજી (કાટા) હયાત છે, તેઓ એ કિશોરના મોટાભાઈ થાય.

જે કુળમાં આત્મસમર્પણનો ધર્મ વહેતા જળધોધ જેવો હલુ નજરે જોવામાં આવે છે; જ્યાં દેવી સપત્તિના ઝરણાં સમા સાનની તૃપ્ત છીપાવનાર, સંસ્કૃતિની વાડીને નવપદ્મવ બનાવનાર અમર પુરૂષો આજે પણ વિદ્યમાન છે. એવા પ્રાચીન કાળના ચારણોના પ્રતિકસમા યુગજૂના જોરવને સાચવી રાખનાર, વિદ્યા અને સંસ્કારના ખજાના રૂપ પવિત્ર કુળમાં એ વિદ્યાધર કિશોર જન્મ્યો હતો. તેનું જીવન પણ કેનું ‘કિશોર’ હતું !

આજે મૃત્યુબાદ તેનો વાસના દેહ યુવાનોના હૃદયમાં વિદ્યુત્તેજ પ્રકાશ અર્પતો વિદ્યમાન છે. એ કર્મવીર હતો; આત્મમગ્ન અને નિર્ભયતાની એ પ્રતિભા સમેા હતો. મૃત્યુનો એને ડર ન હતો; એને પક્ષપાત્ર અને અસહ્યનો અણુમો હતો. એક અમીરને છાજે તેનું અમીર ધરાવતો હતો; છતાં તે મોટાછતો ધંમડી છુરખો પહેરી ફરતો ન હતો. વિદ્યા, લક્ષ્મી અને માન મરતખો એને વર્ષા હતાં છતાં ડોળ અને દંત્રીપણ એ દાખવતો નહિ.

એનું જીવન સાદાઈ અને માનવપ્રેમથી ભરપૂર હતું. વિદ્વાન હોવા છતાં તેનામાં નત્રતા હતી. આગ્રક પાસેથી પણ જ્ઞાન લેવાની એને ધગ્ય હતી. એના મનોરથો મોટા હતા; આશાઓ ઉત્તમ હતી. યુગને ઓળખવાની તેનામાં આવડત અને સમાજને દોરવાની શક્તિ હતી. એ સમાજમાં નેના થવા માટે સજ્જો હતો. આવતા યુગને અને ભૂતકાળને બેનારી દિવ્ય પ્રતિમા એના માર્ગચક્રમાં ભરેલી હતી. વર્તમાનનો સદુપયોગ કરવાની એની કળા આકર્ષક અને દુઃખીને દિવાસારૂપ તથા મુખીને આશાની ફૂલી કળી વાડી સમાન હતી. જીવનથી કંટાળેલા—સમાજની ચક્રોમાં પીસાયેલા વર્ગને માટે તેને દ્રઢ્યમાં ઊંડી સદાનુશૂતિ હતી. એને શુદ્ધ માનનાર વર્ગ પ્રત્યે પણ એ સમાનતાનો દાવો રાખતો હતો. યુવાનોનો એ સાચો મિત્ર અને સહાહકાર હતો. એની દ્રષ્ટિમાં ગરીબ અને તવંગરના ભેદો ન હોતા. એની આંખમાં અભિધારા હતી.

રાજાઓની સિંહાસનોની જમણી ભૂમિ બની ખેસનારો એ માણસ, વિદ્વાનોની સભામાં ધર્મના કરનારો એ વ્યક્તિ સ્ત્રી 'સમાજ' અને દલિલોનાં ઊંડી હાથ લખાં દુઃખો સાંભળી તેને માટે ખુદશી દલીલો કરતાં સંકાચાતો નહિ. ત્યાં એને કુલીનતા અને નિદ્રતા વિમરૂપ રસી મેં હોતાં; કારણકે તે સત્યનો હિમાયતી હતો; ઇશ્વરદત્ત બુદ્ધિનું અનુશીલન કરનારો હતો; તેનું ખૂન કરનારો ન હોતો. વિદ્વાન હોઈ વિદ્વાને વેચનારો ન હોતો. તેનો આત્મા બિંધતો ન હોતો—જગૃત હતો. તેના પરિચયમાં આવનાર સર્વને તે જગાડતો હતો—વ્યક્તિસ્વાતંત્ર્યનો મૂલ્ય સમજાવતો હતો. એ સત્ય જ્ઞાન અને શુદ્ધ પ્રેમ ઉપર 'પાગલ' બનનારો બુદ્ધિ 'આદર્શત્વ' હતો.

એની મનોકામના ઇશ્વરે આપેલી શક્તિના સદુપયોગ દ્વારા સંસારમાં રહી કર્મયોગ સાધક થયેલા પંથે દોરનારી હતી. સમાજની મુક્તિમાં પોતાની મુક્તિ એ જ્ઞાનવૃદ્ધ કિશોર ઇચ્છતો હતો. સંસારના સળગતા પ્રશ્નો પ્રત્યે ઉદાસીનતા સેવી ઇશ્વરના દરબારમાં પોતાના માટેજ મુક્તિનો એક વચાવવા આગળ દોડનારાઓમાંનો તે ન હોતો. તેને વિમાનમાં બેસી ઝટ ઊડી જવાનો મોહ ન હોતો; કારણકે તેને કર્મયોગના નાવમાં બેસી નિઃકામ સુકાની બની સહુની સાથે પોતાનો ન્યાય માગવો હતો. એકલી મુક્તિ એને અપતી ન હતી. એને તો શ્રેષ્ઠ કિશોર બની વરુણેય કુટુંબકમ્ ના આદર્શો સિદ્ધ કરવાના લડકોડ હતા. સર્વભૂત દિત્તેના: નો એ પ્રચારક હતો. એ સિદ્ધ ન હોતો પણ આત્મવત્ સર્વભૂતેતુ ની ભાવના જીવનમાં ઉતારી વ્યાવહારિક વેદાંતના પાકો સમાજને લાણાવનાર આદર્શ સંસ્કૃત્ય હતો. એના સ્વર્ગવાસથી આજે રાજસ્થાનની વીરભૂમિએ એક નરરત્ન અને ચારણ જાતિએ પોતાનો યુગ પુરૂષ ગુમાવ્યો છે ! પાર્થિવ શરીરનો ત્યાગ કરી આપણી પાસેથી એ તેજોમય પ્રદેશની લાંબી મુસાફરીએ ગયો છે ! સમય ધર્મ સમજ એણે જન્મ દષ્ટને જેનું અગિયાર માસનું અયપણુ પણ 'હોન હાર ચિરવાનકે હોત ચિકોને પાત' ની પેઠે દીપાવ્યું હતું; અને એને દસ વર્ષની લાંબી બીંધ લેવા દીધા પછી જગૃત કરી ઉઠેરવાના વધુ લાડકોડ હતા, તે 'ચારણ' ના પુનર્ગંગરણ પ્રસંગે—તેના પ્રયમાંકમાં તેના એ સ્વર્ગગત જનકને અંજલિ અર્પી પરમાત્મા એ દિવ્યાત્માને વધુ દિવ્ય તેજ અને શાંતિ બક્ષો એવી પ્રાર્થના પૂર્વક વિરમું છું.

અને કવિઓને છ'છેડયે શું પરિણમે એના ઉત્તરો યે-તમ ઇતિહાસમાં એણા નથી. તમ ફરતાયે અધિકા જગ જાણીતો ફિરસો ફિરદોસીનો છે. આજ એક હંગર વર્ષેય ફિરદોસીનો ફસદિ શાહનામાના જેટલોજ જગત્ પ્રખ્યાત છે.

પણ આપણાજ દેરો કવિવરો લોકપ્રિય હતા કે દુનિયાના દેશ દેશમાં? જ્યાં બુદ્ધિનાં તેજ પહોંચતાં નથી એ હૈયા ગુફાના દિશા લોકમાં, જ્યાં સૂરજનાં ફિરજો પ્રવેશતાં નથી એ અગમ નિગમના અગોચર દેશમાં કવિઓ કાવ્ય ત્રિદારે સંચરે છે. 'સ્વયં' પરબ્રહ્મનું એક વિશેષણ કવિ છે: કવિ પુરાણં અનુશાસિતારમ્ વિ- જ્યાં જ્યાં માનવી હૃદય છે, સાં ત્યાં એ હૃદય રાજવીનાં રાજ્ય છે. હૃદય શયો હોય એ કવિઓને ઉપદાસે. દુનિયાના દેશ દેશમાં કવિઓ પ્રજના મુગટ મનાતા. કવિ એટલે પ્રજાની પ્રેરણા.

ગ્રીસમાં હોમરયુગથી લોક સમારભો કવિ લક્ષ્મીકારથી ગાજતા. ઇસ્લામી સંસ્કૃતિ કવિ એશાવડાઓ-મુશાવરાઓથી ગોરવવંતી હતી. ઉત્તરપ્રાચીનમાં કવિવરને પટ્ટબંધ બંધાવી, રથમાં પથરાવી, નગરીની વિજય યાત્રા કરાવીને સન્માનતા. બ્રિટનમાંનો એક દાખલો જરા વિગતેથી નોંધ્યો.

થયા સૈકાનીજ વાત છે; બ્રિટનના રાજકવિ વર્ડઝવર્થ કે રાજકવિ ટેનીસન, જ્હાડસ્ટન કે વિક્ટોરિયાથી લોક હૈયે નીચેને પાટલે વિરાજતા નહોતા. એક સમાનો યોગ હતો ને જ્હાડસ્ટન ને ટેનીસન એક કાંડા આગબોટ બાંહે કરીને ગ્રેટબ્રિટનને કઠિ કઠિ તખ્તિયતની શોધમાં સાગર સફરે નીકળ્યા. ફરતા ફરતા એ મહાપુરૂષો સ્ટ્રાટલેડના જ્હાસગો શહેરમાં જઈ ચડ્યા. જ્હાસ-ગોની જનતાએ આંગણ આપ્યા મહાપુરૂષોનો સન્માન-સમારંભ ઉજવ્યો, અને બ્રિટિશ મહા-રાજ્યના રાજમંત્રીને ને રાજકવિને સમાનપત્રો સમર્પ્યા, બન્ને મહેમાનોની વતી ઉત્તર આપવાને બ્રિટિશ મહારાજ્યના મંત્રીશ્વર ઊભા થયા. જગત્-ઉચ્ચ પાયલોના વિધાતા એ મંત્રીશ્વરે શું કહ્યું? જાવ ને વાંચો, ઇતિહાસને પાને લખેલું છે કે પચ્ચીસ-પચાસ વર્ષે જ્હાડસ્ટનને પ્રજા ભૂલી જશે, ને પૂછશે કે જ્હાડસ્ટન કેણું હતો, ને એણે શું કયું? છે? પણ આ આપણા કવિવર ટેનીસન: એમના કાવ્યકથા તો અંગ્રેજી ભાષાના જીવન-તારામાં ગૂંથાયેલા છે, અંગ્રેજી ભાષા જેટલા અમર છે.

ગ્રીસ ને રોમના સામ્રાજ્યો આજ નથી; પણ ગ્રીસ રોમના કવિવરોનાં સામ્રાજ્ય હજી આચર્યાં નથી. વિક્રમ કે હર્ષનાં ચક્રવર્તીત્વ આજે ક્યાં છે? પણ કાલિદાસનાં ને બાણનાં ચક્રવર્તીત્વ જગત્-વ્યાપેલાં છે.

રાજપુરૂષોના રાજમુગટ નાશવંત છે; કવિઓના કાવ્ય-મુગટ ચિરંજીવ છે. આજે કેણું સજીવન છે? મદમ્મદ વિગ્નવીનો રાજમુગટ કે ફિરદોસીનો કાવ્ય-મુગટ? પૃથ્વીરાજનું દિલ્લી-પતિત્વ કે ચંદનું કવિતા સ્વામિત્વ?

ઉદ્યાયજે ચડી મહાપ્રજાએ કવિ-પ્રેરણાને પ્રજા-મુગટ પહેરાવે જે.

ખારોટો અને ચારણો બન્ને દેવીપુત્રો છે, મારે મન તો એક મર્મની બે ફાડ છે. રોટો ને ચારણો હાનિપવટની વાડીના માળાઓ હતા. રાજદેહના એ પાયસ્તંભ હતા. આજ માળાઓ વિના વાડીઓ સુશાઇ ગઈ; પાયસ્તંભો પડી ગયે દેહસ્તંભ પડી ગયા.

અને તમારો કાવત-પ્રવાહ? ગંગા-પ્રવાહ સમો તમ કવિત-પ્રવાહ વહતો. શિમાદિના ખડકો ઉપરથી પડતા ધોધસમો ગાજતો; કનખળ અને વનપદ્મીનાં સોદાગી રૂપ ધરતો; વારા-

જુસીને ઘાટે સાગર-ગંભીરો વહતો. ચંદ્ર રાસો એટલે માત્ર વીરસનું મહા કાવ્ય •
 વીર-કર્ણુ-સૂંગાર-અદ્ભુતના ઓધ વહતું મહાકાવ્ય. સુરદાસ, કેશવદાસ, બૂખણુ
 મતિરામ, દર્શા આદી,^૧ કર્ણુદાન,^૨ બ્રહ્માનંદ,^૩ એ અને એના તમારા ગ્રંથો આ
 હતા. પ્રવીણસાગર તે તમશીવીનો, મધ્યયુગના ગુજરાતનો મહાગ્રંથ. ગુજરાતી સાહિ
 ત્યે છે ને ત્યાં મધ્યરતે ભાવદાનજી^૪ સદ્ગુરુ બ્રહ્માનંદ સ્વામીનો રણુકી છંદ કપાવે
 છે ત્યારે એ સાહિત્યમંડળ, સૂર્યતોગમાં ચંદ્રતોગ ઝંખવાઈ ત્ય એમ ઝંખવાય છે.
 જંગ બને ત્યાં તો રસ, માધુર્ય ને પ્રસાદ હોય તે છતે.

યહી વાન સોહાન ! રામ રાવન હત્યલો !

ઉપકેન્દ્ર એ હાથે ગગન ધડાકા સમે ગાજતો નથી ? ધોડીવાની હવગો
 જતા ચંદના બ્રજગંધવાત ને મોલીદામ નવ કવિતામાં જાગ છે ?

શિવાજી ન હોત તો સુન્નત હોત સચકી !

એવા ઇતિહાસ ગાજતા કાવ્ય બોલની કવિતા ક્યારેક તો લખાવ. કડીંગ !
 હુમ નિશાનડકા ગાજે એમ તમ કાવ્યસ્તોત્રો ગાજતાં, તે પ્રગ હીંચે ડકા વાગતા

કવિ ગંગ કહૈ, સુરુ શાહ જકવર !

માથ છિપૈ ન મમૂત લગાયો !

એવા વિધાતાના આંકડાના અક્ષરો કેટલાકે ઘુટપા ?

ઘણ રવ પટ ફરર ઘરર પદ ઘૂઘર,

રંગમર સુંદર શ્યામ રમે,

જિય રંગમર સુંદર શ્યામ રમે !

એક સદીથી ગુજરાતભરમાં ગાજતો, લાડુ બારોડ (શ્રી બ્રહ્માનંદ સ્વામી*)-
 કીનો કવિત રણુકા ગુજરાતીમાં જિતયો છે ખરો ? વૈરાગ્ય પણ તમારોજ છે.

પેટ કટારી રે કે પહેરી સ-મુખ આલે,

સાચા શુરા રે, ભેનો વેરી ઘાવ વખાણે.

સદ્ગુરુકા વંદા બ્રહ્માનંદ સાચ કહંદા સવ હંદા. એના બોલંદેયામાં
 દળ નેના નથી વાગતા ?

સીત હરી દિન એક નિસાચર,

હેક લઈ દિન પેસોહિ આયો !

; એક દિના દમયંતિ તજી નલ,

એક દિના ફિરહી મુખ પાયો ॥

એક દિના ઘન પાંડવ ને જલ.

સોચ પ્રવીન ! કહ્યું ન કરો,

કરતાર યહી વિધિ खेल रचायो ॥

પ્રવીણસાગરના એ સવૈયાએ આશાનાં છાંટણાં છાંટી કેટ કેટલાંને સજીવન કીધાં છેઃ
મેતના પાછ છે.

તમારી કટારોએ તો રાસા શોધાવ્યા, રાસમાળા લખાવી, ગુજરાતનો ઇતિહાસ સજીવન કીધો, ફારગસને પ્રેરણા પાછ ગુજરાતનો ટોડ સરજ્યો.

જ્યાં સતીમાતાને સત ચડતાં, જ્યાં ક્ષત્રાણીઓ ગેહર ખેલતી, જ્યાં ક્ષત્રિય જાયાઓ કેસરિયાં ધૂમના, ત્યાં ત્યાં દેવીના બિરદાઇઓનાં ગીત-રણશીંગડાં વાગતાં. મરણને તમે હથેળીમાં લઇ ફરતા. કસુંબો પીવો ને મૃત્યુ પીવાં તમારે સરખાં હતાં. હાહાકારી કરવી એતો જાપાનમાં આજ પ્રત્યેક સજ્જનની સુગન્તા છે.

वज्राक्षिपि कठोरणि, मृद्वि कुतुमाक्षिपि ।

વજ્રથી કઠોર ને મૃદ્ધથી કુમળા તમે હતા. કાળના ખડકો તમે હતા. કાળની ફૂલ-વેલો જે તૂટે હતા, વીર ઘૂંટતા એટલો શૂંગાર ઘૂંટતા; વૈરાગ્ય ઘૂંટતા. એટલો ભક્તિરસ ઘૂંટતા. પ્રજ્ઞના સૂર્યે તમે હતા ને અંદ્રે તમે હતા. નવખંડ સમા નવે કાવ્યરસમાં તમારી પગલીઓના પડછંદા પડતા.

—‘પ્રજ્ઞખંધુ’ના તા. ૧૮-૪-૩૮ ના અંકમાંથી ઉદ્ધૃત.

भक्त कवि हूलाभाई भायाभाई काग

वेभङ्गः श्री. गोकुलदास द्वारकादास रायचुरा

ભગવત કિષ્કિયો ભાગ, કોયલ કઠો ૨૬ કિયા;

થારી-કેવી વાણી કાગ ! દુનિયા વશ કી દૂલિયા !

x x x

ગોલે કોયલ ખાગ, મીલ ભર્યો મુણવે મિનક;

થારી-કેવી વાણી કાગ ! દુનિયા મુણ લી દૂલિયા !

x x x

गौरव निज कुलको गह्वर, दम्पत राष्ट्र-अनुराग;

કૃષ્ણાર્પણ દિય કરત ત, કાગ ! અહો બડભાગ.

ભારવાડના મુપ્રસિદ્ધ ચારણ કવિઓઃ શ્રી મુમેરદાનજી વણસર તથા શ્રી ઇશ્વરદાનજી આસિપાએ સોરઠી ચાવર ભક્ત કવિશ્રી દલાભાઈ ભાયાભાઈ કાગ મટે દૂદા લખનાં લખનાં

ઉપરની શિક્ષણ વાણી ઉચ્ચારી છે.* એક સમયે સોરઠી ચારણ કવિની પ્રશંસા એમના માર-વાડનાં જાતભાઈઓ તરફથી આ રીતે થાય એ અનેક રીતે શોભાસ્પદ અને ગૌરવભર્યા પ્રસંગ બન્યા. હજુ હમણાંજ રાજકોટમાં મળેલા અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનના પ્રસંગે માર-વાડના ચારણ વિદ્વાનોએ કવિશ્રી કાગની પ્રશંસા કરતાં એમને 'કાં ઇસરા કાં પરમેશરા' એ શબ્દોથી અમર અનેલા ભક્તકવિ ઇસરાદાસજીના અવતાર તરીકે ઓળખાવી સોરઠના એ સંત કવિની સાચી પિછાણ કરાવી હતી.

અને ખરેખર કવિશ્રી દ્વાભાઈ કાગની પિછાણ સમગ્ર મહાગુજરાતને થાય એ અતિ જરૂરનું છે. આજના યુગના એ સમર્થ ચારણ કવિ છે. ચારણી ભાષા પર તે એમને પ્રભુત્વ હોયજ, હિંદી અને વ્રજભાષાનાં લાલિત્ય તે એમને વરેલાંજ છે, પણ સાથે સાથે ચારણ કવિઓમાં ગદ્યમકભરી, મીઠી અને જોરદાર શૈલીમાં ગુજરાતી ભાષામાં કાવ્યો રચનાર તરીકે કવિશ્રી કાગ એજેડ અને અદિતીય છે.

રાખૂભાવનાને રંગે રંગાયલા ચારણ કવિઓ બહુજ થોડા છે. જે થોડા છે એમાં પણ સમર્થ શક્તિશાળી અને સરેકારી થોડા છે. એ સર્વના મુકુટમણિ તરીકે શોભતા ભક્તકવિ દ્વાભાઈ કાગ, આ યુગના સમર્થ, શક્તિશાળી અને સરેકારી રાષ્ટ્રીય શાયર છે.

જ્યારથી 'શારદા'માં એ સોરઠી શાયરનાં કાવ્યો પ્રગટ થયા હાજ્યાં ત્યારથી અનેક મિત્રો, સ્નેહીઓ અને 'શારદા'ના હમ્મશે વાંચકો એ કવિની કાવ્યકલા ઉપર મુગ્ધ થયા છે. સહુ કોઈ એમની કવિતા સાંભળવા આતુર રહે છે. એટલુંજ નહિ પણ એમના પરિચયના અભિલાષ પણ કેટલાક મિત્રો સેવી રહ્યા છે.

બડાગી ભાવનગર રાજપના પોર્ટ નિકટર પાસે આવેલા મજાદર ગામના એ રહીશ, સોરઠજીમિનું એક અણુભાગ રત્ન છે. જનની અને જન્મભૂમિને અમર કરનાર એ સમર્થ કવિ આજે 'ભગત'ના નામથી એમના આખા પંથકમાં મશહુર છે. કૃષ્ણગીત્યંતરીના સર સાંભળનાર ગોપાંગનાઓ જેમ એ મૂરને તાને તાને મસ્ત જનતી તેમ કવિશ્રી કાગની વાણી સાંભળનાર સદૈવ એની મસ્તીમાં રચ્યા કરે છે.

હરિપુરા કેથેડ્રલમાં આ સોરઠી શાયરને પ્રથમવાર સાંભળનાર ગુજરાતના અનેક યુવાનોને કવિશ્રી કાગની વાણીમાં એ મસ્ત થતા જોયા છે. હરિપુરાની વ્યાસપીઠ પરથી જ્યારે આ દેવીપુત્ર 'દેશ જો જો ગાંધીજીની દીકરી' એ ગીત સંભળાવ્યું, ત્યારે હમ્મશે ગુજરાતીઓ અને ગુજરાતજો એ ગીતને ચરણે ચરણે મુગ્ધ થતાં ગયાં. અને એ પછી જ્યારે કવિએ 'ઝેમીડા' નામક મહાત્માજીની પિછાણ આપતું કાવ્ય જમાવ્યું ત્યારે તે આખીયે મેદની એને તાલે તાલે કંઈ અજ્ય દર્શન, અજ્ય મસ્તી અને અજ્ય ઉત્સાહને હેલે ચડી હતી. જે

* રાજપૂતાનાના આધુનિક સમર્થ કવિ દાકુર શ્રી. કેસરીસિંહજી સોદા (સોન્યાણા) એ પણ શ્રી. દ્વાભાઈની કવિતાની પ્રશંસા કરતાં કહ્યું છે:

મુંદર-રચનાં હૈ સરસ, તેસેંઈ ઉતમ છંદ;
કવિતા દ્વા ભગતરી, સોનો આર સુગંધ.

—તંત્રી, ગુજરાતી વિભાગ.

એને પોંખણ કાળ તણા ગણુ છે,
એનો માંડવડો એ મહા રણુ છે;
તલવારો તણાં એને તોરણુ છે.

ઉપરાંત કવિ જ્યારે આગળ વધીને કહે છે કે, એ વરરાત્રીએ કન્યાને માંડવે જઈ—

દિન રાત ધખેલ હતી તપતી,
એણે કૈંક નમાવી દીધા નૃપતી;
એવી નાળ જંજળ કરાળ હતી.

ભયકાર મુખે વિકરાળ હતી,
ઝગતી જમ આંખ શી જમગરી;
એવી તોપને મોઢડે બાથ ભરી,
પછી હાકલ દાગવાની કરી.

તોપને મોઢે બાથ ભરીને પછી ‘હાકલ દાગવાની કરી’ આ શબ્દોમાં કવિએ મહા-
ત્માઈની અદિસા એ સાચી વીરતા છે, એ સરસ રીતે સાબીત કરી આપ્યું છે.

કવિ શ્રી દાગે ‘ત્રેમંડ ડાલે’ નામક એક કાવ્ય હમણાં લખ્યું છે. આજે દેશની
દુર્દશાની વાત કોઈ પૂછે તો કહેતારના દાએલા દિલમાં કેટલું દુઃખ છે, એનો
સાચો ચિતાર આ સોરડી શાવરે આપ્યો છે, તેવો દાવના કોઈ કવિએ આપણને આપ્યો
નથી. કવિતામાં રસ અને કથાની જમાવટ ત્યારે થાય કે જ્યારે કવિનું દિલ એ કવિતામાં
રહે. આ કાવ્યમાં કવિનું દિલ વ્રવતું દેખાય છે.

ત્રેમંડ ડાલે :

ન પૂછો કોઈ દાએલાંની વાત,
વાતડીએ ત્રેમંડ ડાલેર;
મારી વાતડીયું ધરણી એ સાંભળે,
એની ક્યુંના ડુંગરા ડાલે;
વાતડીએ ત્રેમંડ ડાલેર.

મારી વાતડીયું ચાંદો નો સાંભળે,

એના તતડાની ટાઢકું ત્યાગે;

વાતડીએ વ્રેમંડ ડોલેરે.

મારી વાતડીયું વનરાયું સાંભળે,

એનાં ખીલેલાં ફુલ ખરી જાસે;

વાતડીએ વ્રેમંડ ડોલે.

મારી વાતડીયું દરિયો નો સાંભળે,

એની મોટાઈની માઝા મૂકે;

વાતડીએ વ્રેમંડ ડોલેરે.

મારી વાતડીયું હેમાળો સાંભળે,

એ હેમાળો આગળીને હાલે;

વાતડીએ વ્રેમંડ ડોલેરે.

મારી વાતડીયું દેવળએ સાંભળે

એ દેવળનો દેવ ભાગી નાસે;

વાતડીએ વ્રેમંડ ડોલેરે.

તાત્પર્ય કે સાચી કવિતાનું દર્શન કરાવવામાં કવિ શ્રી કાગ એક સફળ કવિ તરીકે અગ્રસ્થાને છે.

કવિમા હોર અને મસ્તી હોય એ રીતે કવિ શ્રી કાગની કવિતાઓ જુદા જુદા પ્રકારમાં અગ્રગ્ન સફળતા મેળવી ગય છે.

દાખલા તરીકે કવિશ્રી 'મનખડાં મેળે' નામક ગીત અતિ ભાવથી આવેખતાં ગાય છે કે:

હાલો હાલો માનવીયું મેળે,

મેળામાં મારાં મનડાં માનેલ છે.

ધરે મેળામાં ડાઈ આંટિયાંળી પાપડી,

એના આંડિયાંના ડાડપર તતડાં આવારિ;

મારાં મનડાં નીચિાવું—માનવીયું મેળે.

ધરે મેળામાં કેંક ધૂમાલે ઘોડલાં,

એના ડાખલાનાં તાલ મારાં હૈડાં હરાવે;

મારાં મનડાં નચાવે—માનવીયું મેળે.

છરે મેળામાં દેંક પાવાની બેડ છે,

એના પાવાના સાદ બહુ મીઠા;

વરસ દિ'એ દીઠા-માનવીયું મેળે.

કવિશ્રી પ્રાસંગિક ગીતામાં પણ વસ્તુને અરહો ઇન્સાફ આપી શકે છે. દાખલા તરીકે, કવિશ્રી એ 'શ્રી દિલહરકુંવરયા' વિષે હમણું એક ગીત લખ્યું છે. વાત એવી છે કે વાંસદાના ફટાવાને વાવડીવાળા શ્રી વલુભા ગોહિલનાં કુંવરી શ્રી દિલહરકુંવરયા આપ્યાં હતાં. પોતાના પતિદેવ યુગરી જવાથી અન્ન જળનો ભાગ કરી વીસેક દિવસે બાવીસ વરસની ઉંમરે એ બહેને શરીર છોડી દીધું. કવિ શ્રી એ વિષે ગાય છે કે:

દેવી દિલહરકુંવરયા રે વરી એને કાજ મરી,

પતિ પરલોકે અતારે, કાયા કુરખાન કરી—દેક.

એને ભૂપણ વીંછીના ભાર થયા,

એને ભોગ ભયંકર રોગ થયા;

એને મે'લ રંગેલ મસાણ થયા.

અબધુતણ બેઠીરે, મસાણું માં મે'લ કરી—દેવી૦

એનો આતમ-સ્વામી જ્યાં હડી ગયો,

એનો ક્યાંય ન જવડો થીર થયો;

એને સવળો સંસારિડો શાપ થયો.

એનો ચૂડો અડીખમ રે, ઉતરવા મનાઈ કરી—દેવી૦

છેલ્લી સાથરી નાથ તણી સંધરી,

ધીંગી ધરણી માતા સામે રોષ ધરી;

વજમાલ ગોહિલ તણી કુંવરી.

સ્વામી—બાળણહાર નું રે રાધેયું હરામ કરી—દેવી૦

દુઃખી દેખી દિલે દુઃખીયારી થતી,

રંગમે'લ હતી હસતી રમતી;

બીજા દિને થોડી એની ખાખ હતી.

વિધવા પણ—સાગર રે ગઈ એની નાવ તરી—દેવી૦

૧—પોતાના પતિનાં રાગને સંધરનારી ધરતી (વાંસદા) નો ત્યાગ કર્યો. ૨—ભાવ એવો છે કે, જે અગ્નિએ પોતાના પતિને બાળી દીધો તે અગ્નિ વડે રાધેયું હરામ થયું.

૩—વૈષ્ણવ રૂપો સમુદ્ર. ૪—જીવન રૂપો માનવી.

આ પ્રકારે કવિશ્રી, જીવનના બુદ્ધા બુદ્ધ સ્ત્રેમમાં અજળ રસ જમાવી શકે છે. રાજકારણ, સંસાર, વીર-શૃંગાર-ભક્તિ : એ સર્વમાં, કવિની કૃતિ જુદી રીતે ખીલી ઉઠે છે. કવિશ્રીના આખોય બંડાર અણુમૂલ રતનોથી ભરેલો છે.

કવિશ્રી જેમ કવિ તરીકે ઉત્તમ છે તેમ સુજનતા, ભંડાઇ, સાદાઇ અને ભક્તિમાં આજે એક અગ્રેડ પુરુષ તરીકે સહુનો પ્રેમ સંપાદન કરી શક્યા છે.

એમની એક વિશિષ્ટતા છે કે, તેઓ 'અપાયક ચારણ' છે. ચારણોમાં 'નરા' શાખના જેટલા ચારણો છે, એ અપાયક હોય છે. 'નરા' શાખની એ વિશિષ્ટતા કાંઈએ અખંડ રીતે જાળવી હોય તો તેમાં ભક્ત કવિશ્રી દલાભાઇ કાગ મોખરે છે.

એમની એ 'અપાયકવૃત્તિ' નો એક ખાનગી પ્રસંગ એમની માશી માગીને અને આપી દેવાની લાસ્ય હું રોકી શકતો નથી.

દેશનો રાજકારણમાં ફેરફાર આજે સર્વનું લક્ષ્ય ખેંચી રહેલ છે. એ વખતે ફેરફારનું વિશે જે કાંઈ કવિએ કવિતામાં કહ્યું હોય તો એનું માન સમગ્ર ભારતવર્ષમાં સહુથી પહેલું આ સોરડી રાયર શ્રી. દલાભાઇ કાગને ફાળે જાય છે. આ 'ફેરફાર' વિષેનું ગીત સાંભળી કાઠિયાવાડના એક આગેવાન રાજપુરુષે આ સમર્થ કવિ પાસે એક બીડેલ કવરમાં રૂપિયા સાંચું હાથરનો એક ધર્યો. એક જોઈ કવિ હસે છે, અને એ પુરુષ સામે હાથ જોડીને કહે છે કે, "આપ કૃપા કરી મારી અપાયક વૃત્તિને ડગાવવાનો આવો પ્રયાસ ન કરો એવી મારી વનવિ છે." એ રાજપુરુષના અનેક પ્રકારના આગ્રહ છતાં કવિએ એક ન સ્વીકાર્યો, ત્યારે એ આગેવાન પુરુષે તોંધવાં જોવા શબ્દો ઉચાંચાં કે, "સોનાને કસવા માટે પત્થર જોઈએ, અને માણસને કસવા માટે સોનું જોઈએ."

સોનાથી કસાવવા આ સોરડી રાયર આજે સર્વ સ્થળે પૂજ્ય છે, એનું મુખ્ય કારણ એમની અપાયક વૃત્તિ છે.

'પ્રભાસ' નામના એક કવિ કવિશ્રી દલા કાગ માટે જે સ્થૂં લાગ્યું તે કવિતામાં ઉતારતાં કહે છે કે :

જેની રંગે રંગે નીચતા નીતરે,
ઝેરી આંખમાં મધની લાસી ઝરે;
વિષથી ચિતે નિત્ય વિકાર કરે.

એવા ક્ષત્રિય-કુળ-કલકંની કેવાતી

કીર્તિ તણાં કવિ ગાન કવે !

પાપી પેટના પૂરવાં એ પતિતોની

પૂજા કરી શી ઉપમાથી સ્તવે !

જેનું દૂષિત જીવન પાપે ભર્યું,

* મુરખી શ્રી. રાયચુરાભાઇ પાસેથી જાણવામાં આવ્યું કે, પ્રભાસ પાટણના એક દેસાઇ અટકધારી નાગર યુવાન 'પ્રભાસ' ઉપનામથી કાવ્યો લખે છે. તેઓ 'એન્યુએટ' હોય હાલમાં જૂનાગઢ સંજ્ઞામાં કૃતિયાણા મંદાસના પરીવર્તકાર છે.

જેનું નામ જળે અતિ દુષ્ટ ઠર્યું;

જેનાં કામમાં કાળું કલંક ભર્યું.

અપનાવી એવા મહા પાપી પાતિતને,

પુનીત ને પુણ્યશ્લોક કહે;

ગિરદાવી એવા બદમાશ ને બાદશા'—

શાહ કહી કવિ ચર્ણુ ચૂંમે.

૨

સૂણી રંકની રીડ ન પાઈ ધરે,

જેને દ્વારથી પાછો લિખારી કરે;

કાડી કાઢી ગણી જેનાં દિલ ઠરે.

એવા સૂમ તણા સરદારને કર્યું—

તણા અવતાર કહી તરણે;

અન્ન-પૂરણહાર કરી અળગો,

વળગે એવા 'શ્રીમંત'ને શરણે.

૩

પણ આ કવિતો—

જેની બાનીમાં શૌર્યને સત્ય તરે,

જેના કાવ્યમાં દુઃખીની દાઝ ઠરે;

જેની વાણીએ શારદ વાસ કરે.

જણે રાયથી રંક અધિક ગણી

ગાયાં ગીત ગરીબી તણાં કવને;

જેના હૈયામાં જાની વરાળ ભરી,

તપ્યો તાપ ગરીબ તણાં તપને.

૪

ગાય રંકની રીડને કાજ ખીજ,

પરખીક વિદારવા વાણી વીંઝે;

ન્યાય-લીખ માંગી એનાં દિલ રીંઝે.

બ્યારે રાજ રીંઝે ત્યારે જાત બૂલી,

માગે ચારણોદ્ધારનો ભાગ મીઠો;

બૂલી સ્વાર્થ રમે પરમાર્યમાં,

(એવો) પરદુઃખ નિવારણ (ચારણ) 'કાગ' દીઠો.

૫

આ સોરઠી શાયર આજે સોરઠી કવિતાને જોમ આપ્યું છે. પોતાના ભુવંદ મીઠા કંઠથી એ જ્યારે પોતાનાં સ્વ રચિત કાવ્યો લેખકારે, છે, ત્યારે હંમશે શ્રોતાઓ મંત્રમુગ્ધ થઈ જાય છે.

મારા અભિલાષોમાં એક અભિલાષ એ છે કે, મહા-ગુજરાતની સાહિત્યસભાઓમાં કવિશ્રી કાગ અને ગઢવી મેરલાની જેડીને લઈ જઈ સોરઠી કવિતાની સાચી પ્રગાદી અપાવું. અત્યાર સુધીમાં હું એક પાંખે ઉડતો હતો, આજે મને બે પાંખો આવી છે, એટલે મહા-ગુજરાતના સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં સેવા આપવાના અભિલાષ પૂરા થશે એ વિચારે સંતોષ થાય છે.

ચારણદ્વારા, ચારણી સાહિત્યદ્વારા, ગુજરાતના સાહિત્યના ક્ષેત્રમાં સાચી કવિતા ઉતારવાનું સદ્ભાગ કોણુ નહિ ધરાવે ?

કવિશ્રી કાગનાં બે પુસ્તકો તૈયાર થાય છે : ‘કાગવાણી’ ભાગ ૧ લાની ખીણ આવૃત્તિ અને ‘કાગવાણી’ ભાગ બીજો. આ બન્ને પુસ્તકો ગુજરાતને, ચરણે આ સમયે સોરઠી શાયરની કાવ્ય-પ્રસાદી અર્પણે એવી શ્રદ્ધાથી સોરઠતા આ રાષ્ટ્રીય શાયરનો ટુંક પરિચય આપતાં મને આનંદ થાય છે.

— ‘શારદા’ ના ઓગસ્ટ ૧૯૩૮ના અંકમાંથી કિંમિત ફેરફાર સાથે ઉદ્ધૃત.

કાવ્યકુક્ષ,

દેવીપુત્ર ચારણુને

[લિખક-કવિશ્રી ત્રિભુવનભાઈ જોરીશંકર વ્યાસ, રાજકોટ]

હરિગીત છંદ

(૧)

રે ! દેવીપુત્ર પવિત્ર વંશજ સુજશ મુખ ઉચ્ચારણા,
રે ! યુગ યુગાંતરના અડીખમ સાક્ષીભૂત ઇતિહાસના;
કંઠસ્થે રાખી વીરકથાઓ લાખી ભારે રસભરી,
એ જિઠ ચારણુ ! જિઠ તારી જિંઘ ને અળગી કરી.

(૨)

દિન, ધર્મ, ધેતુ, આશ્રિતો શિરસાટ જે રહે સદા,
ભલિ અને વળી ન્યાય પથથી હગ ન છડે જે કદા;
એ ક્ષત્રીવટ ત્રી સતત કીધી ચોકી જેણે આકરી,
એ જિઠ ચારણુ ! જિઠ તારી જિંઘ ને અળગી કરી.

(૩)

શુભ આર્થ સંસ્કૃતિના પ્રવાહો જેમણે સંધ્યા સદા,
ને લોકભાષામાં વહાવ્યા પ્રબળ વેગે સર્વદા;
કે કલેશમાં વચ્ચે પડી કુરબાન કાયાઓ કરી,
એ જિઠ ચારણ ! જિઠ તારી જિંધને અળગી કરી.

(૪)

કે જાન ભુલ્યા બૂપતિને આપી જેણે શુભમતિ,
કૈને ઉગાર્યા અધમતાથી દૂર કરીને દુર્મતિ,
જેના વચનથી લીરુમાં પણ શક્તિ સાચી સંચરી,
એ જિઠ ચારણ ! જિઠ તારી જિંધને અળગી કરી.

(૫)

જેણે રમ્યા અદ્ભુત રાસા કવિતણી શ્રેણી સહ,
ગાથ રહ્યા પડછંદ જેના છંદના આજે હહ;
જેણે દુહાની બાનીમાં વેધક અજબ કવીતા ભરી,
એ જિઠ ચારણ ! જિઠ તારી જિંધને અળગી કરી.

(૬)

રહેણી અજબ ગૌરવ ભરી કહેણી છટા નવરસભરી,
જેની પ્રતિભાથી ઠળાયા બૂપ જાંઠા લય ધરી;
જ્યાં ભેગમાયા જેવી સતિઓ જાગી ઝાઝી સતભરી,
એ જિઠ ચારણ ! જિઠ તારી જિંધને અળગી કરી.

(૭)

તણકે ખુશ્માલ દુહયથી સજ સત્યવાણી સર્વદા.
જગદીશ એકજ ઈંટ ભજ ધર ટેક તારી ધન સદા;
રજતું કરી ગજ રાણવાની અણસમજને પરકરી,
એ જિઠ ચારણ ! જિઠ તારી જિંધને અળગી કરી.

(૮)

તું છોડ વ્યસનો લીખ તજ રજવાડી આજસ દુર્ગુણો,
વિદ્યાતેણો વ્યાસંગ કર ભર અંતરે તું સદ્ગુણો.
પંરત્રતાની બેડી સરખી અભણ હાલત પરકરી,
એ જિઠ ચારણ ! જિઠ તારી જિંધને અળગી કરી.

(૯)

મધુકંઠ મોઢે હલક છે ને જીભમાં હજી ઝમક છે,
હજીએ પુરાતન ખમીરની તુજ નેત્ર મોઢે ચમક છે;
તો સજ્જ થા એ શસ્ત્ર-લઈ નવયુગના વાધા ધરી,
એ જીઠ ચારણ ! જીઠ તારી જીંધને અજગી કરી.*

ચારણોની શક્તિ

લેખક:—રાજકવિ શ્રી હરદાનભાઈ પિંગળશીલાઈ નરેલા, ભાવનગર

છંદ—મૂલણી

ચારણો સત્ય સંતાન શિવ શક્તિના,
જીવન નિર્દોષ તે દેવ-જણો,
હિમાલય શિખરો-મધ્ય રહેતા હતા,
પ્રગટ સાક્ષી પુરે છે પુરાણો.
હિંમતી વિમાને ચડી ફરતા હતા,
દિવ્ય જેની હતી દીર્ઘ દ્રષ્ટિ;
ધર્મના કાર્યમાં ધ્યાન ધરતા હતા,
વિજય કરતા હતા પુણ્ય વૃષ્ટિ.
દેવ ને કલેષથી દૂર રહેતા હતા,
કાયમી જગત કલ્યાણ કરતા;
અખંડ શાન્તિ વિષે બનાવી આશ્રમો,
હોંશથી દુખીનાં કષ્ટ હરતા.
આમંત્રણ સ્વિકારી યજ્ઞમાં આવતા,
પૃથુ ભગવાનને હતા ખ્યાસ;
કોઈદી કોઈનું ભુટું કરતા નહીં,
સર્વ કરતા બને તે સુધારા.
પ્રયમથી ક્ષત્રિના પૂજ્ય ઉપદેશકો,
વારિ ગંગા સમી વિમલ વાણી;

* ઉપરોક્ત કાવ્ય કવિ શ્રી ત્રિભુવનભાઈએ અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનના પાંચમા અધિવેશન (સપ્ટેમ્બર) વખતે રચીને સભામાં સંભળાવ્યું હતું. આ કાવ્ય ' સારદા ' પત્રિકાના જુન ૧૯૩૮ ના અંકમાં પ્રજાસિત થયું છે.

અતિ નૃપ લાલ આખ્યા અને અપાખ્યા,
નેક ઇતિહાસમાં છે નિશાની. ૫

નિત્ય એને હૃદય હતી નિઃસ્વાર્થતા,
પુશામત કરીને નહીં ખાતા;
સ્વારપણુ ધર્મનો મર્મ સમજાવતા,
મહદ જેની સદા શકિત માતા. ૬

શુદ્ધ ભાવે હતી પ્રસન્ન મા શારદા,
બાણતા વેદના ભેદ ઝાઝા;
ગુણી જન થઈ રચતા હતા જ્ઞાનના,
ટીકતા એ થકી પ્રભ-રાબ. ૭

દિવ્ય અવતાર લેતી હતી દેવીઓ,
કેંક મહિપાલને મદદ કરતી;
સ્થાનકે સ્થાનકે થતી'તી સ્થાપના,
ભાવના જગત ભંડાર ભરતી. ૮

કોઈની દેવ* પરવાહ કરતા નહીં,
સ્વતંત્ર રહેતા સત્ય સાથી;
આપ નિઃશંક અંકુશ રૂપી હતા,
હિન્દ ક્ષત્રિયો મદમસ્ત હાથી. ૯

વાત એ બધી છે ઘણાંયે વર્ષની,
કાળની ગતી છે ગહન દેવી;
બાળવી રહ્યા એ છતાં પણ ભોમને,
દિવ્ય છે સતી ને સંત દેવી. ૧૦

આશિર્વાદ મહાત્મા વડીલો આપશે,
ધાળળીવાળીઓ મદદ ધરશે;
કરી વંદન કહે આજ હરદાન કવિ,
કૃષ્ણ સર્વને સુખી કરશે.+ ૧૧

* ચારણદેવ.

+ આ કાવ્ય શ્રી હરદાનભાઈએ અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલન (રાજકોટ અધિવેશન) પ્રસંગે સત્રમાં સંભળાવ્યું હતું.

જાગૃતિનું ચિત્ર-દર્શન

લેખક : શ્રી ભગવતીદાસજી મનુભાઈ રાઠડિયા, ચેરડી (કચ્છ)

[આ જાગૃતિ અને સમૂહજીવનનો યુગ છે. સંસારની પ્રત્યેક જાતિ તેનું સ્વસ્થ સમજીને પોતાને શક્તિ સંપન્ન અને હિતચિત્રીત બનાવવાનો પ્રયત્ન કરી રહી છે. પરંતુ આજની જાગૃતિ અને સમૂહજીવનનો પાયો વિજ્ઞાન-જડવાદના સિદ્ધાંતો પર અવલમ્બિત હોવાથી તેનું સ્વસ્થ સમજીને સમ્ય અને શક્તિશાળી બનેલી એક જાતિ તેનીજ જાતિના એક મુખારણ્યમાં પાછળ પરંતુ તેને આદર્શ રૂપ માની તેના જાગૃતિના સંદેશ જીવનાર સમૂહને આગળ લાવવાને બદલે પોતાનો ગુલામ બનાવવામાં એ જાગૃતિ અને સમૂહજીવનનો ઉપયોગ કરે છે. ઇટલી એપીરીનીયાને ગણી ગયું એ વાત એ વિચિત્ર પ્રજાની હોવાથી જાગૃતિએ મૂકીએ તોયે રૂપેનનો આંતર-ક્રમદ, હાત્રમાં જર્મનોએ એક પ્રજા સામે ઊપાડેલાં શસ્ત્રો અને સુધરેલાં જાપાનીઓ તરફથી સુધારામાં કાંઈક પાછળ તેના જાત ભાઈ ચીનાઓને પરાધીન બનાવવાનાં એ વર્ષથી થતા પ્રયત્નો આ વાતની સાક્ષી પૂરે છે. યુગમયની પ્રેરણાથી આજે ચારણ જાતિમાં જાગૃતિનાં મંડાણ મંડાઈ ચૂક્યાં છે. પરંતુ જાગૃતિમાં સૌથી આગળ તેનો એક પ્રાંત તેને આદર્શ રૂપ માની તેના સંદેશ જીવનાર જીવન પછાત ચારણ પ્રતિભાને આગળ લાવવાને બદલે તેમની ભર્ત્સના કરશે, તો એ જાગૃતિ અને સમૂહજીવનથી ચારણ જાતિને કશોય લાભ નથી. જો કે હાત્રમાં આપણે એવો ડર રાખવાની કાંઈ જરૂર નથી; છતાં આ લેખમાં તેના વિચારશીલ લેખક આજની સંસાર માન્ય જાગૃતિનું સ્વરૂપ દર્શન કરાવી તેનાં ક્ષણો ચારણ જાતિની જાગૃતિમાં પેસવા ન પામે તેની ચેતવણી આપી છે. તે પર ધ્યાન આપવાની સહુને જરૂર છે. —ત્રી, ગુજરાતી વિભાગ.]

માનવ દેહની સંપ્રાપ્તિ એજ જાગૃતિનું મુખ્યદાર છે; એમ વિશ્વના મહાપુરુષો ઉપદેશ છે. માનવીની વિશિષ્ટતા—ઉત્તતતા એનાં એ ઉપદેશની તથ્યતા પરંતુ આપણને સચોટ શ્રદ્ધા થાય છે. કુદરત પણ પોતાના સિદ્ધાંત ક્રમથી અવ્યક્તમાંથી વ્યક્ત કિંવા સુષુપ્તિમાંથી જાગૃતિનું અભિનત સ્વરૂપ પ્રતિપાદિત કરે છે. આ ક્રમને વ્યાપક શબ્દોથી કહેવા માંડીએ તો એમ કહી શકાય કે: જાગૃતિ એ જીવના લક્ષ્ય સ્પર્શી અહોભાગ્યની અંતિમ અવસ્થા છે. નીતિ સામ્રાજ્ય વચન છે, “ નાસ્તિ જાગરતો ભય ” અર્થાત્ જાગૃતિના પુણ્ય ક્ષેત્રમાં ભયનો (પતનનો) સંભવ રહેતો નથી. ગોટેજ એ દિનદા-સુખદા-દેવપ્રદા જાગૃતિને સર્વેમ અપનાવવી એ મનુષ્ય તરિક્કે આપણું પરમ કર્તવ્ય ગણી શકાય.

યત્માન વિશ્વનું અવલોકન કરતાં આપણા કણ્ઠપટ પર એવા ગગનભેદી અવાજો આવ્યા કરે છે. “ અમે જાગૃતિના ઉપાસકો બન્યા છીએ. ” એટલુંજ નહિ પણ વિચાર વાણીમાં વહેતો જાગૃતિનો પ્રવાહ હાત્રવચ પરિવર્તો ભરાય છે: સમાજ, રાષ્ટ્ર અને ધર્મના અસ્વચ્છની વિચારણાઓ થાય છે; વ્યાખ્યાનો, ઉપદેશો અને એવી એવી વિવિધ પ્રવૃત્તિઓ આદરાય છે. આવા ભરચક જાગૃતિના ઉપાસના યોગમાં જનતા જાગૃતિનો જે રસાસ્વાદ લે છે, તેનું અકષય વર્ણન આંખે જારા શબ્દોમાં કરીએ તો તેથી આપણા અંતઃકરણને સંસાર પહેલેથી આપણા વદનપર શોડતી કાગળ થેરી છાયા પથરાઈ ગયેલ, કારણ, આજની હિતચિત્ર: દેશપ્રેમી જડ જાગૃતિના વિપરીતથી માનવ સમાજનો ભયંકર સંહાર આપણે જોઈએ છીએ. તે પણ એટલો બધો સંહાર કે જેની બરોબરીની સંખ્યા જગતના જૂનકાળના હિતદાસમાં ભાગ્યેજ મળી શકશે. પૂરી થતી વીસમી સદીનાં અનેક વિશાળો પૈકી એક વિશાળુ કે નેચા

તે જાગૃતિના મધ્યાહ્ન તરીકે સંબોધાય છે. આપણે જરા ઊંડા ઊતરી સ્થિત દ્રષ્ટિથી એ જાગૃતિના પ્રદેશને નિહાળીએ: સૌથી પ્રથમ તો પશ્ચિમના સર્વ પ્રદેશો જે સર્ગર્વ વાણીથી જાગૃત હોવાનો દાવો કરી રહ્યા છે, અને તેનાજ ધમ્મમાં માનવકુલનો હત્યાકાંડ કરવામાં પોતાના સમગ્ર સામર્થ્યનો ઉપયોગ કરે છે. નિર્દોષ માનવીઓના જન સેવામાં નિરપરાધ આત્માનું વૃદ્ધ જનતાની કનક કરવામાં એઓ આનંદ માણી રહ્યા છે: સ્વતંત્રતા ભોગવતી પ્રજાઓને પરત્વે-ગુલામ કરવામાં એઓ પોતાની રાક્ષસી મહત્વાકાંક્ષાને પોષી રહ્યા છે: પ્રપંચો, કારસ્થાનો, ફૂટનીતિઓ, દાવપેચો અને કુટુબિત વડવેનો એમના જાગૃત હૃદયમાં અહોનિશ અવનવા સ્વરૂપે રચાતાં જાય છે. એકંદરે થોડા શબ્દોમાં કહીએ તો, ધૈર્ય અનિષ્ટતા એજ તેમની જાગૃતિનો આદર્શ છે, અને આપણા ભારતવર્ષની સ્થિતિમાં પણ એ જાગૃતિએ અજ્યય આંચકા આપ્યા છે, ને આપતી જાય છે.

આ કૃત્રિમ જાગૃતિમાં સત્યતા, નીતિમત્તા, વિશ્વજયુક્તા અને નિઃકામતા જેવા જીવનના પ્રાભાવિક સંસ્કારોનો અસ્ત હોય એ ખુલ્લું છે.

જાગૃતિ તેજ રહો કે; જેમાં સંપત્તિમાન. મનુષ્યો સંપત્તિનો સદૈવ લોક કલ્યાણમાં વ્યય કરી તેના પર મમત્વ ન ધરાવે. બુદ્ધિમાન મનુષ્યો મન, વાણી અને ક્રિયા દ્વારા જનતાને સ-માર્ગનો સદ્બોધ આપના રહે. સચ્ચારિત્ર એજ જીવનની સાચી મહત્તા છે; એવા ઉચ્ચ મનોરથોથી પોતાની બુદ્ધિને સેવા માર્ગમાં અચલ રાખે, સત્તાવાન પુરુષો સેવક બની દુઃખ-ઉપદ્રવ-ઉત્પાત કરનારા આતતાથી જનોને જીવન મુધારણના માર્ગમાં તેમના અંતઃકરણોને યાજી તેમનું મનુષ્યત્વ દીપે તેવા ઉપાયો યોજે.

વસ્તુતઃ આજની જાગૃતિમાં તો નિર્દયશીલ યેન કેન પ્રકારેણ સત્તાવદ્ થવાની આશા પાર કરી લોક કલ્યાણની ભાવનાને જેર કરવા લોભ પર ભુલમના કારણો વીંછે છે. નિષિકારી વિદ્વાનો સ્વમંતવ્યતા વિજયમાં બુદ્ધિની વિવિધ રંગી દ્વિબળ ઊભી કરી એમણે રચેલા સિદ્ધાંતોથી લગ્ને સત્યનો નિકંદન થનો દોષ જનાં તેની પરવા કીધા વગર પોતાના મદોન્મત સ્વભાવને વેગવાન રાખે છે.

ગ્રૌહ ગણુતા મુક્તિઓ વાણીના જાદુથી માનવી માત્રને ભૂતથાપ આપવામાં પાવરધા અને છે, અને તેમનાં ગળાં રહેંસતામાં રાક્ષસી કાવા દાવાની પ્રપંચ-જાળ રચે છે.

નિઃકુર ધનપતિઓ કાળો માણસોના પરસેવાથી ઉત્પન્ન થતી આવકને ઓછિયાં કરી, અમન જમન ઊઘાવવામાં જીવનની છેલ્લી થડી સુધી કસાઇ જેવા રહે છે.

આજીંદૂ કૃતિઓ જાગૃતિ નાશક આ સાક્ષી યુગમાં અને છે. જેને જેઠ કાળ નિંદા દેવાને પણ કંપારી લાગે ! આની કૃત્રિમ જાગૃતિથી અભિમાન લેતા કોઈ પણ સમાજ કે રાષ્ટ્રનો ભયંકર વિનિપાત છે; એ કહેવું ન્યાય પુરઃ સર છે. ચારણ દેવેનો કાળ લુનો અલકાર: 'જાગૃતિના વિધાયક' તરીકે શાસ્ત્ર સંમત છે. આપણા એકેક સમર્થ પૂર્વજના જીવનમાં લાક્ષણિક સસ જાગૃતિનાં દર્શન આપણને થાય છે. એમના જીવનની સૈદ્ધાંતિક લાક્ષણિક જાગૃતિ હતી, ત્યારેજ તેઓ મદાંધ નૃપતિઓને કાચથી કટુ વચનો કહી શકતા. સંગ્રામને મોખરે ખડા થઈ શિર આપવા ઉત્સુક બનતા. સુવાળો રાજધર્મ અગાવી સ્વાર્થ સંપાદન કરવો એ દુર્યોધને તેઓ સતત ચિકારના.

આપણા પૂર્વજોનો એ પ્રતાપી વારસો શોભાવવા આપણે પણ જાગૃતિના પ્રદેશમાં પગલાં ભરવા કટિબદ્ધ બન્યા છીએ. પરંતુ એ જાગૃતિમાં કૃત્રિમતા ન પ્રવેશે એ આપણા અત્યારથીજ જીવન સંકષ્પ છે, એવી દૃઢ પ્રતિજ્ઞા પૂર્વક આપણે આપણા ઉત્કર્ષમાર્ગમાં આંગળ વધવું જોઈએ.

બૃહદ ગુજરાતના જ્ઞાતિ-સમાચાર

૬૨૭ બૂજમાં અમદાવાદ મિલ કામદાર યુનિયનવાળા શ્રીયુત મનસુખભાઈ ગઢવી (કચ્છી) એ બૂજ તાલુકા ખેડૂત સંઘ સ્થાપ્યો છે.

આગામી કાર્તિક માસમાં શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણ વિદ્યાલયના કાર્યવાહકોની ભાવનગરમાં બેઠક મળશે. વિદ્યાલય સંબંધી જેમને કાંઈ સૂચના કરવી હોય તેમણે પહેર દિવસ અગાઉ તેના મુદ્દપતિ ઉપર લખી મોકલવી.

ભાવનગરમાં હાલમાં પ્રેસ કામદારોની હડત ચાલતી હોવાથી ચારણ હિતવર્ધક સભાના અત્યુચ્ચ અધિવેશન (રાન્ડકોટ) નો રિપોર્ટ પ્રસિદ્ધ થવામાં રહેજ નિર્ણય થશે. જે ભાષણોની ચાલુ વર્ષની મેમ્બર શી બાકી હોય તેમણે તત્કાળ તેના મંત્રીજી ઉપર મોકલવા તજનીજ કરવી કે જેથી તેમનાં નામ રિપોર્ટમાં જાપી શકાય.

સમસ્ત ચારણ કામમાં પહેલવહેલી વિદ્યાલયની પદવી મેળવનાર પીંપળીવાળા શ્રીયુત કૃષ્ણભાઈ કાળુભાઈ પાલિયા, બી. એ. ડી. ડી. (ઇંગ્લેન્ડ) વડોદરાની બી. ડી. કોલેજમાં ૧૩. ૧૨૦ થી ૨૦૦ ની ગ્રેડમાં પ્રોફેસર તરીકે નીમાયા છે.

ચાલુ વર્ષે વડોદરા કોલેજમાંથી બી. એસ. સી. ની પદવી પ્રાપ્ત કરનાર રામોદડીવાળા શ્રીયુત મનુભાઈ રવાભાઈ વરસાડાની નાર હાઇસ્કૂલમાં અધ્યાપક તરીકે નીમણુંક થઈ છે.

વડોદરાની પુરૂષ અધ્યાપન પદ્ધતિ પાઠશાળાના અધ્યાપક ચરાડાવાળા શ્રીયુત કાળિદાસ હાલાભાઈ આદીની ચાલુસ્માં મદાજની તાલુકા સ્કૂલના હેડ માસ્તર તરીકે બદલી થઈ છે.

શ્રી મેરલા લીલા (જનાવા) પીસેક દિવસ પૂર્વે મુંબઈ જઈને કેટલાંક લોક ગીતો અને ચારણી છંદોની રેકૉર્ડ બિતરાવી આવ્યા છે.

સૌધાવદર (વાંકાનેર) વાળા શ્રીયુત નારણભાઈ મેકરણભાઈ રાહડિયા, બી. એ. હાલમાં કુંડલા હાઇસ્કૂલમાં અસ્થાયી અધ્યાપક તરીકે કામ કરે છે.

મેલ્બર્ન (લીંબડી તાલુકો) ના કરણસિંહ તેજભાઈ દેથા ૧૯૩૮ ના એપ્રિલમાં મુંબઈ વૅટર્નરી કોલેજના છેલ્લા વર્ષમાં ફર્સ્ટ ક્લાસ ફર્સ્ટ પાસ થયા છે. તેમને વડોદરા રાજ્યના વડનગર ગામમાં વૅટર્નરી સર્જન તરીકે રૂ. ૧૦ થી ૧૨૦ ની ગ્રેડમાં મૂકવામાં આવેલ છે.

સુપ્રસિદ્ધ ભક્ત કવિ શ્રી દલાભાઈ કાગનાં કાગ્યોનો સંગ્રહ 'કાગવાણી' ભાગ ૧ લો (બીજી આવૃત્તિ) અને ભાગ ૨ જે ગ્રેસમાં જપાય છે. દરેક ભાગનું મૂલ્ય સવા રૂપિયો છે. કુલ પાંચ હજાર નકલો નીકળશે. તેમાંથી ત્રણેક હજાર નકલના તો અગાઉથી આદેશ થઈ ગયા છે.

ચારણી કવિતાને નવી દિશા તથા જોમ આપનાર કવિ શ્રી કાગનું એ પુસ્તક લખી વાંચી જાણનાર પ્રત્યેક ચારણ બંધુના ઘરમાં હોવું જોઈએ.

चारणा

अखिल भारतीय चारण सम्मेलन
का

ॐ नैमासिक मुखपत्र ॐ

१]

चतुर्थ-पंचमी
क्रि.श. संवत् १९९५

[अंक २]

सम्पादकः

ठाकुर ईश्वरदान आशिया

सहकारी सम्पादकः

भैरव शुभकर्ण कविया, M. A., LL. B.,

गुजराती विभाग सम्पादकः

खेतसिंह नारायणजी मिश्रण

प्रकाशकः

ठाकुरदान जेठभाई देवा, लखौड़ी

[एक अंक के III]

સં.	વિષય	
૧	પ્રાર્થના (કવિતા)—શ્રી અક્ષયસિંહજી રત્ન	૧
૨	સમ્પાદકીય વિચાર—	૨
૩	ભાવો મહાયુદ્ધ—સમ્પાદકીય	૩
૪	ચારણ-વાણી (કવિતા-સંગ્રહ)	૮
૫	ચારણ કન્યુઓં સે—શ્રી રામનારાયણજી ચૌધરી	૧૬
૬	કાવ્ય-કુંજ—	૧૮
૭	કવિરાજા વાંકીદાસ—પં. શ્રી ગૌરીશંકરજી હોરાચંદ ઓઢા	૨૦
૮	ડિગલ-સાહિત્ય નેં હાસ્યરસ—ભંધર ઉદયસિંહજી વધિપાર્ણવ્યા	૨૫
૯	સમ્પાદકીય ટિપ્પણિયાં—	૨૯
૧૦	સમાચાર-સંગ્રહ—	૩૫
૧૧	“ચારણ” કા અનિમિત્ત પ્રકાશન (સમ્પાદકીય)—	ટાઇટલ પૃ. ૧

૧	આરણ્ય ખતને (કવિતા): શ્રી અલેસિંહ ખળેલ, કોઠિ	૧
૨	આરણ્ય જાતિ: તેની પડતીનાં કારણો અને ઉપાયો: શ્રી નારણભાઈ રોહડિયા, ખીં. એં.	૨
૩	આરણ્ય દેવો આવો ! (કવિતા): ભંજાકવિ શ્રી દલાભાઈ કાગ	૭
૪	કુદાનમાં ઘોર અપમાન: શ્રી લગવતીદાન રોહડિયા	૬
૫	શૂરવીરોને પણ પ્રેરણા દેતી આરણ્ય કોમળી જ્યલત ગાથા:	૧૧
૬	મેઘાદ રાજ્યના પુસ્તકાલયો અને ગ્રંથસંગ્રહ: સ્વં. મુનિશ્રી હિમાંશુવિજયજી ન્યાયકાવ્યતીથ	૧૧
૭	હર થા હર થા હુષ્ટ દાડ ! (કવિતા): કવિશ્રી ત્રિભુવનભાઈ વ્યાસ	૨૧
૮	યુગ-સંદેશ: શ્રી જીવજીલાલ નાયાભાઈ વરસરા	૨૨
૯	ખૂદદ શુશ્રુષાતના જ્ઞાતિ સમાચાર:	૩૧
૧૦	શોક-સમાચાર:	૩૩

ॐ

श्री जगदीश्वरी विजयते

चारण

अखिल-भारतीय-चारण-सम्प्लन
का

त्रैमासिक-मुखपत्र



सत्य अभय स्वातंत्र्य उपासक,—सिखा परणू-जीवन का धर्म ।

क्षात्रधर्म-उद्बोधक चारण,—रहा सदा साधक युगधर्म ॥

वर्ष १]

वसंत-पंचमी

विक्रम सम्वत् १९९५

[अङ्क २

प्रार्थना



(कर्त्ता-श्री० अक्षयसिंहजी रत्नू, अलवर),

जगदम्ब ! अब तो जबही इस जाति को जगा दो
फर नित्य तेम तत्पर कुलप्रेम में पगा दो ॥

गैरा से बढ़के आगे चलना तो खुद है मुश्किल ।

बढ़ते हुआ के लेकिन कुछ साथ तो लगा दो ॥

भर पाये इसकी पेसी गंभीर धीरता से ।

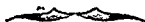
दुक भाव-धीरता भर, भय-भीड़ता भगा दो ॥

जब जब विपद् पड़ेगी रक्षा करूँगी आकर ।

प्रण यह विस्तार करके तुम तो न मा ! दंगा दो ॥

परतंत्रता के रुज से मुंह बंद हो चुके हैं ।

“अज्ञेय”-स्वतंत्रतामय सज्जीवनी सुंघा दो ॥



सम्पादकीय-विचार

हमारी मौजूदा हालत

अपने इतिहास के जानना बुरा नहीं परन्तु हम क्या थे या गुजरे हुए ज़माने में हमारी स्थिति क्या थी इस विवेचन की अपेक्षा अधिक लाभकारी यह मालूम होता है कि हम अपनी मौजूदा हालत को ठीक २ जाने। यों, जाहिरा तौर पर इस बात का विचार करने की कोई जरूरत नज़र नहीं आती क्योंकि सब कोई अपनी २ हालत को बखूबी जानने का दावा रखता है। लेकिन दर असल बहुत कम लोग ऐसे हैं जिन्होंने जाति की सारी मौजूदा हालत पर एक साथ गौर किया होगा कि उसको सामाजिक, धार्मिक या राजनीतिक स्थिति क्या है ?

चारणजाति इस देश के राजपूताना-मालवा और गुजरात-काठियावाड़ प्रांतों में बसती है जहां का अधिकांश भूभाग राजपूत नरेशों के अधिकार में है। गुजरात-काठियावाड़ में बसने वाले अपने जाति समुदाय की परिस्थिति का विवेचन इस पत्र के गुजराती विभाग के सम्पादक महोदय के ज़िम्मे छोड़ कर हम राजपूताना-मालवा के स्वजाति समुदाय के संबंध में ही अपने विचार प्रकट करने का प्रयत्न करेंगे क्योंकि 'उधरकी परिस्थिति का ग्रामाणिक परिचय' वे ही दे सकते हैं।

"चारण" के इस अंक में हम अपनी सामाजिक दशा पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

हमारी जाति गांवों में बसती है जो सैकड़ों वर्षों से उसी के अधिकार में चले आ रहे हैं। इन्हीं गांवों में से कुछ लोग राजाओं और उनके जागीरदारों की सेवा में भी रहते हैं और इनेमिंग लोग व्यापार व्यवसाय के क्षेत्र में य इंग्लिश सरकार में भी नौकर हैं।

जो लोग राजाओं और जागीरदारों के पास रहते हैं उनके लिये उस प्राचीन दोहे के शब्दों में ही कहना कार्प होगा कि-

"हय जोड़ा रहिया हमै,
गढ़वी काज गरख ।

ये 'राजड़' छत्रधारियां,
गो, जोड़ावण हथ ॥"

रही बात डिपार्टमेंटल नौकरों की या ऐसे ही अन्य लोगों की सो वे अपनी २ नौकरी करके और लोगों की तरह अपने विवाह की चिन्ता में लगे हुए रहते हैं। बहुत कम लोगों का जाति-सेवा की लगन या अपनी जाति की हीन-दशा का ध्यान है और जिनको है भी तो उनमें अधिकांश प्रायः हतोत्साह एवं निराश हैं।

अब रहे ग्रामवासी जातिबंधु। पहिले इनमें से भी कइयों का राजदरबार या जागीरदारों के ठिकानों में आना जाना रहा करता था और विवाह अवसरों पर ठिकानों में समूह रूप से जाने के अवसर

जाते रहने से शहरी तहजीब कुछ २ आ जाती थी। रहन सहन और बाल चाल ग्रामीण जनता से कुछ ठीक ढंग की होती थी। अब यह प्रायः बंद हो जाने से कई चारण ग्रामों में जाने पर पूछने से ही पता लग सकता है—कि अमुक व्यक्ति चारण है। अन्यथा किसी साधारण ग्राम-वासियों और उसमें कोई स्पष्ट अन्तर नजर नहीं आता। पहिले जोधपुर नरेश्वर श्री मानसिंहजी के शब्दों में कहें तो, चारण प्रायः “राजाओं में शोभित होने वाले—देह दराज दीसता डारण” होते थे और इस लिये अन्य लोगों से अपने आप ही विशेषता लिये हुए होते थे। परन्तु आज, ‘हा! वे गये दिव्य वपुधारी’। आज एक साधारण ग्रामवासी बालक और चारण बालक-बालक ही क्यों बूढ़े और जवानों तक में भी कोई अन्तर नजर नहीं आता। वही भद्दा रहन सहन, वही बोलचाल, वही रंगढंग! पहिले हर गांव में जहां सुबह शाम पिता अपने २ बालकों को पुरानी उत्तम बातों के साथ गीत, दोहे, छंद, छन्दय जो भी उन्हें आते, अकसर सिखाते हुए देखे सुने जाते थे और इस तरह लिखना पढ़ना न जानने पर भी बहुतांश की सैंकड़ों गीत, दोहे, छंद आदि कविता कंठाम होती थी और वे बहुत-सी पुरानी बातें इस परिपाटी से जान जाते थे। शाम को सब बालक इकट्ठे होकर याद की हुई कविता बोलते थे। अब वह प्राचीन परिपाटी तो लुप्तप्राय हो गई है और उसके स्थान पर बालकों की शिक्षा का सब जगह कोई खास इन्तज़ाम न होने से परिणाम वही हुआ जो ऊपर कहा गया

है। इस तरह यह बुद्धिजीवी जाति ग्रामीण श्रमजीवियों के रूप में आ जाती हुई मालूम हो रही है।

ग्रामीण होना, किसान होना या श्रम-जोशी होना बुरा नहीं, बल्कि आजकी दुनिया में तो इस प्रकार के जीवन ही मानव जाति के कल्याण की दृष्टि से अनुकरणीय एवं आदर्श माने जा रहे हैं, और अन्य देशों के समान हमारे देश में भी राजसत्ता का प्रथमाधिकार इस प्रकार का जीवन विताने वालों ही के हाथ में आता हुआ दिखाई दे रहा है। अतः यदि हमारी जाति भी ग्रामीण श्रमजीवियों के रूप में जीवन विताने तो वह अवांछनीय तो न होगा। अभीष्ट यह है कि वह अपने बुद्धिबल के पैतृक उत्तम संस्कारों को कायम रख सके और समय के अनुरूप उन संस्कारों का लाभ अपने साथियों को पहुँचा कर अपनी विशेषता बनाये रहे तो और भी अच्छा है। इसका एक मात्र उपाय उपयोगी शिक्षा का सुलभ प्रचार ही है।

ग्रामीण सजातीयों में खेतीवाड़ी व पशुपालन का धंधा ही निर्वाह का प्रधान साधन है। परन्तु बहुत कम लोग ये काम ठीक तरह से करते हैं। ज्यादातर लोग अपने समय का बहुत कुछ हिस्सा सुस्ती में बैठे २ गणशय लड़ाने में, तम्बाकू फूंकने में और जो खेला पी सकते हैं या व्यसन के चक्र में आ गये हैं वे अफीम व शराबखोरी में बिता देते हैं जिसका अनिवार्य परिणाम सर्वत्र दिखाई देने वाली गरीबी और कर्जदारी है। सौ में से दस परिवार भी मुश्किल से ऐसे मिलेंगे जो कर्जदार न हों या अच्छी

हालत में हैं। इस आर्थिक दुरवस्था में 'कोढ़' में खाज 'की कहावत के अनुसार परस्पर के ईर्ष्या-द्वेष, अनुचित स्वार्थ और अज्ञान अहंकार के कारण बढ़ी हुई मुकद्दमेबाजी और झगड़े बखेड़े हैं जो गरीबी और कर्जदारी के सहायक हो रहे हैं। बन्धुप्रेम और सहानुभूति-सहयोग मिटता जा रहा है। याचनावृत्ति के पुराने पाप से स्वभिमान लुप्तप्राय हो गया है। जाति के अधिकांश व्यक्ति खुद ही अपने आप को हीन अनुभव करते हैं। फिर, भले ही भले राजपूत उन्हें 'पूजनीक' कह कर भी क्यों न सम्बोधित करें। अलवत्तह सम्मेलन की शुभ प्रेरणा से 'त्याग' का परित्याग हो जाने से और किंचित शिक्षा के प्रचार से साधारणतया सारी जाति में और विशेषतया शिक्षितों में यह बात अब बहुत कुछ मिटती जा रही है। शिक्षित युवक समझने लगे हैं विद्याप्राप्ति का जितना आवश्यक गुण है उतना ही स्वाभिमान की भी।

अंध विश्वास के कारण रूढ़ियों के गुलाम हम भी उतने ही हैं जितनी कि हमारी साथी अन्य जातियाँ। हिन्दू मात्र के जीवन में शादी और गमी के ही मौके ऐसे हैं जो खास तौर पर रूढ़ियों के आधार कहे जा सकते हैं। हैसियत न हो तो भी इन मौकों पर कर्ज लेकर भी खर्च करने का हरेक व्यक्ति रूढ़ियों के कारण मजबूर होता है।

पिता या भाई आदि की बीमारी में जो पुत्र या भाई आदि निकट संबंधी एक घड़ी भी हमदर्दी के साथ रहल-बंदगी में नहीं रहता और रात को उस के पास सोता तक नहीं और न इलाज

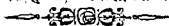
के लिये कुछ खर्च करना आवश्यक समझता है वही, जय इस परिस्थिति में बीमार चल बसता है तो, घरधंधा छोड़ कर मातमपुर्सी के लिये आने वालों की आवभगत करने का घेड़ जाता है। इतना ही नहीं द्वादशे के लड्डू बनाने के लिये कर्ज देने का बोहरे की खुशामदे कर-कर के अपनी जमीन उसके यहां गिरवी रखता है और लड्डूप्रेमी भी लोगों की निंदा से बचने के लिये अपनी बर्बादी अपने हाथों मोल लेता है। उसे यह भाव भी द्वांवाता है कि मृत व्यक्ति ने और मैंने भी तो ऐसे ही लड्डू लोगों के यहां खूब उड़ाये हैं तो अब उन लोगों को कसे नहीं बुलाया जाय। ऐसे पुत्र की माता भी उसकी जननी हो वैसी ही होती है। कहने सुनने या समझाने से वह इस बर्बादी से बचने का आमादा हो भी जाय तो माता नहीं मानती। पति के जीते जी बीमारी में उसके इलाज के लिये अपने पैरोंकी कड़ियां या एकाध जेवर जो उसके पास हो उसे बेच देने की उसे नहीं सख्ती पर उसके द्वादशे के तो लड्डू ही बनें इसके लिये ज़र-ज़मीन सब कुछ दे देने का अपना कर्तव्य समझती है और बड़े सवेरे जग कर वा शाम बगैर के मुकुरेरा घंटों पर अरसे तक अपने और पति के पारस्परिक स्नेह और वियोग के विलाप चिल्ला चिल्ला कर रोते हुए करने में ही अपनी कुलीनता की रक्षा मानती है। कुटुम्ब की खियां भी, आंसू भले ही एक भी न आवे राने के लहज्जे में शोर मचा कर उसका सहयोग देती हैं। मातमपुर्सी के लिये किसी के आने पर राने के लिये

स्त्रियों को सूचित करना जरूरी समझा जाता है। करें भी तो क्या? इन बातों में थोड़ी सी भी कसर रह जाय तो निष्ठुर रुढ़िप्रेमी लोगों की निंदा का डर और पीढ़ियों के जमे हुए संस्कार सब को दबाये हुए हैं। आवश्यकता है, सम्मेलन के प्रस्तावों के अनुसार ध्यान देकर हानिकर रुढ़ियों को उठा देने वाले साहसियों के आगे आनेकी जो ऐसी बातों में निंदा की परवाह न करें।

शादियाँ भी बहुत कम जगह अपने नाम को सार्थक करती हैं। सम्पूर्ण जीवन के इस प्रेम संबंध को स्थापित करनेकी शुरुआत ही आजकल भावताव छटारने की लूढ़ी से होती है। बरकतिया की सगाई में ही पेंचातानी शुरू हो जाती है जो शादी के वक्त तक तो बाज २ जगह लड़ाई का स्वरूप धारण कर लेती है। जहाँ एक दूसरे को देख कर प्रफुल्लित होना चाहिये वहाँ बरकतिया पक्ष में कई जगह स्थायी बैमनस्य हो जाता है, अधिकांश विवाह अनमेल स्वभावादि के तो होते ही हैं क्योंकि सगाई के समय बरकतिया के स्वभाव-साम्य आदि बातों की तरफ ऊपर कहे हुए कारण से किसीका खयाल ही नहीं होता—बाज़ २ विवाह अनमेल उम्र के भी होते हैं। जो कुलिन माने जाते हैं और कुछ अच्छी आर्थिक दशा वाले हैं या जिनके कुछ बड़ी जागीर है वे अपनी या अपने पुत्र आदि की सगाई में कन्या पक्ष से जितने रुपये जिस नाम से पेंठे जा सके उतने पेंठने में कोई बात उठा नहीं रखते। और जिनको कुलीनता का निधनता ने दया लिया है और जो लड़की के पैसे लेना अपना स्वाज्ञ ही मान बैठे हैं वे

लोग परस्पर लड़कियों के पैसे दे ले कर शादियाँ करते हैं। यह लड़कियों की खरीद फ़ोरेखत अब उन लोगों में भी कुछ २ शुरू हो गई सुनी जाती है जो लड़की के पैसे देकर या लेकर शादी करने-कराने में अपनी कुलीनता को बड़ा लगाना समझते थे और बिना शादी किये ही उम्र बिता देना अच्छा मानते थे। परन्तु आज कल कैसे भी हो, कहीं भी हो हरेक व्यक्ति शादी कर लेना चाहता है। यह प्रवृत्ति भी हमारी बढ़ती हुई गरीबी और मानसिक पतन का स्पष्ट सूचित करती है।

राजपूताने में इन शादी-गर्मी की हानिकर रुढ़ियों को बंद करने के उद्देश्य से स्व० महामहोपाध्याय कथिराला श्यामलदासजी दधिवाड़िया (उदयपुर) के अनुरोध पर राजपूताने की सब रियासतों के राजपूत-चारण-श्रैतिनिधियों की राय से तत्कालीन ए० जी० जी० कर्नल वाल्टर महादय की प्रेसिडेंटशिप में “वाल्टर-कृत राजपुत्र हितकारिणी सभा” के नाम से एक सभा अजमेर में स्थापित की गई थी जो नाम रूप से अब तक भी है, और जिसकी शाखा-सभा हरेक रियासत में है। परन्तु, कहते दुःख होता है, संगठनादि संबंधी कुछ मौलिक श्रुतियाँ शुरू में ही रह जाने से उक्त सभा अपना उद्देश्य अपने जीवन के इतने दीर्घकाल में—हर तरह की साधन सुलभता प्राप्त होने पर भी अब तक पूरा न कर सकी! इस असफलता के संबंध में यहां विस्तृत रूपसे लिखना विषयांतर-सा होगा, अतः जितना सा संबंध चारण जाति से इसका है और जो दख इसने इसके संबंध में इख्तियार किया मालूम होता है उसीके विषय में यहां संक्षेप से कुछ कह देना अप्रासंगिक न होगा।



भावी महायुद्ध



चौबीस वर्ष पूर्व जैसा भयंकर महा-युद्ध छिड़ा था और जिस में इस देश के भी लाखों योद्धा अंग्रेज सरकार की तरफ से बड़ी बहादुरी के साथ लड़कर काम आये थे और देश के अरबों रुपये का व्ययभार उठाना पड़ा था वैसा ही या उस से भी अधिक भयंकर संसार-व्यापी युद्ध छिड़ने की आशंका बड़े २ राजनीतिज्ञ वर्गों से करते आ रहे हैं। इंग्लैंड, अविस्सीनिया की लड़ाई, स्पेन का गृहयुद्ध, चीन जापान समर और जेको-स्लोव्किया पर जर्मनी का प्रभुत्व आदि के कई अवसर ऐसे आये कि जब मालूम होता था कि युद्ध छिड़ने ही वाला है। किन्तु कई गुप्त एवं प्रकट कारणों से अभी तक महायुद्ध टलता जा रहा है। परन्तु हर वक्त बना हुआ है इसलिये अंतर के बड़े २ देश अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाने और आत्मरक्षा के उपायों को जुटाने में पानीकी तरह धन बहा रहे हैं। इस देश में भी अंग्रेज सरकार इस निमित्त करोड़ों रुपये हर साल खर्च कर रही है। परन्तु देश की जनता की तरफ से राष्ट्रीय महासभा-कांग्रेस इस का विरोध करती है और उस ने तो स्पष्ट ही कह भी दिया है कि अगर हिन्दुस्तान की सम्मति बिना अंग्रेज सरकार किसी युद्ध में कूद पड़ेगी तो पहले के समान यह देश धन जनादि से अब उस की सहायता नहीं करेगा। खैर। अब चूंकि अंग्रेज सरकार का कांग्रेस के हाथ में देश की कुछ हुकूमत भी दे देनी पड़ी

है और उसका प्रभाव प्रताप भी दिन दिन बढ़ता जा रहा है इस लिये उस की बात को वह एकदम सुनी अवसुनी नहीं कर सकती। हां, राजा लोग हर समय हर बात में हर तरह उस की मदद करने को तय्यार हैं क्योंकि वे खुद अपने और अपने लोगों के बल बुद्धि पर-विश्वास न कर उसी के भरोसे पर अपना अस्तित्व समझते हैं।

अब हम पाठकों की जानकारी और मनोरंजन के लिये सहयोगी 'राजपूत' से निम्नलिखित अंश उद्धृत करते हैं जिस से उन्हें ज्ञात होगा कि उन देशों में भावी महायुद्ध के समय आत्मरक्षार्थ कैसी कैसी तय्यारियां हो रही हैं—

“.....चायुधानों से बम बरसा २ कर किसी भी देश का भीषण रूप से नाश किया जा सकता है; पर जब तक स्थलसेना सीमा पार कर देश पर कब्जा न करे, तब तक अधिकार तो हो नहीं सकता। किन्तु युरोपियन देशों ने अपनी २ सीमाओं पर इसी लिये अमेच किले-बंदियां कर रखी हैं। फ्रांस ने अपनी सीमा पर दुश्मन को रोकने के लिये, जमीन के नीचे, जो अमेच किलेबंदी की है वह भावी विश्वयुद्ध के इतिहास का गुप्त अध्याय है। इसी संबंध में किसी अंश तक प्रकाश डालते हुए 'सन्डि एक्सप्रेस' के सम्पादक ने लिखा है—फ्रांस की किले-बंदी की यह दीवार-जिस का नाम मैग-नेट लाइन है—जमीन के नीचे होने के

कारण अदृश्य है। यह स्विस् सीमा तक ६०० मील तक दुश्मन के आक्रमण से फ्रांस की रक्षा करती है।

यदि कोई अजनबी फ्रांस की सीमा से गुज़रे तो उसे क़िलेबंदी का कोई भी चिह्न दिखाई न देगा सिवाय तोपों रखने की बुर्जों के जो कई सौ गज के फासलों पर बनी हुई हैं। यदि युद्ध छिड़ा तो तोपों बटन दबाते ही जमीन के भीतर से अपने स्थानों पर ऊपर आ जायेंगी और विजली की सहायता से लोग भूगर्भ से उन्हें अभूतपूर्व तेज़ी से चला सकेंगे।

शान्ति के समय मैग्नेट लाइन के ६०० मील के फासले में एक लाख व्यक्ति १४००० प्रधान तोपों पर सदा मुस्तैद रहते हैं। इन तोपों का नियंत्रण जमीन के नीचे जिन लोगों के हाथ में रहता है वे हर प्रकार से सुरक्षित हैं। उनके सिर पर ४० इंच मोटी विशेष रूप से तय्यार की हुई सीमेंट की छत है, जिस पर कोई गोला, बम या मशीनगन की गोलियाँ असर नहीं कर सकती।

इसके अलावा गैस भी इन अदृश्य गोलान्दाजों का कुछ बिगाड़ नहीं सकती। तोपों की जो बुर्जें दिखाई देती हैं, उन में कुछ तो जमीन के नीचे १०० फीट तक चली गई हैं। इन में नीचे गोलान्दाजों के सोने, रहने, खाने और मनोरंजन का पूरा प्रबंध है। दीवार की चारों तरफ मोलों तक अदृश्य आँखें रात्रि दिन देखती रहती हैं। रात के वक्त सामने और पीछे के प्रदेश में वैज्ञानिक किरणें फैली रहती हैं। किसी आदमी के आते ही खतरे की घंटी प्रत्येक बुर्ज में बज जायगी और सभी लोग सतर्क हो जायेंगे।

यह है फ्रांस की मैग्नेट क़िलेबंदी, जिस का उद्देश्य आक्रमणायक न हो कर रक्षात्मक है। सीमा की दूसरी तरफ इसी तरह की क़िलेबंदी जर्मनी ने की है। सोवियट रूस ने भी उत्तर से लेकर कास्पियन सागर तक अपनी पश्चिमी सीमा पर यही किया है। यही हाल जेकोस्लोवेकिया की जर्मन सीमा पर था, लेकिन अब वह सीमा ही नहीं रह गई।

इस स्थल पर जर्मन सीमा की फौलादी दीवार का कुछ ज़िक्र कर देना आवश्यक होगा। जर्मनी ने भी फ्रांस की मैग्नेट लाइन के मुकाबले में चेलजियम से लेकर स्विस् सीमा तक क़िलेबंदी की है। इस लाइन को तय्यार करने के लिये हर हिटलर ने हुक्म निकाला था कि समस्त किसान १५ अगस्त तक अपना फसल काटने का काम ख़तम कर दें ताकि काफी तादाद में मज़दूर इस लाइन को तय्यार करने के लिये मिल सकें। सारे जर्मनी की फैक्टरियों से कहा गया था कि ९५ फी सैकड़ मज़दूरों को इस लाइन पर काम करने के लिये छोड़ दें। दो लाख से अधिक मज़दूर इस लाइन पर काम करने में लगे रहे हैं। इस दीवार के साथ ही मशीनगनें, टैंक तथा विध्वंसक मशीनें चढ़ाई जा रही हैं। पर सब काम ऐसी गुप्त रीति से हो रहा है कि इसके बारे में कुछ विशेष पता नहीं चलता।

यद्यपि जर्मनी इस दीवार का निर्माण आत्मरक्षा के बहाने से कर रहा है पर यह बात कौन नहीं जानता कि जब तक जर्मनी स्वयं आक्रमण न करे, कोई भी उस पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकता।”

चारण-वाणी

(१) ओपाजी आदा के गीत

(गतांक से आगे)

४

जोवन काज मोहाणो उठ जासी, याद भजन तणो अभियास ।

वळे न आवै कदै पामणो, वळे न बीजो वागड़ वास ॥ १ ॥

होय सनाथ जनम मत हारे, नाथ समर त्रयलोक नरेस ।

लाखां देतां मिछै न तोई, बीस कोड़ देतां लघुवेस ॥ २ ॥

सूने गाम न पाड़ संसोड़ो, गाफल हिवड़ै राख गियान ।

“ ओपा ” ये दिन कद आवसी, भनसां वळे कदे भगवान ॥ ३ ॥

परसराम भज चाख अमृतफळ, जनम सफळ हुय जासी ।

पाछो वळे अमौलक पंछी, इण तरवर कद आसी ॥ ४ ॥

५

कर जाणो तो कोई भलाई कीजो, लाह जनम रो लीजो लोय ।

पुरझा दो दन तणां पामणा, कणी सूं मती विगाड़ौ कोय ॥ १ ॥

जाणो छै जाणो छै जाणो, समझो ओ भीतर व्है सान ।

वे दन काज जहर क्यूं धोलो, मरदां दूर तणा मजमान ॥ २ ॥

यूं करतां हीं जावै ऊमर, परम क काल परार क पोर ।

आंपां वात करां औरां री, आंपां री करसी कोई और ॥ ३ ॥

गिरवा^१ हुवा हरी गुंण गावो, छीलर ज्यूं मत दाखो छेह ।

आज क काल पियाणौ ‘ओपा’ ! दीहर्स गया ज्यूं ताळी देह ॥ ४ ॥

[प्रथमांक में प्रकाशित ओपाजी के तीसरे गीत के तीसरे व चौथे दोहे के बीचके अन्य दो दोहे श्री खेतसिंहजी मिश्रण के उनके गांव के पास के ब्राह्मणवाड़ा ग्राम निवासी कवि शार्दूलजी गांगड़ा^१ से इस प्रकार मिले हैं—

मन में जाणै पिऊं पय मिसरी, छास सोम री^२ मिळै न छांट ।

वळिया सूं पाळी कुण वाळै, उण घर रा लेखण री आंट^३ ॥



मन में जाणै पै'रूं महमूदी, फाट्या धावळ लियां फिरै ।

किसूं कळपै माणस रो कीधौ^४, करै जिको करतार करै ॥



[“चारण वाणी” की कविता में जहां २ अर्थ की अस्पष्टता होगी वहां भविष्य में उन शब्दों पर रेखा कर दी जाया करेगी जैसी कि इस अंक में भी की गई है ! अतः जो सज्जन अर्थ की स्पष्टता कर सकें वे ध्यान दें और सूचित करने की कृपा करें—सम्पादक]

१. बड़े दुःख का विषय है कि, हमारी पित्रोपार्जित निधि डिंगल-साहित्य के अखूट भंडार-स्वरूप इन महानुभाव का विगत पौष शुक्ला १५ के ६२ वर्षकी उम्र में देहावसान हो गया ! समस्त उत्तर गुजरात एवं वडियार प्रांत में प्राचीन पीढ़ी के ये अंतिम कवि थे । इनकी याद-शक्ति अपूर्व होने से हजारों कविताएं इनके कंठाग्र थीं । कविता बोलने एवं कहानी कहनेका इनका ढंग अपूर्व था । बड़े सरल हृदय और भावुक व्यक्ति थे । २. हमारी समझ में यहां “छास छाग री मिळै न छांट” पाठ होगा । छाग=वकरी । ३. हमारी समझ में इस दोहाद्वि का भावार्थ है—“उस बलिष्ठ घर अर्थात् ईश्वर के घर की लेखनी के अग्रभाग के फौन वापस लौटा सकता अर्थात् रोक सकता है ?” ४. इस चरणार्द्ध का भावार्थ हमारी समझ में इस तरह है—“मनुष्य के कल्पना किया करने से क्या हो सकता है ?”

—सम्पादक, गुजराती विभाग

(२) कविराजा बाँकीदासजी आशिया के गीत (गतांक से आगे)

४

आयो अँगरेज मुलक रे ऊपर, आहँस लीधा खँच उरा ।

धणियां मरे न दीधी धरती, (वां) धणियां ऊँझ गई धरा ॥ १ ॥

फौजां देख न कीधी फौजां, दोयण किया न खळां डळां ।

खवाँ खाँच चूड़े खाँवँद रे, उणहिज चूड़े गई इळा ॥ २ ॥

छत्रपतियां लागी नँह छाणत, गढपतियां धर परी गुमी ।

वळ नँह कियो बापड़े वोतां, जोतां जोतां गई जमी ॥ ३ ॥

दुय चत्रमास बाजियो दखणी, भोम गई सो लिखत भवेस ।

पूगौ नहीं चाकरी पकड़ी, दीधी नहीं मरटे देस ॥ ४ ॥

वधियो भलौ भरतपुर वाँझौ, गाजे गजर धजर नभ गोम ।

पहलौ सिर साहब सौ पड़ियो, मड़ ऊभां दीधी नँह भोम ॥ ५ ॥

“महि जातां चींथातां महळा, ए दोय मरण तणा अवसाण ।”

राखो रे किहिक रजपूती, मरदां हिन्दू की मुत्सलमाण ॥ ६ ॥

पत जोघाण, उदैपुर, जैपुर, पहें थारा खूटा परियाण ।

आँके गई, आवसी आँके, “वाँके आसल” किया बखान ॥ ७ ॥

१. खवाँ खाँच चूड़े=कंधे से कलाई तक के चूड़े सहित । खवाँ खाँच.....
...गई इळा=पृथ्वी उसी अपने पुराने पूरे चूड़े सहित दूसरों के अधिकार में
...गई । २. छाणत=अप्रिय, बुरी । छत्रपतियां..... छाणत=राजाओं का यह बात
...नहीं लगी । ३. वोतां=गवाते समय । ४. गाजे गजर धजर नभ गोम=तोपों के
बलने की गर्जना से आकाश और पृथ्वी भर गई । ५. पह=राजा । खूटा=समाप्त
हुआ । ६. परियाण=वंश । पह.....परियाण=हे राजाओं ! तुम्हारा तो वंश ही समाप्त
हो चला । ७. अभी कुछ मास पूर्व काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से
कविराजा बाँकीदासजी के ग्रंथों का ८० सा० मुरातेदानजी कविया, कुम्हारिया
(जयपुर) के संपादकत्व में ‘बाँकीदास ग्रंथावली’ नाम से तीसरा भाग प्रसिद्ध हुआ
है । उसमें डिंगल बापा के अन्यान्य ९ ग्रंथों के साथ उनके फुटकर गीत, देहा,
सवैया, कवित आदि का संकुट-संग्रह भी प्रकाशित हुआ है । उसमें ‘चारण’ के
प्रथमांक में प्रकाशित उक्त कविराजाजी का पहला एवं दूसरा गीत और इस अंक में
प्रकाशित उपरोक्त गीत शब्दार्थ-भावार्थ सहित दिया गया है । और तदनुसार ऊपर
के गीत की पाठ-शुद्धि कर हमने रेखांकित शब्द या पंक्तियों का शब्दार्थ-भावार्थ
लिखा है । अपने इस अनुचित हस्तक्षेप के लिये हम सम्पादक मोहादय के
क्षमा-प्रार्थी हैं ।

—सम्पादक, गुजराती विभाग

[इस गीत के साथ उक्त कविराज के प्रास्ताविक गीत हमारे संग्रह में समाप्त होते हैं । जिनके पास और हों वे अवश्य भेजने की कृपा करें ।

प्रस्तुत गीत में कवि की राजनीतिक दृष्टिशिक्तापूर्ण भविष्यवाणी, स्पष्टवक्तापन, उस ज़माने के वैमनस्यकाल में भी हिन्दू-मुस्लिम पैक्य की राष्ट्रभावना और देश को खोई जाती हुई आज़ादी के लिये हार्दिक चेदना किन मार्मिक शब्दों में प्रकट की गई है, सहृदय पाठक ज़रा देखें ।

इन कविराज के संबंध में पाठक इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित लेख देखेंगे ।

—सम्पादक]



(३) महाकवि ठाकुर सूर्यमल्लजी मिश्रण (बूंदी) रचित

वीरसतसई (अपूर्ण)

[इन दोहों का यथामति भावार्थ लिख दिया गया है, परन्तु जहां २ सन्देह है वहां दोहों पर रेखा कर दी गई है ।

—सम्पादक]

दोहा

लाऊं पै सिर लाज हूं, सदा कहाऊं दास ।

गण व्है गाऊं तूफ़ गुण, पाऊं वीर प्रकास ॥ १ ॥

(मुझे सदा लज्जा है कि मैं आपका दास कहलाता हूं । फिर भी वीररस के प्रकाश की प्राप्ति के लिये आपका नम्र सेवक हो आपके गुणगान करता हूं ।)

आणी उर जाणी अतुल, गाणी करण अगूढ ।

वाणी जगराणी बले, मैं चीताणी मूढ ॥ २ ॥

(इन दोहों में वर्णसगाई का नियम न रखने से वीररस का पोषण ही दिखाई देता है । वीरता के हुताशन रंग में दोष कोई नज़र नहीं आता ।)

वीकम बरसां वीतियो, गण चौ चंद गुणीस ।

बिसहर तिथ गुरु जेठ बदि, समय पलट्टी सीस ॥ ३ ॥

(विक्रम संवत् १९१४ की ज्येष्ठ कृष्णा ५ गुरुवार को समय ने एकदम पलटा खाया ।)

इकड़ंकी गिण एक री, भूले कुळ साभाव ।

सूरां आळस ऐस में, अकन गुमाई आव ॥ ४ ॥

(उस समय किसी एक ही का आतंक मान कर अपने कुल स्वभाव को भूल शूरवीरों ने आलस्य एवं विलास में अपनी आयु को व्यर्थ खो दी ।)

इण वेळा रजपूत वे, राजस गुण रंजाट ।

सुमिरण लग्गा वीर सब, बीरां री कुळवाट ॥ ५ ॥

(इस प्रमाद काल में भी वे सब वीर राजपूत जो रजोगुण में अनुरक्त थे समय का परिवर्तन देख वीरों के कुलमार्ग का स्मरण करने लगे ।)

सत्तसई दोहामई, मीसण सूरजमाल ।

जैप भइलाणी जठे, सुणे कायरां साल ॥ ६ ॥

(ऐसे अवसर पर मिश्रण सूर्यमल्ल दोहामयी उस वीर सप्तशती का उच्चारण करता है जो शूरसंहारिणी और सुनते ही कायरों के लिये शूलरूपिणी है ।)

नथी रजोगुण ज्यां नरां, वा पूरौ न उफाण ।

वे भी सुणतां ऊफणि, पूरा वीर प्रमाण ॥ ७ ॥

(इसके श्रवण से जिन लोगों में रजोगुण नहीं है और न पूरा जोश: वे भी पूरे वीर के समान जोश में आ जायेंगे ।)

जे दो ही पख ऊनळा, जूझण पूरा जोध ।

सुणतां वे भइ सौगुणा, वीर प्रकासण बोध ॥ ८ ॥

(फिर ऐसे लोगों का तो कहना ही क्या जिनके दोनों पक्ष उज्ज्वल हैं और जो युद्ध के लिये कमर कसे रहते हैं । ऐसे सुभटों का शौर्य तो इसके श्रवण से सौमुना हो जायगा ।)

दमैगळ विण अपचौ दियण, वीर धणी रौ धान ।

जीवण धण बालहा जिकां, छोडो जहर समान ॥ ९ ॥

(मित्रो ! वीर स्वामी का अन्न युद्ध के बिना पचा नहीं करता । अतः जिन्हें अपने जीवन और पुत्र-कलत्र से मोह हो वे उसे जहर समझ कर छोड़ दें ।)

नहँ डाकी अरि खावणौ, आयां केवल वार ।

बधावणी निज खावणौ, सो डाकी सरदार ॥ १० ॥

(ज्वरदस्त सेनानी वह नहीं है जो केवल अवसर आने पर शत्रु का संहार करता है; किन्तु प्रतापी नेता वह है जिसके लिये अरने ही लोग अहमदमिका से बलिदान हो जाते हैं ।)

डाकी ठाकर रौ रिजक, ताखा रौ बिल एक ।

गहळ मुआं ही उतरै, सुणिया सूर अनेक ॥ ११ ॥

(यह अनेक शस्त्रियों के उदाहरणों से सर्वश्रुत है कि ज्वरदस्त मालिक का रिजक और तक्षक सर्प का विष एक से ही होते हैं कि जिनका नशा मरने पर ही उतरता है ।)

डाकी ठाकर सहण कर, डाकण दीठ चलाय ।

मायड़ खाय दिखाय घण, धण पण बलय बताय ॥ १२ ॥

(प्रतापी स्वामी अपने सेवकों की बातें सहन कर उन्हें खा जाता है, डाकिनी अपने भक्ष्य को दृष्टिक्षेप करके खाती है, माता पुत्र को स्तन बटा कर और पत्नी पति को बलय (चूड़ा) बटा कर खा जाती है ।)

सहणी सब री हूँ सखी, दो उर उलटी दाह ।

दूध लजाणै पूत सम, बलय लजाणै नाह ॥ १३ ॥

(हे सखि ! और सब बातें मुझे सह्य हो सकती हैं किन्तु यदि प्राणनाथ मेरे बलय को लजा दें और पुत्र मेरे दूध को, तो ये दोनों बातें मेरे लिये समानरूप से दाहक एवं हृदय को उलट देने वाली हैं—असह्य हैं ।)

जे खळ भगा तो सखी, मोताहळ सज थाळ ।

निज भगा तो नाह रौ, साथ न सुनो टाळ ॥ १४ ॥

(युद्ध में भगदड़ देख कर वीर पत्नी कहती है कि सखि ! यदि शत्रु भाग खड़े हुए हों तो मोतियों का थाल सजा ला जिस से हृदयेश्वर की आरती उताहंगी और यदि अपने ही लोग भाग चले हों तो प्राणनाथ का साथ मत बिछुड़ने दे अर्थात् शीघ्र मेरे सत्तां होने की तय्यारी कर ।)

हथळेवे ही मूठ किण, हाथ विलगा माय ।

लाखां बातां टेकलो, चूड़ी मो न लजाय ॥ १५ ॥

(पाणिग्रहण के अवसर पर उनकी हथेली में के तलवार की मूठ के निशान (आंठण) मेरे हाथ में चुभते ही, मा ! मैं ताड़ गई कि कुछ भी हो जाय वे प्रणवीर मेरे चूड़े को कभी न लजायेंगे ।)

समझी और निसंक भव, जंबुक राह न जाह ।

पण घण रौ किम पैखही, नयण विणट्टा नाह ॥ १६ ॥

(पे चील्ह ! और २ अंग तो तू भले ही निस्संकोच खा; किन्तु शृगाल के मार्ग का अनुगमन मत कर । क्योंकि यदि तू प्राणनाथ को नेत्रविहीन कर देगी तो वे अपनी अर्द्धांगिनी का युद्ध में सहयोग का प्रणालन कैसे देख सकेंगे ।)

विण दामां बिलसै सदा, दामां दुरलभ नाग ।

न्याय भड़ां घर नारियां, चड़ौ पीत सुहाग ॥ १७ ॥

(मूल्य देने पर भी जो हाथी दुर्लभ हैं उन्हें शत्रुओं से छीन कर जो शूरवीर बिना मूल्य ही उपभोग करते हैं उन सुभटों के घरों में कण्ठाभरण में गजमुक्ता और हाथीदांत का चूड़ा स्त्रियों के सौभाग्यचिह्न माने जायें तो उचित ही है ।)

काय कलाली छळ कियो, सेज गुमावण रंग ।

फूल दुवारै, छाकियौ, चीतै चौगुण जंग ॥ १८ ॥

(पे कलालिन ! तैने यह क्या घोखा दिया । शय्यासुख का कुछ भी तो जानन्द नहीं रहा । वे तो तेरे वड़िया शराब से मस्त हो कर भी युद्ध का ही अधिकाधिक स्मरण करते हैं ।)

भड़ घोड़ा महंगा थिया, एकण फाट उडंत ।

भड़ घोड़ां रा भावणा, जेथ जुड़ीजै कंत ॥ १९ ॥

(एक ही बार की मुठभेड़ में सुभट और घोड़े महंगे हो गये । क्यों न हो, जहां मेरे कन्त जा भिड़े कि घोड़ों और बहादुरों की फुट्र होने लग जाती है—उनकी बलैयां ली जाने लगती हैं ।)

दमंगळ विण दुमनो रहै, जड़ै न कंगळ जंत ।

सखी बधावौ त्यां भड़ां, जेथ जुड़ीजै कंत ॥ २० ॥

(युद्ध के बिना वे उदास रहा करते हैं और कवच की कड़ियां भी नहीं बंद करते । अतः सखि ! हमें तो उन बहादुरों को बधाना चाहिये जो प्रियतम से आ मिटें ।)

मूटै हाकै हुलसता, पीव बधाईदार ।

जागो सिव सांचौ कियौ, पूमै मंगळ बार ॥ २१ ॥

(प्रियतम ! यों ही कोई शोर सुनकर आप को युद्ध देने की वधाई देने वालों से आप प्रसन्न होते थे । किन्तु आज तो शंकर ने वह सत्य ही कर दिया—द्वार पर हाथी घूम रहे हैं, जानिये ।)

आज सबेळौ जागणौ, कसियौ चर तोखार ।

प्यारा मिलिया पाहुणा, मिजमानी री वार ॥ २२ ॥

(क्या कारण है आज आप जल्दी ही जाग उठे और साईस ने भी घोड़ा तय्यार कर डाला ? किन्तु ओह ! अब श्रात हुआ, प्रिय अतिथि (शत्रु) आ पहुँचे हैं जिनकी खातिरदारी आप को इस समय करना है ।)

सुणतां हाकौ सहज ही, कीधी जेज कधी न ।

नौदाळ अव छोडणा, भोडणा कुच पीन ॥ २३ ॥

(मामूली कोई शोर सुन कर भी जा पहुँचने में आपने कभी देरी न की । फिर अब युद्ध का केलाहल सुन कर तो हे निद्रालु ! इन दवे हुए पीनस्तनों को छोड़ ही दोगे ।)

पूजाणौ गजमोतियां, मींढाणौ कर मूझ ।

वीजाणौ घण चामरां, हें चूडौ बळ तूझ ॥ २४ ॥

(पतिदेव ! गजमुक्ताओं से जिसकी पूजा हुई है, जिस पर खूब ही चंवर दुले हैं और जो मेरे हाथ में सुशोभित है वह चूड़ा आप का बल है—सहायक है ।)

कर पुचकारे घण कहै, जाण घणी री जैत ।

नीराजण बाधावियौ, हं बळिहार कुमैत ॥ २५ ॥

(अपने पति की विजय सुन पत्नी पति के घोड़े की आरती उतार कर और अपने हाथ से थपथपा कर कहती है कि कुमैत (घोड़े) ! तुझ पर बलिहारी हूँ ।)

जंग नगरां जाण-रव, आण धगरां अंग ।

तंग लियंतां तंडियौ, तोनै रंग तुरंग ॥ २६ ॥

(रणदुंदुभियों की आवाज़ सुनते ही शरीर में धीरस्फूर्ति लाकर तंग खिंचते हैं ही तू नाचने लग गया या बोल उठा, तुझे शाबास है ।)

हं बळिहारी राणियां, थाळ बनाणें दीह ।

वीर जमी रा जे जणै, सांकळहीटा सीह ॥ २७ ॥

(मैं उन रानियों के थाल बजवाने के दिन अर्थात् पुत्रप्रसव पर बलिहारी हूँ जो उच्छेलल सिंहों के-से यधुधा के वीरों का जन्म देती हूँ ।)

या किसी भावना या आदर्श के पुजारी थे ? मेरी नम्र सम्मति में यह कवि-समुदाय, ये सरस्वतीपुत्र किसी वर्ग के समर्थक नहीं थे, राष्ट्रदेव के उपासक थे । यदि राजपूतों को उन्होंने अपना प्रेमपात्र बनाया तो उस का कारण यही मालूम होता है कि मध्यकालीन भारत में राजपूत ही राष्ट्र की रक्षा-शक्ति के प्रतीक थे । यदि यह सही है तो क्या चारण जाति अपनी उपासना का रूप और क्षेत्र-राष्ट्रदेव के परिवर्तित स्वरूप के अनुकूल नहीं बनायेगी ? आज कोई वर्ग राष्ट्र नहीं है, सारी जनता राष्ट्र है । आज राजा मुख्य शक्ति नहीं, प्रजा प्रधान है । युगधर्म का तकाड़ा है कि चारण समाज इस शक्ति को जगावे और अपने पुराने देवताओं को, या तो इस नई देवी की उपासना में लगावे या उन्हें छोड़ दे । इसमें उसे त्याग करना पड़ेगा । शायद पहला त्याग 'त्याग' का ही करना पड़े* । मगर जो दूसरों के शब्द से स्फूर्ति देता है उसे अपने कार्य से भी उदाहरण पेश करना चाहिये ।

कवि और साहित्यकार नई सृष्टि नहीं बनाते । वे तो युगों के अनुभव को और खास तौर पर युगधर्म को भावों के रूप में इस तरह पेश करते हैं कि वह जनता के हृदय पर अमिट रूप से अंकित हो जाय और जो महापुरुष या महाशक्ति युगविशेष का निर्माण करते हों उनका सन्देश व्यापक और कार्यपरिणत हो जाय । कवि किसी उम्र के देते

नहीं, प्रसारित करते हैं । तो फिर चारण समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के प्रचारक क्यों न बनें ? वे अनेक को एक के लिये जीने का समर्थन न करके एक को अनेक के लिये जीने की प्रेरणा क्यों न करें । वे राजपूतों को जापानी समुराई (जापान के जागीरदार सरदारों) का मार्ग क्यों न दिखावे ? वे राजस्थान की पीड़ित, मूर्च्छित और निराश प्रजा में आशा, जीवन और स्वाभिमान को क्यों न जगावे ?

यदि हम आस्तिक हैं तो अवतार-सिद्धान्त को मानते हैं । मेरी विनीत सम्मति में महात्मा गांधी आधुनिक काल के चैसे ही महापुरुष हैं । उन्होंने सामूहिक अहिंसा का एक नया सन्देश भारत को और उसके द्वारा जगत् को दिया है । उन्होंने बताया है कि कूटनीति और शस्त्रास्त्रों के इस वैज्ञानिक संगठन में अत्याचार का सफल विरोध सीधे, सच्चे और अहिंसक अस्त्रों से ही हो सकता है । इस महान् आत्मा का यह महान् उद्देश्य धीरे धीरे किन्तु निश्चित रूप से पूरा हो रहा है । परन्तु हमारे राजस्थानी कवि-समाज ने इस उद्देश्य की पूर्ति में कितना सहयोग दिया है ? उस ने नवयुग के इस नवीन सन्देश का कितना प्रसार किया है ? बद्किस्मती से वह जिस प्रकार पुराने देवताओं से चिपड़ा हुआ है उसी तरह उस का पूजा अर्चा का सामान भी पुराना है । यदि चारण भाई इस नये अस्त्र, इस नई

* अ० भा० चा० सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन (पुष्कर क्षेत्र, सं० १९७८ वि०) में ही 'त्याग' के परित्याग का प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास किया गया और तदनुसार राजस्थान में यह नामशेष है ।

युद्धकला की दीक्षा राजपूत और राजस्थानी जनता को देने लग जायें तो आज जो मुर्दनी, काहिली और नाउम्मोदी इस वीरभूमि में चारों तरफ़ छाई हुई दीखती हैं वह शीघ्र दूर हो जायें, इस में मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं। यह नवधर्म खुद चारण जाति को भी सामाजिक दृष्टि से पूर्ववत् आदरणीय और स्वावलंबी बना देगा।

तो क्या चारण जाति असमंजस में है ? क्या उसे राजा और प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य में विषमता दीखती है ? क्या वह दो वफ़ादारियों के संघर्ष में किंकर्तव्यविमूढ़ है ? यदि ऐसा है तो सामंजस्य का मार्ग उस को कठिनाई को हल कर सकता है। वह शासक-समूह को कर्तव्य की और शासित जनता को

अधिकार की शिक्षा देने लग जाय तो चारणों का, राजपूतों का और प्रजा का यानी सब का भला हो सकता है। यदि एक ओर वह राजाओं और जागीरदारों को समय की गति पहिचान कर प्रजासेवक बनने की प्रेरणा कर सके और प्रजाजनों में अन्याय का सक्रिय विरोध करने की भावना भर सके तो दोनों का उत्थान हो सकता है। यदि वह शासकों को प्रजा के हाथों में शासनभार सौंप कर निश्चिन्त हो जाने को राज़ी कर सके तो वह देश की ऐसी सेवा कर दे जिस की कहीं मिसाल न मिले और जो चारण जाति को इतिहास में सदा के लिये अमर कर दे। यदि वह इच्छा करेगी तो शक्ति मा 'करनी' दे देगी।



काव्य-कुंज



विधि-वैपरीत्य

(ले०-राजस्थान-केसरी कविवर ठा० श्री केसरीसिंहजी वारहठ, कोटा)

रोकत क्यों ना नृपन कौ, शुभचितक कहलात ।

जे पूछत यों हमहिकौ, सुनहु मर्म की बात ॥



राजनीति ओट, लिखि कहिकै बदल जावैं,
लोभ को प्रबंध कहि दीनजन चूसे जात ।

कृपण छिपावैं धनमोह कौ मितव्यय में,
निर्दयता न्याय, नाम क्रूरता, प्रभाव पात ।

देश काल-ज्ञान मानि, हनि कुलधर्म चैलें,
 डूबि खोटे व्यसन जतावैं दिल बहलात ।
 बहते विरुद्ध पौन महिप-मदांध-मौन,
 रोकै कौन ऐंचि रह्यो विधि-विपरीत हात ॥

देवजाति ?

(ले०-श्री मोतीसिंहजी रोहड़िया, बी० प्र०, जोधपुर)

स्वार्थ त्यागि सत्य कहने की शुभनीति छोड़ि-
 पेट पालने को, वान गही, जी हुजूरी है ।
 साहस नहीं है श्रम करके कमाई करें,
 भाइयों का हिस्सा खोसि खाने में गछूरी है ।
 विधवा-अनाथों पर जुल्मकी न पूछो बात,
 अन्न-वस्त्र आदि की व्यवस्था भी न पूरी है ।
 दावा देवजाति का करत सकुचाओ 'सिंह' !
 अब ही तो आप में मनुष्यता अधूरी है ॥

वसन्त-विडम्बना

अनुचित स्वार्थ ने दवाया है विवेक सारा,
 देखो जहां तहां एक यही जयवन्त है ।
 चल पड़ी चारों ओर राजा-प्रजा ऐंचातान,
 प्रेमभाव रखनेकी बात में न तन्त है ।
 सुनते न अहंमन्य सर्व हितकारी बात-
 कहता पुकार कर जो कि गांधी सन्त है ।
 समझो भले ही सुखदायक वसन्त आया,
 देश-हित में तो अभी दुख का न अन्त है ।

होली

(ले०-श्री मोतीसिंहजी रोहड़िया, बी० ए०, जोधपुर)

भूखे पेट कई बिललाते लाल भारत के !

शिक्षा हेतु कितने गहत कर शोली है !

फिरें अधनंगी कई आर्थ ललनायें 'सिंह' !

मिले तन दांकने को ओढनी न चोली है !

ऐसी दीन हीन दशा बन्धुजन की-विसार,

मस्त भये भूमते हो सूक्ष्म ठठोलो है ! !

कौन गिपती है सूखी लकड़ी जलाना, जहां-

हृदय हजारों में हमेशा होत होली है ! !

कविराजा वाँकीदास*

[पाठ्याय रायबहादुर पं० श्री गौरीशंकर हीराचंद जोशा, अजमेर]

वीर-भूमि राजस्थान डिगल-भावा के कवियों की खान है। समय-समय पर वहाँ ऐसे कवि-रत्न उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने युद्धों के प्रसंगों पर ओजस्विनी रचनाओं द्वारा जादू का काम किया है। आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व मारवाड़ में एक ऐसे ही व्यक्ति का जन्म हुआ था, जो सच्चा कवि, इतिहास का मर्मज्ञ और साहित्य में उच्च कोटि का विद्वान् था। अतएव इस लेख द्वारा पाठकों के उक्त राजस्थान के कवि-रत्न का यत्किंचित् परिचय कराया जाता है।

चारणों का राजपूतों में दीर्घ काल से बड़ा मान चला आ रहा है। सच पूछा जाय, तो क्षत्रियों की धीरता को जीवित रखनेवाले भी ये ही लोग रहे हैं। यही कारण है कि राजस्थान में इन लोगों को बड़ी-बड़ी जागीरें मिली हुई हैं। इस लेख के चरित्र नायक कविराजा वाँकीदास का जन्म चारण-जाति के आसिया-कुल में, वि० सं० १८२८ (ई० सन् १७७१) में, जोधपुर-राज्य के पंचमदरा-परगने के भौडियावास-गाँव में, हुआ था। अपने पिता से कविता का सामान्य ज्ञान प्राप्त

* 'सुधा' मासिक पत्रिका की धावण, ३१३ तु० सं० की संख्या में प्रकाशित यह लेख, लेखक महोदय की आज्ञा से यहाँ मुद्रित किया जाता है।

—सहकारी सम्पादक, हिंदी विभाग

कर वि० सं० १८५४ (ई० सन् १७९७) के लगभग वह जोधपुर गये। वहाँ निरंतर पाँच वर्ष तक भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से भाषा के काव्य-ग्रंथ, व्याकरण में सारस्वत और चंद्रिका, साहित्य में कुवलयानंद तथा काव्य प्रकाश आदि ग्रंथों का अध्ययन कर हिंदी-भाषा के काव्य-ग्रंथों द्वारा विस्तृत ज्ञान-वृद्धि की।

उस समय मारवाड़-राज्य के सिंहासन को महाराजा मानसिंह सुशोभित करते थे, जो विद्या-रसिक, काव्य-प्रेमी और कवियों के आश्रय-दाता थे। वि० सं० १८६० (ई० सन् १८०३) में वाँकीदास को पहुँच उक्त महाराजा के पास हुई। उनकी अद्भुत कवित्व-शक्ति, सत्य-वादिता और निर्भीकता आदि गुणों से मुग्ध होकर प्रथम अवसर पर ही उक्त गुणग्राही महाराजा ने उनको लाख-पसाव नामक पारितोषिक देकर अपने राजकवियों में स्थान दिया। महाराजा मानसिंह स्वयं कवि थे। उन्होंने अपनी ज्ञान-शक्ति का विकास करने के लिये वाँकीदास से साहित्य के ग्रंथों का पढ़ना आरंभ किया, और उसमें शीघ्र ही अच्छी गति प्राप्त कर ली। महाराजा ने उनके 'कविराजा' को उपाधि, ताज़ीम, पाँच में सेना और बाह्यपसाव आदि से सम्मानित किया, तथा कागज़ों पर लगाने के लिये मोहर (मुद्रा) रखने का मान दिया, और उसमें उनके अपना शिक्षा-गुरु होने के वाक्य खुदवाने की आज्ञा दी, जो नीचे लिखे अनुसार है—

“श्रीमन् मान धरणिपति बहु गुण-रास,
जिन भाषा गुरू कीनी वाँकीदास।”

शरीर स्थूल होने के कारण कविराजा वाँकीदास को चलने-फिरने में कठिनाई होती थी, और वृद्धावस्था में वह पैदल चलने में असमर्थ हो गये थे। वह जब जोधपुर के किले में जाते, तो जहाँ तक सवारी जाती है, वहाँ तक पालकी में बैठकर जाते, उसके आगे कहार तथा छोटे नौकर उनके लफड़ी के पाटे पर बिठाकर ले जाते थे। ज्यों ही उनका पाटा महाराजा मानसिंह के सामने पहुँचता, त्यों ही महाराजा खड़े होकर उनके ताज़ीम देते और वह पाटे पर बैठे हुए ही महाराजा को विद्वद सुनाते थे।

वह डिंगल-भाषा एवं पिगल-शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता तथा आशु-कवि थे। उनकी धारणा-शक्ति इतनी प्रबल थी कि एक बार भी किसी केँ मुँह से कोई बात सुनते, तो उसके ज्यों-की-त्यों अपने मुँह से सुना देते थे। उनकी वीर-रस-पूर्ण कविता बड़ी चित्तकर्षक होती थी। उनका इतिहास-ज्ञान भी बढ़ा-चढ़ा था। एक बार ईरान का कोई सरदार भारत-वर्ष की सैर करता हुआ जोधपुर पहुँचा, और महाराजा से मुलाकात होने पर उसने किसी इतिहासवेत्ता से बातचीत करने को इच्छा प्रकट की। इस पर महाराजा ने वाँकीदास को ही उपयुक्त समझ उस सरदार के पास भेजा। ईरानी सरदार उनसे मिलकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने उनके ऐतिहासिक ज्ञान की प्रशंसा लिखकर महाराजा के पास भेजी, जिससे महाराजा ने बड़ा गौरव समझा।

कविराजा बड़े स्वाभिमानी थे। एक समय महाराजा मानसिंह नेत्र-रोग से

पीड़ित हुए, और वह पीड़ा छः मास तक बनी रही। विवश होकर महाराजा ने आँखों को दूधित वायु से बचाने के लिये पर्दे के भीतर रहना स्वीकार किया, और राज्य के कर्मचारियों को अपने सामने बुलाना छोड़ दिया। उन दिनों राज-कर्मचारियों को महाराजा से कोई बात कहनी होती, तो वे पर्दे के बाहर बैठकर निवेदन करते थे। उस अवसर पर एक दिन महाराजा को कविराजा की आव-दयकता हुई। दो-तीन बार नौकर भेज उनके हाज़िर होने के लिये कहलाया, किंतु प्रत्येक बार उन्हें ही वीमार होने का बर्हाना किया। तब उनके पुत्र ने उनके महाराजा के अप्रसन्न होने का डर दिखलाकर महलों में जाने का आग्रह किया। इस पर उन्होंने पर्दे के बाहर बैठकर महाराजा से बात करने में अपना अपमान होना प्रकट कर महाराजा के पास जाने से साफ़ इनकार किया। यह बात उस सेवक ने ज्यों-की-त्यों महाराजा से कह सुनाई। इस पर महाराजा ने उस सेवक को फिर भेजकर कविराजा को कहला भेजा कि यदि मेरी आँख की पीड़ा बढ़ जाय, तो कोई चिंता नहीं, पर आपका बाहर बैठकर बात नहीं कहूँगा। तब वह दरबार में गये। गुप्त-द्राहक महाराजा ने नेत्र की पीड़ा होने पर भी कविराजा को अपने सम्मुख बुलाकर बातचीत की।

महाराजा ने अपने राजकुमार छत्र-सिंह की शिक्षा का भार भी कविराजा पर छोड़ा था; किंतु कविराजा ने धुँयर के लक्षण देखकर जान लिया कि यह

अवगुणों का भंडार है, उस पर शिक्षा का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ेगा, इसलिये उन्होंने राजकुमार की शिक्षा देना छोड़ दिया। महाराजा मानसिंह को जब ज्ञात हुआ कि कविराजा राजकुमार की शिक्षा देने के लिये नहीं जाते, तब उन्होंने उनसे राजकुमार को न पढ़ाने का कारण पूछा। कविराजा ने कहा—“यह कुपूत है, इसको शिक्षा देकर मैं अपनी कीर्ति में बढ़ा लगाना नहीं चाहता।” आगे जाकर उनका कथन अक्षरशः टोक निकला, और महाराजा मानसिंह को छत्रसिंह के कारण बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ उठानी पड़ीं।

कविराजा की अद्भुत काव्य-कलर की प्रशंसा सुन मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह ने, जो काव्य के ज्ञाता थे, उन्हें उदयपुर बुलाकर विशेष रूप से उनका सम्मान करना चाहा, परंतु उन्होंने जोधपुर-नरेश के अतिरिक्त अन्य जगह से दान न लेने की प्रतिज्ञा कर ली थी, इसलिये महाराणा से प्रतिग्रह लेना अस्वीकार कर उसके लिये धन्यवाद-पूर्वक क्षमा-वाचना की।

कविराजा बड़े निर्भीक थे। एक बार जोधपुर में बहुत वर्षा हुई, और सूरसागर तालाब जल से परिपूर्ण हो गया। उस अवसर पर वर्षाक्रुत के आनंद को लट्टने के लिये महाराजा सपत्नीक सूरसागर गये, और कविराजा भी पालकी में बैठकर खाना हुए। मार्ग में जलानी सघारी जा रही थी, जिसके साथियों ने उनके टहर जाने के लिये कहा; किंतु उन्होंने महाराजा के नाराज़ होने की कुछ

भी परवा न कर कहा—“पैसी रानियाँ बहुत-सी जाती हैं।” जब सूरसागर पर जनानी सवारी पहुँची, और रानी ने बाँकीदास की धृष्टता का हाल महाराजा से निवेदन करना चाहा, तो महाराजा ने यह उत्तर दिया—“हम यहां आमोद-प्रमोद के लिये आये हैं, इसलिये जिस किसी को हमारे आनंद में बाधा उपस्थित करना हो, वही यहाँ अर्ज करे, नहीं तो जोधपुर लौटने के बाद जो कुछ अर्ज करना हो, करे।” फिर महाराजा जोधपुर लौटे, तब रानी ने कविराजा की गुस्तारी की बात महाराजा से कह सुनाई। इस पर महाराजा ने उत्तर दिया—“यदि मैं चाहूँ, तो आप-जैसी बहुत रानियाँ ला सकता हूँ, परंतु ऐसा दूसरा कवि मुझको नहीं मिल सकता। इसलिये अब इस विषय में मौन धारण करना ही अच्छा होगा।” इस पर वह चुप हो गई।

, महाराजा मानसिंह के पूर्व जोधपुर की गद्दी पर उनके चचेरे भाई भीमसिंह थे। भीमसिंह ने गद्दी पर बैठते ही अपने कई भाई-भतीजों को मरवा डाला था। इस कारण महाराजा मानसिंह वहाँ से भागकर जालोर में, जो वचाव के लिये सुरक्षित स्थान था, जा बैठे। उनको वहाँ से निकालने के लिये महाराजा भीमसिंह ने सिंधवी इंद्रराज को सेना देकर भेजा, जिसने जालोर के किले को घेर लिया, और मानसिंह को यहाँ तक तंग किया कि वह विवश होकर किले से निकल जायें। उक्त किले में जलंधरनाथ का एक स्थान था। वहाँ के आयस (कनफड़ानाथ) देवनाथ ने उनसे कहा—“यदि आप छः

दिन और इस किले में रह जाओगे, तो यह आपके हाथ से कभी न निकल सकेगा, और आप मारवाड़ के स्वामी होकर जोधपुर पहुँचोगे।” इन वाक्यों पर उनका दृढ़ विश्वास हो गया, और अनेक आपत्तियाँ सहने पर भी उन्होंने जालोर के किले को न छोड़ा। इन्हीं दिनों जोधपुर से महाराजा भीमसिंह के देहांत हो जाने का समाचार इंद्रराज को मिला। जोधपुर का तमाम सैनिक-बल इंद्रराज के अधिकार में था, इसलिये उसने सोचा, यदि कोई दूसरा गद्दी पर बैठ गया, तो सरदार उसे अपने क़ाबू में कर लेंगे; और मानसिंह की गद्दी पर बिठाया जाय, तो वह अपने हाथ में रहेगा, और उस पर यह बड़ा उपकार का काम होगा। निदान, उसने महाराजा मानसिंह की यह सूचना, देकर बिना संकोच उन्हें जोधपुर चलने के लिये कहलाया, परंतु उन्हें विश्वास नहीं हुआ। अंत में जब उन्हें निश्चित रूप से भीमसिंह की, मृत्यु का हाल पता हुआ, और उनके विरुद्ध होनेवाले पड़-पड़ का भय मिट गया, तब वह जालोर से आकर जोधपुर के सिंहासन पर आरुढ़ हुए। इसके बाद महाराजा ने आयस देवनाथ की भविष्यवाणी को स्मरण कर उसको अपना गुरु बनाया, जिससे नायों का उपद्रव बहुत बढ़ा; परंतु महाराजा सदा उस बात की उपेक्षा ही करते रहे। अंत में नायों के उपद्रव से तंग होकर सरदारों ने आयस देवनाथ को अमीरख़ा पठान के द्वारा मरवा डाला, और कुँवर छत्रसिंह को महाराजा के हाथ से राज्याधिकार दिलवा दिया।

इतना ही नहीं। कुँवर को चांपासनी के वल्लभ-सेप्रदाय के गोसई द्वारा मंत्रोप-देश दिलवाया, जिससे वहाँ कनकड़ों का प्रभाव हटने लगा। उस समय कविराजा ने महाराजा के अवसन्न होने की कुछ भी परवा न कर नायों का निंदासूचक एक सवैया कहा, जिसका अंतिम चरण इस प्रकार है—

“मान को नंद गुविंद रटै;

तव... फटै कनकटन की।”

गुवराज छत्रसिंह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुआ, तदनंतर फिर राज्याधिकार महाराजा मानसिंह ने अपने हस्तगत कर लिया। नायों के बड़े पक्षाती होने के कारण उक्त महाराजा ने कविराजा के कहे हुए उक्त सवैया से चिढ़कर उनके दंड देना चाहा। महाराजा के क्रूर स्वभाव से कविराजा अपरिचिन न थे। इसलिये जो नेकर उन्हें बुलाने आया, उससे कहा कि मैं शक्ति होता हूँ, तुम चलो। किंतु वह महाराजा के पास नहीं गये, और तेज़ चलनेवाले उँद पर सवार होकर, मारवाड़ का परित्याग कर मेवाड़ चले गये। वहाँ पर उनका घेसा ही आदर रहा, जसा जोधपुर में था। महाराजा को कविराजा के मारवाड़ छोड़ देने पर बड़ा दुःख हुआ। अंत में उन्होंने बहुत कुछ अनुमय-विनय करके उनको फिर जोधपुर बुला लिया।

धायण सुदि ३, वि० सं० १८९०
(ई० सन् १८३३) को कविराजा का परलोक-वास हुआ। महाराजा मानसिंह

को उनकी मृत्यु पर बड़ा शोक हुआ, और निम्न-लिखित सोरठों में उन्होने अपने हृदयोद्गार प्रकट किये—

“सद्विद्या बहु साज,

वाँकी थी वाँका वसू।

कर सुधी कवरान,

आज कठीगो आसिया।

विद्या कुल विख्यात,

राज कान हर रहसरी।

वाँका तो विण बात,

किण आगळ मनरी कहाँ ॥”

कविराजा वाँकीवास रचित डिगल और ब्रजभाषा के छोटि-बड़े कई ग्रंथ हैं, और उनकी फुटकर कविताएँ और गीत तो अनेक हैं। महाभारत के कुछ अंश का हिंदी अनुवाद भी उन्होंने किया था, परंतु अभी तक वह अप्रकाशित ही है। ब्रज-भाषा के गंगालहरी आदि २४ ग्रंथों में से निम्न-लिखित ग्रंथ नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ने बालाबक्ष राजपूत-चारण-पुस्तकमाला में, दो भागों में प्रकाशित किये हैं।

पहले भाग में—(१) सूर-छत्तीसी, (२) सोह-छत्तीसी, (३) वीर-विनोद, (४) धवल-पद्मीसी, (५) दातार-बावनी, (६) नीति-मंजरी और (७) सुपह-छत्तीसी।

दूसरे भाग में—(१) वैसक-वातां, (२) माघ-डिया मिजाज, (३) कृष्ण-दूषण, (४) मोह-मर्दन, (५) चुगल-मुख-नपेटिका, (६) वैस-वातां, (७) कुकवि-वत्तीसी, (८) विदुर वत्तीसी,

(९) भुरजाल-भूषण और (१०) गंगालहरी ।

अप्रकाशित—(१) झमाल, (२) जेहल-जस-जड़ाव, (३) सिधराव-छत्तीसी, (४) संतोष-बावनी, (५) सुजस-छत्तीसी, (६) बचन-विवेक-पच्चीसी और (७) कायर-बावनी । +

कविराजा बाँकीदास की कविता डिंगलभाषा में प्रायः वीर-रस-पूर्ण हुआ करती थी, जिसका राजपूताने में बड़ा सम्मान है, किंतु समय-समय पर उन्होंने अपनी कविता में अन्य रसों का भी प्रयोग किया है । कहते हैं, जयपुर और जोधपुर के महाराजों के आपसी के वैर को मिटाने के लिये महाराजा मानसिंह ने अपनी कन्या का विवाह जयपुराधीश

जगत्सिंह के साथ तथा जगत्सिंह ने अपनी बहन का विवाह मानसिंह के साथ कर दिया था । उस समय हिंदी के प्रसिद्ध कवि पद्माकर और बाँकीदास के बीच काव्य-चर्चा हुई, जिसमें बाँकीदास ने बाजी मार ली । उनकी डिंगल-भाषा की कविता ओज-पूर्ण, प्रसाद-गुण-युक्त, उत्कृष्ट एवं सुधरी हुई होती थी । उनका ऐतिहासिक ज्ञान भी अगाध था । मेरे संग्रह में उनकी लिखी हुई अनुमानतः २८०० ऐतिहासिक बातों का संग्रह है, जो अब तक अप्रकाशित है । वह संग्रह केवल राजपूताने के इतिहास के लिये ही उपयोगी है । इतना ही नहीं, किंतु राजपूताना के बाहर के राज्यों तथा मुसलमानों के इतिहास की भी उसमें कई बातें उल्लिखित हैं * ।

डिंगल साहित्य में हास्यरस

[ले० भैरव उदयसिंह दधिवाड़िया, एम० ए०, एल-एल० बी० (प्रीवियस),
हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सबसे आदि काल और बड़ा ही महत्वशाली समय 'वीर-गाथा-काल' गिना जाता है । उस समय केवल डिंगल साहित्य का

+ अभी कुछ मास पूर्व उक्त सभा की ओर से 'बाँकीदास-ग्रंथावली' का तीसरा भाग प्रसिद्ध हुआ है, उसमें 'रूपण-पच्चीसी' एवं 'हमरोट-छत्तीसी' नामक अन्य दो ग्रंथों के साथ ये सातों ग्रंथ दिये गये हैं । -सम्पादक, गुजराती विभाग

* कविराजा बाँकीदास के पौत्र मुरारिदान साहित्य के विद्वान् और अच्छे कवि थे । जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (दूसरे) के नाम पर उन्होंने अलंकार का भाषा में 'जसवंतजसोभूषण' नामक बृहद् ग्रंथ रचा । उनकी योग्यता आदि सद्गुणों से प्रेरित हो अँगरेजी सरकार ने उनको महामहोपाध्याय का खिताब दिया था ।
—लेखक

ही पूर्ण बोलवाला था और अन्य साहित्य तो केवल नींव में सोते हुए से जात होते थे। ठीक वह समय ही ऐसा था जब चारों ओर चारण लोग सबसे अधिक पूज्य समझे जाते थे। उस काल में केवल वीर रस-युक्त कविता की ही गुंज हो रही थी। और इस वीररस-युक्त कविता के निर्माता थे चारण कविगण। वह समय ऐसा था जबकि क्षत्रियों की तलवारें चारों दिशाओं में चमचमा रही थीं। उस समय के चारण कवियों की वाणी में भी वह शक्ति, वह ओज, वह उल्लास, वह चमत्कार और वह जोश था जो मुर्दे में जान डाल देता था, कायर को वीर में परिणत कर देता था और क्षत्रियों को तलवार पर नाच नचाता था। अतः क्षत्रिय गण चारण कवियों को हर समय अपने साथ रखते थे जिससे वह अपनी ओज-स्विनी कविताओं द्वारा रणक्षेत्र से भागी हुई सेनाओं में भी पुनः जोश का संचार कर देते थे। ये चारण कविगण केवल वीरता पूर्ण कविता से ही लोगों को प्रभावित नहीं करते थे परन्तु स्थायी भी वीरता से लड़ कर क्षत्रियों के लिये-देश और जाति के लिये-मर मिटते थे। अतः वह समय ही चारण जाति के उन्नति का उच्चतम शिखर समझ लीजिये।

परन्तु "सर्व दिन रहत न एक समान" ! समय ने धीरे २ पलटा खाया। डिंगल साहित्य का वह स्वर्णयुग बीत चला। अन्य साहित्यों के भी अंकुर निकलने लगे। तलवारों की चमचमाहट रुक गई, युद्ध शान्त हो गये और क्षत्रिय लोग विलासिता के गहरे कूप में जा गिरे ! ऐसी परिस्थिति में भला चारण कविगण काल की चपेट से कैसे बच सकते थे ? उन्होंने अपनी कविता में शृंगार रस का प्रधानता देना प्रारम्भ कर दिया।

तदनन्तर "Old order changeth yielding place to new" इस अंग्रेजी उक्ति के अनुसार चारण कवि इस से भी ऊब चले। फिर क्या था ? अन्य रसों पर भी वे समय-समय पर कविता करने लगे। प्रस्तुतः लेख में उनमें से केवल हास्यरस का ही दिग्दर्शन हम पाठकों को कराते हैं।

हास्य मनुष्य-जीवन के लिये बड़ी उपयोगी वस्तु है। उसके बिना संसार में जीवन नीरस प्रतीत होता है। इसके द्वारा मुरझाये हुए हृदय भी फिर से खिल उठते हैं, खैर। देखें, डिंगल की हास्य रस-युक्त कविता के शोड़े से उदाहरणों से भी पाठकों के हृदय-कमल खिल उठते हैं या नहीं।

अच्छा, पाठक धृन् ! आपने एक साथ ही दशमुख वाले राजा रावण का नाम तो सुना ही होगा। अब जरा उसके जन्म काल की एक छोटी-सी घटना को भी सुन लीजिये।

"राना रावण जनमियो, दस मुख एक शरीर ।

जननी ने सांसो भयो, किण मुख पालूं खीर ॥"

रावण का जन्म होने से माता को बड़ी प्रसन्नता हुई परन्तु साथ ही उस का एक तो शरीर और मुँह दश देख कर बड़े भारी संशय में पड़ गई कि अब स्तनपान किस मुँह से करावे ?

यदि आपने स्त्रियों की अजीब बातों को कभी न सुना हो तो अब सुन लीजिये। पति के घर लौट आने पर उसकी स्त्री अपनी सखी से घर की दशा का वर्णन कर रही है और कहती है—

“साजन आया है सखी ! ज्यां की जोती बाट ।

थांभा नाचें, घर हँसै, खेलण लागी खाट ॥”

याह ! हृद कर दी। खम्भे भी कभी नाचते होंगे। घर भी भला हँसने वाला पदार्थ है और आपने कभी खाट को भी खेलते हुए देखा है !

इसी प्रकार पुत्री के सयानी होने पर पिता उसके विवाह की चिन्ता कर ही रहा था कि पुत्री चट से बीच ही में बोल उठी—

“बाबा मत देइ मारवां, बर कुंवारि रहेस ।

हाथ कचोळो सिर धड़ो, सिंचंती ही मरेस ॥”

हाय ! गजब हो गया ! घचार समस्त मारवाड़ियों को क्यों ही रहना पड़ेगा। फलिगुण आ गया। लड़कियाँ विवाह के लिये अपनी पसंदगी-नापसंदगी जाहिर करने लग गईं। याह ! फ्यारी लड़कियों का मारवाड़ियों पर इतना अन्याय। वे फ्यारी रह जायेंगी परन्तु मारवाड़ में विवाह नहीं करेंगी। यदि पेसा करे तो पानी ढोते-ढोते मर जायें। याह रे ! मारवाड़ देश। लड़कियाँ तक घृणा करती हैं। खेर !

क्या आपके मालूम है आजकल साधुओं की संख्या दिनोंदिन क्यों बढ़ती जाती है ? देखिये, साधु हो जाने पर तो मनुष्य को कई लाभ होते हैं—

“मूंड मुंडायां तीन गुण, मिटी टाट री खान ।

बाबा बाज्या जगत में, मिळ्यो पेटभर नाज ॥”

लाम नम्बर एक, सिर के बाल सकाचट हुए और बस, खोपड़ी की खुजली मिटी। लाम नम्बर दो, जो कोई उन्हें देखे यह चिल्ला उठता है “बाबा जो महराज !” नहीं तो कैसे कौन पूछे ? और लाम नम्बर तीन यह है कि भरपेट भोजन बैठे-बिठाये मिल जाता है ! इसी प्रकार—

“चेला लावे मांग कर, बैठा सावै मंघ ॥

राम भजन तो नाम है, पेट भरण रो पंघ ॥”

चेले तो दर-दर भटक कर मांग लाते हैं और महन्तजी का तो सिद्धान्त है ही कि ‘राम नाम जपना, पराया माल जपना।’ इस तरह नाम तो राम भजन का है और काम है पेट भरने का।

पाठक धृन् ! देखिये, जो लोग शरीर में थोड़ा सा भी बर्द्ध होने पर अपनी दुर्बलता जता कर तरो-ताज़ा पकवान खाने की इच्छा करते हैं, उनके विषय में चारण कविवर कृपारामजी क्या कहते हैं—

“घोचो लागां घाव, धी गेहूं भावे घणा ।

अहड़ा तो अमराव, रोट्यां मूधा राजिया ॥”

हे राजिया ! ऐसे उमराव सिर्फ़ रोटी कपड़ा देकर रखे जायँ तो भी मंहंगे हैं । ईश्वर बचावे ऐसे नौकरों से !

अच्छा, अब ज़रा मारवाड़ की रेलगाड़ी (Jo Ro) की भी सैर कर लीजिये—

“नहीं तार नहि टैम है, नहीं बत्ती में तेल ।

आ चालै मन रे मते, मारवाड़ री रेल ॥”

वाह ! अज़ीब रेलगाड़ी है । न समय का ही कुछ खयाल है, न तार का ही पता है और उसकी रोशनी तो बस अंधेरे से भी गई बीती है । और इच्छा-नुसार चलती ऐसे है जैसे कोई दृढ़ पार बढ़ाता हो । ईश्वर ऐसी रेलगाड़ियों से दूर ही रखे !

अब ज़रा बेचारे हूँदाड़ देश को भी देख लीजिये—

“गाजर मेवो कांस खड़, पुरख जु पून उघाड़ ।

ऊंधा ओज़र अस्तरी, अइ हो धर हूँदाड़ ॥”

वाह रे हूँदाड़ देश ! तेरी अब क्या प्रशंसा करें ! मेवे के नाम पर तो गाजर पैदा होती है और घास ईश्वरने कांस जैसी पैदा की । और वहाँ के खी-पुरुषों का तो कुछ पूछिये ही मत । उलटे पेटवाली चन्द्रवदनियां और पुरुष अधजंगे । वाह ! खूब जोड़ी मिली है—

परंतु अब इस थरादरी देश की औरतों को तो देखो—

“गागरपेटी गदचली, खीच अनोधा साय ।

नार हिंडवा नीपनै, वाह ! थरादरी-वाय ॥”

सचमुच, इन गागर सदश पेटवाली पत्नियों के आगे बेचारे हूँदाड़ की ओंधे पेटवाली कामिनियों पानी भरती हैं । इन्होंने अपनी गदही सदश चाल के द्वारा अन्य देशों की हंस-गमनियों का गर्व उतार दिया है । इतना ही नहीं, यदि पतिदेव की आर्थिक स्थिति सामान्य है तो इनके दो-दो हंडी खीच के आहार की व्यवस्था हो नहीं हो सकती ! वाह थरादरी देश ! तेरी संतति ने तो सबसे आगे बाज़ी मार ली !

पाठक धृन् ! अब ज़रा आते-जाते अकाल का वर्णन सुन लें—

“पग पूंगळ घड़ कोटड़े, वाह वायड़मेर ।

फिरतो फिरतो धोकपुर, ठावो जैसठमेर ॥”

वस, समझ जाइये कि पूंगल में तो इसके पैर जमे ही रहते हैं और कोटड़े की तरफ भी आंख लगी रहती है ही, खैर। बाइमेर को भी किसी तरह फंसा लेता है। बोकानेरकी ओर तो समय-समय पर घूमने निकल जाता है। और यदि खास उसका अड़ा ही घात करना हो तो जाइये सीधे जैसलमेर।

वस, पाठक वृन्द ! अब बहुत हो चुका। अब तो आपके मुखारविन्दों से बिखरे हास्य-पुष्पों को बंदोर कर लेख समाप्त किये देते हैं। किन्तु आपको यह तो ज्ञात हो ही गया होगा कि चारण कविगण केवल वीर या शृंगार आदि एक-दो रस-युक्त कविता करने में ही सिद्धहस्त नहीं थे, जैसा कि कुछ लोग मानते हैं, परन्तु अन्य रसों पर भी कविता सफलता पूर्वक कर सकते थे। इस बात का प्रमाण डिंगल-कवियों के प्राचीन ग्रन्थों की खोज करने पर प्रत्यक्ष मिल जाता है। परन्तु इस प्रकार की विभिन्न रस-युक्त कविता अभी तक संसार की दृष्टि से एक प्रकार से ओझल है, और इसका एक मात्र कारण यही है कि डिंगल के प्राचीन ग्रन्थ हस्तलिखित अवस्था में ही चारण सरदारों के घरों में पड़े हुए दीमकों और चूहों की भोजन-सामग्री बन रहे हैं। अतः प्रत्येक जाति-हितैषी व साहित्य-प्रेमी चारण-का कर्त्तव्य है कि, डिंगल साहित्य के निर्माता प्राचीन चारण कवियों के इस प्रकार के अप्रकाशित और हस्तलिखित ग्रन्थ अपनी-अपनी सुनहली तिजोरियों में से निकाल कर प्रकाशित करावे और उनमें से भिन्न भिन्न रसों की कविताओं का संग्रह करके उन पर सुन्दर लेख लिख कर "चारण" में प्रकाशित करावे; और अपने पूर्वजों का गौरव संसार को ज्ञात करावे। आशा है, "चारण" में "चारण-वाणी" विभाग खुल जाने से प्राचीन चारण कवियों के फुटकर गीत, कवित्त, पद्य आदि अब प्रकाशित हो कर साहित्य-प्रेमियों को भिन्न-भिन्न रसों का रसास्वादन करायेंगे और डिंगल साहित्य के गौरव को संसार के सम्मुख रखेंगे।

सम्पादकीय टिप्पणियां

शोक-सम्वाद—

यह वास्तव में दुष्ट संयोग ही की बात है कि इस पत्र के प्रथमांक में जाति के अद्वितीय विद्वान् एवं सम्मेलन के अनन्य प्रेमी ठाकुर किशोरसिंहजी धारहट के स्वर्गवास का जिक्र छपा और इस द्वितीय अंक में सम्मेलन एवं जाति के दो हितैषियों-ठाकुर रघुनाथ दानजी बीरु (देशनोक-बोकानेर) व ठाकुर शंकरदानजी वणसूर (पोरलाड-मारवाड़) के दुःखद निधनका सम्वाद देना पड़ता है!

उक्त स्वर्गवासी सज्जनों में से प्रथम अ० भा० चा० सम्मेलन के संस्थापकों में से एक कहे जा सकते हैं। यह ठीक है कि सम्मेलन की स्थापना का विचार

जिन लोगोंने किया उनमें वे नहीं थे परंतु उस विचार का अमल में लानेमें उनकी सहायता मुख्य थी।

सुना है रघुनाथदानजी साहिब अपनी बहुत ही साधारण स्थिति में कलकत्ता गये थे और देवानुकूलता से उन्हें वहाँ अच्छा आर्थिक लाभ हुआ। बाद में कदाचित् अपनी तन्दुरुस्ती ठीक न रहनेके कारण ही वे ज्यादातर देशनोक में ही रहने लग गये थे और अन्तमें वहीं अपना शरीर छोड़ा। इनसे साक्षात्कार का प्रथम लाभ सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन के समय देशनोक ही में प्राप्त हुआ था। उस अधिवेशन का तो प्रायः कुल ही व्यवहार उन्होंने उठाया था। उस समय एकत्रित जातिका आतिथ्य बड़ी निरभिमानवृत्ति से करके वे अपना अहोभाग्य मानते थे। वे बड़े सरल, मितभाषी और उदार स्वभाव के जातिहितैषी सज्जन थे। देशनोक में अब उनका-सा और भी कोई जातिहितैषी सज्जन है इस का पता तो परिचय प्राप्त होने पर ही लगेगा।

ठाकुर शंकरदानजी वणसर भी सम्मेलन के बड़े प्रेमी थे। राजकोट अधिवेशन के अलावा शायद ही कोई ऐसा अधिवेशन हो जिस में वे शरीक न हुए हों। बड़े हंसमुख और मिलनसार सज्जन थे। बृद्ध होते हुए भी सुधारक विचारों के थे। जोधपुर अधिवेशन में उन्होंने सम्मेलन के प्रतिवर्ष कुछ निश्चित आर्थिक सहायता अपनी ओर से मिलती रहने की उदार प्रतिज्ञा भी की थी।

जनदम्बा सा करनी उक्त दोनों आत्माओं को शान्ति, उनके परिवार को धैर्य एवं सन्तान को उनका-सा ही जातिप्रेम व उदारता रखने की सुबुद्धि प्रदान करे।

बड़े मुँह छोटी बात—

गत अक्टूबर मास के अन्त में बड़ौदा राज्य के भादरण नामक स्थान पर 'बड़ौदा राज्य-प्रज्ञामंडल' के अध्यक्षद्वय से देशपूज्य सरदार पल्लभभाई पटेल ने दो बड़े ओजस्वी एवं मार्मिक-व्याख्यान दिये थे। बड़ौदा जैसे उन्नतिशील राज्य के भी वर्तमान शासन ने सरदार को सन्तोष नहीं और इसलिये उन्होंने राज्य प्रबंध की कड़े शर्तों में आलोचना कर प्रज्ञा के शासन सुधार के लिये स्वावलम्बन की काफी उत्तेजना दी थी। इसी अवसर पर उन्होंने अपने बंधावों के भाषण में 'सयाजीविजय' नामक बड़ौदा के राजकीय समाचार पत्र की आलोचना करते हुए घेवार चारणों पर-और सों भी पुराण काल के चारणों पर व्यंग्यवाण छोड़ दिया। सरदार महेन्द्रय के प्रसंगवश स्मृति ने आजकल के चारणों की इस अतिशयोक्ति पूर्ण प्रसिद्धि की आँखें हो गयी कि वे झूठी तारीफें करते हैं, परंतु व्यंग्य कर दिया पुराणकालीन सत्यसंघ चारणों पर। चारणों की आज कल की हालत पर कुछ कह दिया गया होता तो इतना दुःख न होता परन्तु उनके पूर्वजों के लिये पैसे, 'बड़े मुँह छोटी बात' जानकर चारणों का विशेष दुःख हुआ है। हमें

विश्वास है कि सरदार महेन्द्र ने इरादतन या तिरस्कार भाव से कुछ नहीं कहा। परन्तु उनके जैसे सर्वमान्य देशनेता के मुँह से एक विशिष्ट जाति के संबंध में भ्रमात्मक उद्गार निकले तो उस जाति के व्यक्तियों को दुःख होना स्वाभाविक है। सरदार महेन्द्र की जानकारी के लिये चारणों की पुराण कालीन एवं मध्य कालीन स्थिति के संबंध में शास्त्रीय एवं ऐतिहासिक प्रमाणों के साथ विस्तृत कुछ लिखने का न तो अभी स्थान है और न उस को देखने का शायद सरदार महेन्द्र का समय। अतः विश्ववन्द्य महात्मा गांधीजी के, अभी कुछ ही समय पूर्व (ता० १४-१०-'३७) चारण जाति के संबंध में लिखे हुए शब्द ही यहाँ उद्धृत कर हम आशा करते हैं कि सरदार महेन्द्र इस जाति के प्रति भी सद्भाव बनाये रखने की कृपा करेंगे—

“...चारणो भले देव कोडिना हो के न हो, परन्तु मनुष्य कोडिना तो छे ज; ने एक चेछाप तेजोमां भारे शक्ति हती. ए आज पण अज्ञान कूपमांथी नोकळीने फरी प्रकटायी शके छे.”

यदि सरदार महेन्द्र को थोड़ा-सा भी समय हो तो “चारण” के प्रथम किं पृष्ठ १३ (गुजराती भाग) पर उद्धृत गुजराती भाषा के आधुनिक महाकवि श्री नानालाल दलपतराम पम० प० का व्याख्यान, और इस अंक में प्रकाशित चौधरी श्री रामनारायणजी का लेख चारण जाति की प्राचीन एवं अर्वाचीन स्थिति की कुछ जानकारी के लिये सरसरी नज़र से अवलोकन कर लेने की प्रार्थना है।

श्री भूपाल चारण छात्रालय—

उदयपुर के श्री भूपाल चारण छात्रालय के प्रबंध को शिकायत अरसे से है। इस समय भी हमारे पास एक विस्तृत संवाद, इस विषय का पड़ा हुआ है। किन्तु उसे हम इस आशा से प्रकाशित नहीं कर रहे हैं कि छात्रालय के वर्तमान प्रबंधक (सैक्रेटरी साहिब) हमारे निवेदन पर ही ध्यान देकर तदनुसार कार्यवाही करने की कृपा करेंगे जिस से फिर किसी को कोई शिकायत शायद न रहेगी।

छात्रालय के संबंध में अक्सर रसद वाले के हिसाब को साफ करने की, लड़कों की समुचित देखभाल की या लड़कों और सुपरिटेण्डेंट की अनबन की शिकायत सामने आती है। हमारी नम्र सम्मति में इसका मूल कारण यह है कि इस प्रकार के सार्वजनिक कार्यों का संचालन जिस प्रणाली से दुनिया भर में होता है उसका यहाँ अभाव है। ऐसे कामों की व्यवस्था में हर जगह यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि जिनके हाथ में कार्यसंचालन का भार हो उन में प्रधानता ऐसे लोगों की होनी चाहिये जो ऐसे कार्यों से दिलचस्पी रखते हों, अपनी आपसी रंजिशों के ऐसे कामों के समय तो हृदय से दूर रखें (होना तो यह चाहिये कि जिनका परस्पर मनमुटाव हो ऐसे लोग ऐसे कार्यों से दूर ही रहें क्योंकि

रागद्वेष की वृत्तियों पर काबू रखना बड़ा मुश्किल होता है) और जो अपना समय ऐसे कामों के लिये सहर्ष दे सकें। परन्तु इस छात्रालय के प्रबंध में, प्रधानता इस विचार की है कि अमुक ठाकुर साहिब ही छात्रालय संबंधी चर्चा में भाग लेने के अधिकारी हैं। और इस विचार की प्रधानता का कारण शायद यही है कि इन साहिबान में से अधिकांश को प्रथम तो ऐसी चर्चाओं में भाग लेने का अवकाश सुरादेवी की आराधना आदि के सबब से मिलता ही नहीं और यदा कदा मिल भी गया तो वे हाँ में हाँ मिला देने के सिवाय किसी वहस मुवहिसे की तकलीफ़ करके तकलीफ़ नहीं पहुँचाते। उदयपुर में मौजूद मिलनेवाले उत्साही युवकों को ऐसे मौकों पर बुलाना आवश्यक नहीं समझा जाता। यही मनोवृत्ति है जो सब खराबियों की जड़ है। सार्वजनिक काम में भी एकाधिपत्य की भावना रखना, प्रकारान्तर से यही सिद्ध करता है कि उस काम का चलाना-जैसा चाहिये वैसा चलाना मंजूर नहीं। यही बातक मनोवृत्ति थी कि जिस के परिणामस्वरूप छात्रालय-भवन का उतना झगड़ा पड़ा था—झगड़ा ही क्या यदि वर्तमान मेवाड़ेश्वर की न्यायप्रियता का उदार आश्रय न मिलता तो इस बातक मनोवृत्ति के कारण मेवाड़ी चारण जाति की एक मात्र यह सम्मिलित 'सम्पत्ति' सदा के लिये हाथ से चली जाती। इतना कटु अनुभव ताज़ा होने पर भी मेवाड़ी चारण जाति में मुख्य होने का अभिमान रखने वाले सज्जन फिर उसी दुष्प्रवृत्ति में पड़े रहें यह मेवाड़ के चारणों का दुर्भाग्य ही है।

यदि ऐसा नहीं है तो एक बार मेवाड़ के सब जातिभाइयों को एकत्र करके 'मेवाड़ चारण सभा' की नियमानुसार स्थापना कर उस के पदाधिकारियों (सभापति, उपसभापति, मंत्री, उपमंत्री, कोषाध्यक्ष आदि) का चुनाव क्यों नहीं किया जाता और इस विचार को भग्भड़ कह कर क्यों ढाल दिया जाता है और क्यों इस निर्दोष एवं पवित्र कार्य में राज्यकोप का डर दिखा कर सीधे सादे लोगों को भ्रम में डाला जाता है? उन्नतिशील राज्य सदा ऐसी प्रवृत्तियों का स्वागत करते हैं और हमारे खयाल से मेवाड़ राज्य भी ऐसी सामाजिक सभा-समितियों के संगठन में भी बाधक बनने में शायद ही अपना हित एवं गौरव मानेगा। ज़रूरत है कि अखिलम्ह मेवाड़ के सब जातिबंधुओं को इकट्ठा कर छात्रालय के प्रति उनके प्रेम को जागृत किया जाय और छोटे से छोटे चारण को भी यह अनुभव करने का मौका दिया जाय कि छात्रालय का काम उस का भी उतना ही है जितना कि किसी और का और उस से लाभ उठाने में, उस के इंतज़ाम में उस का भी उतना ही अधिकार है जितना किसी बड़े सरदार का। इस के साथ ही इस की भी पूरी ज़रूरत है कि स्वयाम्भय स्व० कविगजा साहिब श्यामलदासजी के समय से लगा कर अब तक का इस छात्रालय का प्रामाणिक इतिवृत्त और अब तक के आय-व्यय का विस्तृत हिसाब पुस्तकाकार छपवा कर मेवाड़ के सब चारणग्रामों में एवं बाहर भी बिना मूल्य वितरित किया जाय।

छात्रालय के लिये नियम बना देने को सैक्रेटरी साहिब ने कहा, तो यनाका उनकी सेवा में पेश कर दिये गये। मगर उनको अवतक व्यवहार में नहीं लाया गया। इस हानिकार उपेक्षा के कारण छात्रालय सच्चे अर्थों में छात्रालय न होकर एक ढाँचे के से रूप में चल रहा है, जहाँ न तो विद्यार्थियों की शारीरिक उन्नति की ओर ध्यान है और न मानसिक विकास एवं चरित्रगठन की ओर। ध्यान दे भैं तो कौन? समय पर जागना, शौच, वृत्तधावन एवं स्नान से निवृत्त हो प्रार्थना करना, समय पर पढ़ना, सफाई से रहना और अपनी चीजों को सुव्यवस्थित रखना तक भी छात्रों की आदत में नहीं हो सका है तो ऊपर लिखी बातें तो इनसे आगे की हैं। इन सब बातों के लिये आवश्यकता है शिक्षित, चरित्रवान् एवं इस काम में अनुराग व उत्साह रखनेवाले निरीक्षक के रखने की। यह सब व्यवस्था सुचारु रूप से और स्थायी रूप से तभी संभव है जब ऊपर सूचित किये अनुसार मेवाड़ चारण-सभाका नियमानुसार संगठन हो और उसके आधीन छात्रालय-प्रबंधकारिणी संभाकी स्थापना हो। क्या ऐसा करने में इस निश्चिंत आशंका से अधिकार-हानि का भय है कि तब सैक्रेटरी ही सब कुछ न रहेगा? किन्तु यह कल्पना ही दुःखद है कि सैक्रेटरी साहिब ऐसे संकुचित विचार रखते हैं जिनसे जाति का राष्ट्र अहित हो रहा है। पर किया क्या जाय जब उनके अधिकार-कालमें परिस्थिति ऐसा हो रही है कि जिसको सुधारना अनिवार्य प्रतीत होने लगा है तो उन्हें कदाचित् अखेरगा तो भी कर्तव्यवृद्धि से निवेदन करना पड़ा और निवेदन करना पड़ता है कि वे अधिकार-लिप्सा को जातिहित के लिये तिलांजलि देने की उदारता दिखाकर शीघ्र ही ऊपर लिखे अनुसार आयोजन करने में वृत्तचित्त हो यश के भागी बनें। यदि वे ऐसा करेंगे तो मेवाड़ी चारणजाति की भावी पीढ़ी उनकी उपकृत होगी। और यदि वे अधिकार-मेवा, प्रमाद या पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष के कारण इस सर्वोपरि जातिहित की ओर दुर्लक्ष्य करेंगे तो छात्रालय बर तो जो भावी होगा, होगा; उन्हें जाति क्या कह कर स्मरण करेगी इसकी कल्पना वे स्वयं करें।

जो २ सज्जन इन पंक्तियों से अपना संबंध मानें उनसे यह आशा रखली जाती है कि जिस शुद्धभाव एवं जातिहित की प्रेरणा से वे लिखी गई हैं उसी शुद्ध भावसे वे भी इन्हीं ग्रहण करनेकी कृपा करेंगे और किसी दुष्ट हेतु की कल्पना कर अपने मनेभावको न बिगाड़ेंगे। जगदम्बा सबको सुमति दे।

अधिकार-लिप्सा—

श्री भूपाल-चारण-छात्रालय (उदयपुर) के संबंध में जो कार्यवाही इन्हीं दिनों में हुई और उसमें जो तृजे-अमल खेमपुर डा० सा० करनीदानजी दधिवाड़िया-सैक्रेटरी ने इस्तिफार किया वह कितना निन्दनीय है यह नीचे लिखे विवरण से पाठकों को पता होगा—

गत फाल्गुन कृष्ण १२ बुधवार को छात्रालय में एक मीटिंग की गई जिसमें पहला प्रस्ताव सर्वसम्मति से यह पास किया गया कि "जब तक हुई मीटिंग्स की

कार्यवाही नियमानुसार नहीं होती रही है अतः इस मीटिंग की और भविष्य में होनेवाली सब सभाओं की कार्यवाही सभा-समितियों के प्रचलित नियमों के अनुसार हो और हरेक बात का निर्णय बहुमत के सर्वमान्य सिद्धांत के अनुसार किया जाय ।" वाद में डा० करनीदानजी सा० के प्रस्ताव से डा० सा० चमनसिंहजी झाला (ताणा) उस दिन की कार्यवाही के लिये सभापति चुने गये जिनके सभापतित्व में पास हुए प्रस्तावों में एक मूल प्रस्ताव कार्यवाहक समिति के सदस्यों और उनमें से पदाधिकारियों के चुनाव का था । उक्त प्रस्ताव में सभापति के लिये खेमपुर ठाकुर साहिब करनीदानजी का नाम था । इसमें शायद किसीका विरोध नहीं था, परन्तु खेमपुर डा० सा० ने अपने बजाय कविराजा सा० शक्तिदानजी को सभापति चुनने का ही आग्रह किया तब बहुमत से कविराजा सा० सभापति चुन लिये गये ।

कार्य बाकी रह जाने से दूसरे दिन खेमपुर की हवेली ही सभा करना ले पाया था, अतः सब लोग वहाँ नियत समय पर इकट्ठे हुए । कार्यवाही शुरू होने से पूर्व ही डा० करनीदानजी ने वितण्डा शुरू कर दिया कि आप लोगों ने सैक्रेटरी को उसका कोई अपराध बताये बिना ही पथे बदल दिया, सैक्रेटरी नहीं बदला जा सकता आदि आदि । उनकी अनर्गल बातों का समुचित उत्तर दे कर समाधान करने की सब उपस्थित सजातीयों ने कोशिश की, परन्तु वे किसी की बात सुनने को तय्यार नहीं थे । आखिर जब करेड़े राजा बहादुर अमरसिंहजी को संवोधन कर डा० करनीदानजी ने अपनी कथा कहना शुरू किया तो राजा बहादुर ने उन्हें समझाया कि यह तो नियम की बात है । हर जगह सालाना चुनाव होता है । आपके यहाँ नियमानुसार काम न होने से अब तक दूसरा सैक्रेटरी नहीं चुना गया और अब चुना गया है तो बेज़ा नहीं है । आपका सैक्रेटरी बने रहने के लिये आपका शोभा नहीं देता आदि । इस पर ये खामोश हो गये और कविराजा सा० के सभापतित्व में उस दिन कार्यवाही होकर डा० करनीदानजी ने नये सैक्रेटरी को कार्यवाही रजिस्टर तो उसी वक्त दे दिया और बाकी कामज़ात फिर दे देने का कहा ।

लेकिन दूसरे दिन जब उन्हीं की हवेली सब लोग आवश्यक कार्यों के लिये फिर सभा करने का एकत्र हुए तो उन्होंने बड़े स्तूपेन का व्यवहार कर जवाब दिया कि जब तक दरबार दूरम न दे देंगे मैं सैक्रेटरी का काम नहीं छोड़ूंगा और न कोई राज ठूना । यह कहकर वे बिना किसी के कुछ लिहोज के सबको छोड़ हवेली से बाहर निकल गये ।

डा० करनीदानजी के इस अशिष्ट व्यवहार से सबको बड़ा दुःख हुआ । उन जैसे पड़े लिगे बुद्धजन से इस प्रकार के दुर्व्यवहार और दुरुप्रह की किसी को आना न थी । फिर, अब तक लोग यह भी मानते थे कि सबकी सम्मति न मिलने से ही काम नियमानुसार नहीं होता । किन्तु अब यह स्पष्ट हो गया कि चाहते पर भी डा० करनीदानजी नियमानुसार काम करना नहीं चाहते न बहुमत के आगे मिर झुकना चाहते हैं ।

वे यदि यह सब अपने ही व्यक्तित्व के बल पर करते तो जाति के लोग उन्हें समझा लेते परन्तु वे अपने इस दूषित कर्म में दरवार के हुक्म का नाम लेते हैं इसलिये लोग डर कर चुप हो गये हैं।

अब यह श्रीमन्मोदपाटेध्वर के लिये ही विचारणीय है कि क्या उनके हुक्म के नाम से ऐसा होना उचित है ?

समाचार-संग्रह

मारवाड़ के सेंट्रल एड्वाइजरी बोर्ड में चारण माफ़ीदारों की ओर से श्री शुक्रदेवजी किनिया, बी० ए०, एन्ड-एल्ड० बी० को लिया गया है। ध्यान रहे कि इस नियुक्ति के लिये और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स में भी चारण मेम्बर लेने के लिये मारवाड़-चारण-सभाने चीफ़ मिनिस्टर महोदय से प्रार्थना की थी। फलतः डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स में भी पांच-सात चारण सदस्य लिये गये हैं।

श्री चण्डीदानजी सा० दधिवाड़िया (रूपड़ास-मारवाड़) के सुपुत्र श्री सुमेरदानजी, एम० एस्-सी०, एल्ड-एल्ड० बी० जोधपुर राज्य में पब्लिक प्रोसीक्यूटर के पद पर नियुक्त हुए हैं।

श्रीमान् महाराणा सा० उदयपुर अभी जोधपुर पधारे थे तब मारवाड़-चारण-सभा की ओर से एक डेप्युटेशन पं० धर्मनारायणजी साहिब-मुसाहिब आला राज्य मेवाड़ से मिला था जिसमें सर्व श्री वट्टीदानजी सा० कविया, श्री वैजदानजी सा० बारहठ, श्री चण्डीदानजी सा० दधिवाड़िया, श्री आर्दानजी सा० बारहठ, श्री भूतदानजी सा० बारहठ और सम्मेलन के प्रधानमंत्री श्री शुभकर्णजी सा० कविया थे। इस डेप्युटेशन ने मुसाहिब आला महोदय से मेवाड़ के चारण-ग्रामों की ज़मीनी की कार्रवाई के संबंध में अर्ज की। मुसाहिब आला सा० ने डेप्युटेशन का स्वागत कर उसकी बातों का ध्यानपूर्वक सुना और सात्वनाप्रद उत्तर दिया।

गत २९ जनवरी को जोधपुर के श्री उम्मेद-चारण-छात्रालय का वार्षिकोत्सव संखवास ठाकुर दीवान बहादुर श्री माधवसिंहजी सा० चौहान, होम मिनिस्टर के सुभाषित्व में बड़े समारोह से मनाया गया, जिसमें खान बहादुर नवाब मुहम्मददीनजी चौधरी—रेवेन्यू मिनिस्टर, श्री ए० पी० कौक्स—अध्यक्ष शिक्षा-विभाग और होम सैक्रेटरी श्री निशानपुरीजी आदि माननीय सज्जनों ने भी अपनी उपस्थिति से सहयोग दिया था।

श्रीमान् महाराणा साहिब उदयपुर ने स्व० महाराज सा० हिममतसिंहजी (स्व० महाराणा सा० फतहसिंहजी के भतीजे) के द्वितीय पुत्र महाराज सा० प्रतापसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री भगवतीसिंहजी को गत फाल्गुन, कृष्ण ५ को दत्तक लेकर अपना उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया है । जगदम्बा पिता-पुत्र को दीर्घायु करे और श्री महाराज कुमार सा० को इस बड़ी गद्दी के, गौरव को कायम रखने योग्य बनावे ।

गत फाल्गुन कृष्ण १४ को मेवाड़-चारण सभा की ओर से चतुर्विंश सज्जनों का एक डेप्युटेशन दोवान बहादुर ठाकुर धर्मनारायणजी साहिब, सी० आई० ई० (मुसाहिब आला राज्य मेवाड़) से उदयपुर में उनके बंगले पर मिला, जिसमें कविराजा सा० शक्तिदानजी, वारहठजी सा० चालकदानजी, ठा० सा० कामोदीदानजी, ठा० सा० प्रतापसिंहजी, वारहठजी सा०, केसरीसिंहजी, ठा० सा० चण्डीदानजी, ठा० सा० रामसिंहजी व ठा० ईश्वरदानजी आदि थे । डेप्युटेशन ने मेवाड़ के चारण-ग्रामों की सनदों की दर्याफ्त के सिलसिले में राज्य की ओर से जो जग्गी व कुर्की के हुक्म हुए हैं उनके अनौचित्य की ओर श्रीमन्मन्दपाटेश्वर का ध्यान आकर्षित करने के लिये मुसाहिब आला सा० से प्रार्थना की और एक प्रार्थनापत्र भी उनके नज़र किया, जिसको उन्होंने वहीं आद्योपात्त पढ़ लिया और श्रीमन्मन्द-पाटेश्वर से अर्ज करने का आश्वासन दिया ।

मुसाहिब आला साहिबने डेप्युटेशन के साथ बड़ा सम्मानपूर्ण व्यवहार कर उसकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा की थी ।

स्व० विद्वद्भय ठा० सा० किशोरसिंहजी सौदा-सम्पादित 'हरिरस' (सटीक) प्रसिद्ध हो गया । डाकव्यय के १७ के टिकट के साथ निःशुल्क करनेकी प्रतिष्ठा लिख भेजने पर वह बिना मूल्य मिल सकेगा । पता—ठा० सा० भीमसिंहजी राठौड़, गु० गारासणी, पो० आसोप (मारवाड़)

अत्यंत दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि, किशनगढ़ नरेश महाराजा सर यशनारायणसिंहजी सा० बहादुर का सिर्फ ४२ वर्ष की उम्र में स्वर्गवास हो गया । श्री जगजियंता ने मार्चना है कि, वह उनकी परलोकगत आत्मा को शाश्वत शांति एवं शोकप्रस्त राजपरिवार को धैर्य प्रदान करे ।

अँगरेज़ी भाषा के विश्वविख्यात लेखक एच० जी० वेल्स अभी भारतवर्ष के परिभ्रमणार्थ आये थे, तब जोधपुर में चार दिन तक राज-मेहमान हुए थे । उनसे कि, यातायात करनेका जोधपुर के प्रेयुपट चारणवंशुओं को सूझा था ?

ચારણ પત્રને

('આલમાં હમેલ ચાંદલો ને જીજ્યાઈને આલ્યાં. બાળ' એ શિવાજીના હાલરકાનો રાગ

કોડ વરસ તું જીવજે જગમાં ને કરજે જય જયકાર;

લાડીલા પ્રાણ સમ પ્યારા,

'ચારણ' મુખપત્ર અમારા.

ટક.

દેશ અને નિજ જ્ઞાતિ-હિતની સાક્ષ સૂણાવજે વાત;

સાચું મોટા ભૂપને કે'જે,

કોઈનું માખણ ના લેજે.

ફરજે કાવે ત્યાં દેશ-વિદેશે દીપાવજે તારું નામ;

ધરોધર લાવથી જાજે,

દેવીનાં બાળકો કાજે.

જીવતો તારો એ હોત કળાધર 'કિશોર' જે કુળવાન;

નવો તારો જન્મ સૂણીને,

ચડાવત ફૂલ વીણીને.

અગિયાર મહોના જે આજ્ઞા પાળી આગળને અવતાર;

સંભારી પૂર્વનો નાતો,

ખૂશી ખૂબ દિલથી થાતો.

ખોટ પડી એની તારે અમારે, જે બાઈ પ્રભુને હાથ;

સંચાલક તો પણ તારા,

પ્રેમી ને સુજ છે સારા.

લખતા કરજે તું લેખકો ઝાઝા જ્ઞાતિ-હિતને કાજ;

ભારત માતા શુણ તું ગાજ,

જહું મોટું ખૂબ તું શાજ.

અભેસિંહ રામભાઈ ખળેલ, કોંઠ

ચારણ જાતિ: તેની પડતીનાં કારણો અને ઉપાયો

લેખક: શ્રી નારણલાલ મેકરણલાલ રોહડિયા, બી૦ એ૦, સિંધાવદર

ચારણોની દેવકોટિમાં ગણના

અસાર સુધીના દરેક સમેશનમાં અનેક ભાષણો થઈ ગયાં: ઘણા લેખો લખાઈ ગયા: દરેકનો મુખ્ય ખતિ એક જ હતો કે ચારણ દેવકોટિ છે.

રામાયણ, મહાભારત અને શ્રીમદ્ભાગવત જેવા હિંદુ ધર્મના આધારભૂત શાસ્ત્રગ્રંથો, પુરાણો, પ્રાચીન ઇતિહાસો વગેરેમાં પણ આ વિશે પુષ્ટકણ ઉલ્લેખો જેવામાં આવે છે. પ્રાચીન સમયનું આપણે નિરીક્ષણ કરીશું, તો આપણને પ્રતીતિ થશે કે એ કાળમાં, કવિ અને ગાયકનું સ્થાન, એ વખતના સમાજમાં ઉચ્ચ હતું. કવિનું અને ગાયકનું જીવન આદર-ભર્યું હતું. જે કવિની કવિતા મનુષ્ય સ્વભાવને ખદશી શકવા સમર્થ હોય, તે કવિતાને રચનાર અને તેને ગાનાર કાંઈ અદ્ભુત ચારિત્ર્યબળવાળો હોવો જોઈએ, એમ કલ્પના કરી શકાય. એ વખતના કવિઓમાં અને ગાયકોમાં બ્રાહ્મણો, ચારણો, કિન્નરો અને ગંધર્વો વગેરે કોમો મુખ્ય હતી; અને તેથીજ તે કોમોને આપણા શાસ્ત્રકારોએ ગૌરવભર્યું સ્થાન આપી, તેમની દેવકોટિમાં ગણના કરી હોય, એમ લાગે છે.

પ્રાચીન કાળમાં હિમાલયમાં વસવાટ કરતી જાતિઓએ, હિંદુ સંસ્કૃતિને પૂરેપૂરી તેમના જીવનમાં વણી લીધેલ હતી. નૈસર્ગિક જીવન: હિમાલય જેવા સૌન્દર્ય ધામમાં વસવાટ: અને તેમાંય ચારણો તો સૌન્દર્યમણિ કેલાસ પર્વતની તળેડીમાં રહેતા એટલે એવીસે ય કલાંક કુદરત સાથે ગળાતું જીવન: તેની માન્ય જીવન ઉપર અસર: આ બધાં કારણોને લીધે એ સમયના શાસ્ત્રકારોએ અને ઇતિહાસકારોએ નગાધિ-

રાજને ખોળે બિછરતી જાતિઓને ગંગા જમુનાના મેદાનોમાં વસવાટ કરી રહેલ ખીજ સર્વ જાતિઓ કરતાં અગ્રસ્થાન આપ્યું.

ચારણ શબ્દની વ્યુત્પત્તિકારણે “ચાર-યન્તિ इति चारणाः” એમ નિર્ણય કરી છે, તેના ઉપર મનન કરતાં ઇતિહાસના અભ્યાસીને માલૂમ પડશે કે, એ નિરૂક્તિ ચારણો પ્રાચીન કાળમાં કેટલું “ગૌરવભર્યું” સ્થાન ભોગવતા હતા, તેની સાખીતી રૂપે છે. આપણે રામાયણ, મહાભારત, ભાગવત કે બીજાં હિંદુશાસ્ત્રો વાંચતા હોઈએ, ત્યારે દરેક મહાન પ્રસંગે-પછી તે પ્રસંગ રામના જન્મનો હોય, બીજામના સ્વર્ગારોહણનો હોય કે પ્રભુના અવતારોમાંથી કોઈપણ અવતારના વિશેષ કાર્યનો હોય, ત્યારે ત્યાં ચારણો-આર્યભૂમિના ગમે તે ભાગ ઉપર હાજર હોયજ. આ શું ખતાવે છે? મને લાગે છે કે, ચારણો, એ વખતે આર્ય સંસ્કૃતિનો ફેલાવો કરવા માટે, એ કાળના હિંદુસ્થાનના દરેક ભૌગોલિક પ્રદેશોમાં પ્રસરીને વસવાટ કરી રહ્યા હતા. રાજદરબારમાં, કે રણભૂમિમાં, ચારણો એ કાળમાં અગત્યનું સ્થાન વિરાવતા હતા. આટલું ગૌરવભર્યું સ્થાન ધરાવતી જાતિની શાસ્ત્રકારોએ દેવકોટિમાં ગણના કરી હોય તો તેમાં આશ્ચર્ય પામવા જેવું કે શંકા રાખવા જેવું શું છે?

રાજકારણમાં ચારણોની અગત્યતા

એ વખતના રાજકારણનો જે જરા વિચાર કરીએ, તો આપણને સમજાશે કે એ યુગ સામાજિકવાદનો હતો. દિગ્વિજયો, અને તેને અંગે થતા અશ્વમેધ, રાજસૂય જેવા યજ્ઞો તેની સાખીતી રૂપે છે.

આજનો યુગ જે અવર જવર અને સંદેશા આદિ અવહારની અનેક પૈરામિત શોધોનો યુગ છે, કે જેમાં પૃથ્વી ઉપરના એક ભાગ ઉપરથી બીજા ભાગ ઉપર જવું, અને તેને વિશે માહિતી મેળવવી, એ ફક્ત થોડાક ક્ષણોનું જ કાર્ય છે, આ પ્રમાણે હોવા છતાંય દરેક દેશને-તે દેશ ભડે પ્રજાવાદી હો, સા-આવ્યવાદી હો, કે સરમુખવારોના શાસન નીચે હો, પ્રચારદેશની જરૂર પડે છે. ત્યારે આપણે જે યુગની વાત કરીએ છીએ તે યુગમાં તો અવર જવરના સાધનો આજનાં જેવાં ન હતાં. અને તે સમયે આર્યજૂમિમાં દીવ્ય જગતો અને તેમાં વસવાટ કરતી જગતી જ્ઞાતિઓનો વધારો હતો, ત્યારે એક પ્રદેશમાંથી બીજા પ્રદેશમાં જવું એ કુર્ષાટ કાર્ય હતું, ત્યારે રાજાઓની, ધર્મવીરોની, સંતોની, દાનવીરોની અને દેશભક્તોની કાર્તિના કાવ્યદ્વારા પ્રચાર કરતી ગાવિનું સ્થાન રાજ-દરબારોમાં, આશ્રમોમાં, સમરજૂમિમાં અને પ્રજાતા હૃદયમાં અહુજ ઊંચું હતું. અને તેથીજ ચારણો સમાજમાં પ્રથમ પંડિતનું સ્થાન ભોગવી ચકતા, અને દરેક વર્ગમાં પૂજ્ય તરીકે પૂજતા.

રામાયણ યુગ, મહાકાવ્યના યુગ, અને પુરાણોના યુગ પછી જેમ જેમ જ્ઞાતિમાં સુ-ધારા થતા ગયા, એટલું જોની સુધ્ધતી ગઈ, વેપાર-વાણિજ્ય વધવા લાગ્યું, તેજસ્વી-ધારણ મહાતાં આજ્યાં, અને અનેક નાનો મોટાં રાજ્યો સ્થપાતાં ગયાં; તેમ તેમ યુદ્ધના પ્રકારમાં પણ ફેરફાર થતો ગયો. પહેલાં જે યુદ્ધો મોઢાં થતાં તે, રાજાઓના સાવલોભપદ ધિવવા માટેના તત્ત્વસાદથી વધતાં ગયાં. એક મ આપણા ઇતિહાસમાં એવો આગ્યો કે, મારે કાંબોમાં, કે દ્રોણોમાં વીરસને મુખ્ય ધાન આપાનું. નિજપાદશમીથી રૂઝ થઈને

વર્ષાક્રાન્તિના પ્રાસ્ભકાળ સુધી, એક રાજાનું હરફર બીજા રાજાનીના પ્રદેશ ઉપર ફૂચ કર-તુંજ રહેતું. શિંદુસ્થાનમાં આવેલાં તે વખ-તનાં નાનાં મોટાં રાજ્યોમાં કાપમ મુદ્દ આણુ રહેતાં. રાજા મારે, જન્મભૂમિ મારે, ગાયો, સ્ત્રીઓ, અને બાળાણો મારે મરી મટવું, એ દરેક માણસનો ધર્મ મનાતો. પરંતુ તેઓને આ પ્રમાણે પ્રેરનાર કણુ ?

વેદકાળથી યુદ્ધભૂમિમાં હાજર રહેતી અને એ વખતની આર્યજૂમિની રાજદારી અને સામાજિક-સ્થિતિથી પરિચિત ગાવિનાં સંતા-નોએ, પૂર્વજોના વારસાને કારણે મધ્યયુગમ પછુ પોતાનું સ્થાન જળવી રાખ્યું. નિર્માણ અને બામલાઓને પછુ પોતાનાં પીરેસથી જગતમાં કાંબોથી પાગો ચલાવી રાજભક્તિ, દેશભક્તિ વગેરે શીખવ્યાં. ચારણોનું સ્થાન એ યુગમાં અહુજ ઊંચું હતું. પરંતુ એ કર્મથી મજેસા આ માનથી ચારણો ક્યારેય ફૂલાઈ ગયા હોય, તેવું આપણા વાંચવામાં આવતું નથી. એ જ્ઞાતિ રાજાશ્રિત બનતી જતી હોવા છતાં, ક્યારેય ખુશમદના નિઘકાર્યમાં પ્રવર્તક બનેલ ન હતી. જરા સરખો અન્યાય દેખતાં તે પોતાનું લોહી રેડીને પણ અન્યાય મટાડવા પ્રયાસ કરતી, આવી રીતે પોતાના કાવ્યના જોગ્યસ્થી, અને સત્યતા, પ્રમાણિકપણું, નિમ-કહલાહી, ચારિત્ર્યબળ વગેરે સદગુણોથી, ઉત્ત-રાત્તર ચારણતાતિ સમાજમાં ઉચ્ચ સ્થાન મેળવતી રહી. ગરીબ અને તવગર : સેવક અને શેક : પ્રજા અને રાજા : નીચ અને ઊંચ : એમ બધાય વર્ગોમાં તે પૂજવા લાગી. ચારણગાતિએ લોક વર્ગમાં એવું સ્થાન મેળવી લીધું, અને એવી વિશ્વાસ પાવતા જમાવી કે જે માણસો, રાજાઓ કે દેશો વચ્ચેના જગડાઓમાં ચારણોને સુવેદ કરાવનાર પંચ તરીકે બોલાવવામાં આવતા, દરેક પોતાને થનાર

કાલ-હાનિનો વિચાર કર્યા 'શિવાય, પોતાનો ફેસલો કરવાનું ચારણો ઉપર નિરાકર મને છોડી દેતા; અને ચારણો પણ, કોઈપણ જાતના પ્રલોભનોથી અંગના વિના, કોઈની પણ શેઠમાં દયાવા સિવાય, ચોગ્ય ન્યાય આપતા; અને પોતાની સત્યતા અને ન્યાયપ્રિયતા દર્શાવતા. વિશ્વાસપાત્ર ગાંધી તરીકે, ચારણોએ એક વખત એવું સ્થાન મેળવેલ કે દરેક અગત્યના કિસ્સાઓના રક્ષક તરીકે ચારણોને નીમવામાં આવતા. અને તેમને 'ગરવીશ'ના ખિતાબ નિવાજવામાં આવતા. જીવનને ભોગે પણ ચારણો પોતાની તે ફરજ વધાદારીથી અદા કરતા.

સત્યવક્તા, નિમકહલાલ, વિશ્વાસપાત્ર, અકળ-નિશ્ચયી, શરણાગતનું રક્ષણ કરનાર ચારણ ગાંધીના આ સંદેશો દર્શાવતા દાખલાઓથી ઇતિહાસો ભર્યા પડેલ છે. આ નાતા લેખમાં વધુ જગ્યા મોકવાની દેહરાતે, તેના વિશે ફક્ત નિર્દેશ જ કરવામાં આવેલ છે.

પરંતુ “કહાં લગ કહે” પુરાની ખાતે!” આ બધું ભકતકવિ દલાલાઈએ કહ્યું છે, તેમ “અણખોલ હા હા અર્મતણા એ દિવસ કર્યા જતા રહ્યા?” એટલે જૂનાં સ્મરણ જગાવવા જેવું છે! હવે આપણે આત્માની આપણી સ્થિતિનો વિચાર કરવાનો રહ્યો:

કાળના વહન સાથે, આ મહાન ગાંધીની મહાનતા પણ ધસાતી ચાલી. ઇતિહાસનું એક સનાતન સત્ય છે, કે દરેક સમાજ, ગાંધી, દેશ, રાષ્ટ્ર કે શહેનશાહત, એક વખત ગમે તેટલું ઉન્નત સ્થાન ધરાવતી હોય, તો પણ છેવટે નામશેષ થઈ જાય છે. ઇતિહાસના આચાર્યો—ચારણોને પણ આ સસ લાગુ પડ્યું હોય તેમ લાગે છે.

સમયના વહન સાથે, રાજવીઓ એક-આરામી, ભોળવિદાસી અને બસની બનતા

ચાલ્યા. સાચું જ્ઞાનત્વ ઓસરતું ચાલ્યું, અને દેશમાં અધાધૂંધીનો પણ એક સમય આવી ગયો. રાજદરબારોમાં વસતા ચારણો, પોતાનું સ્વત્ત્વ ભૂલવા લાગ્યા. ક્ષત્રિય ગાંધી સાથે પોતાનો ગુરૂપણનો, અને ઉપદેશકનો હિન્ન સંબંધ હતો, તે વીસરી તેઓ ખુશામદખોર બનતા ગયા. ગામગરાસ માટે, ધન અને વસ્ત્રો માટે, ચારણો પોતાની સરસ્વતીની પ્રસાદીને વેચવાનો ધંધો કરવા લાગ્યા. પાત્રાપાત્રતાનું જ્ઞાન ભૂલી ગયા. અને આનું પરિણામ થોડીજ પેઢીઓ પછી દેખાવા લાગ્યું. કે, ખુશામદથી મેળવેલ રાજ્યધને ચારણોનું સ્વત્ત્વ હણી નાખ્યું. સ્વત્ત્વ, તેજ અને ઓગસ્ટ જતાં ચારણોમાં ખીમ ફુટી. પણ પેસવા લાગ્યા, આમ આપણે આપણી આજની સ્થિતિના પ્રારંભ-કાળ સુધી આવી પહોંચ્યા.

ચારણોની આધુનિક સ્થિતિ

સંમેલનો અને બીજા પ્રસંગોએ, અનેક ગાંધીપ્રેમી ચારણ બધુઓએ આપણી હાલની સ્થિતિનું વર્ણન કરેલ છે. દરેક ભાષણકાર કે લેખક, પોતાના પૂર્વજોની ગૌરવતાનું વર્ણન કરી, આજની આપણી હાલની ચીરતી સ્થિતિનું આપણને જાન કરાવે છે. આપણે સર્વ ભાષણોને એકીસાથે સંમત થઈ તેનો વિચાર કરીએ, તો તેનો એક જ સાર આપણને લાગશે કે પ્રાચીન સંપિ, સિદ્ધ અને મહાત્મા ચારણોના વંશજ આજના ચારણો, એટલે બસની, પ્રસાદી, આજસુ, ખુશામદખોર, ઓચાર-વિચારમાં શિથિલ, ધર્મખોર, શોખીખોર, વહેમી, અજાની વગેરે. શું સાચોસાચ આપણી સ્થિતિ આવી થઈ ગયેલ છે? અને જો આવી સ્થિતિ આપણી હોય, તો તેમ થવાનું કારણ શું? તે સ્થિતિ સુધારવા માટે—આપણા પૂર્વજોનાં સાચાં સંતાનો થવા માટે, આપણે દરેક

શું કરવું જોઈએ, તે પ્રશ્ન દરેક જ્ઞાતિપ્રેમી ચારણ્ય સ્ત્રી-પુરુષે વિચારવો જોઈએ.

હિંદુઓના આઠ સ્મૃતિકાર લગવાનું સ્વયંભૂ મનુષ્યે કહેલ છે :

“ રમે છે દેવ દેવી ત્યાં,
પામે સન્માન નારી જ્યાં. ”

આપણે આ ઉપર વિચાર કરીશું તો આપણને એ સત્ય ધરાયર સમજાશે. જ્યાં દેવદેવીઓનો વાસ હોય, ત્યાં ધર્મ હોય. અને ગીતામાં જેમ લગવાનું શ્રીકૃષ્ણે કહ્યું છે તેમ જ્યાં ધર્મ ત્યાંજ જય, ત્યાંજ લક્ષ્મી, અને ત્યાંજ સર્વ સફળતા અને અનેક પ્રકારનાં ઐશ્વર્યો રહે છે. જ્યાં જ્યાં અને જે જે દેશ કે સમાજમાં સ્ત્રીજાતિ સન્માનલયુક્ત સ્થાન ભોગવે છે તે દેશનો અને સમાજનો ભૂતકાળમાં ઉદય થયો છે, અને અત્યારે પણ ધન રહ્યો જોવામાં આવે છે. આધુનિક યુરોપ પોતાનું ઉન્નત સ્થાન પોતાની નારી સન્માનની લાવનાથીજ ટકાવી રહેલ છે. પ્રાચીન આર્યભૂમિમાં સ્ત્રીનું સ્થાન સમાજમાં જિંદગી હતું, અને આપણે ઇતિહાસમાં વાંચીએ છીએ કે તેને પરિણામે આર્યપ્રજા ઉન્નતિ અને આદર્શના શિખરે પહોંચી હતી.

સામાજિક ઉદય અને સન્માનની સામાજિકમાં યતા પરિવર્તનોનો, રાજ્ય-પદ્ધતીનાં વાતોનો કે જ્ઞાતિઓના અબુદ્ધ અને અવનતિનો ઇતિહાસ વાંચતાં આ અસ્તની પાછળ કામ કરી રહેલ અનેક વસ્તુઓમાં, એક સર્વ સામાન્ય વસ્તુ આપણી નજરે જરૂર ચડશે. શામન, શ્રીકે જીવન સામાજ્યોની પડતીનાં કારણો શોધો: યાદવ-કૌરવના વિનાશનાં મૂળ તપાસો કે અમુક સમાજ અથવા જ્ઞાતિની અવનતિનો વિચાર કરો, તો આ બધાંની પછવાડે સ્ત્રી

જાતિ પ્રત્યે યતાવેલી તુચ્છ અને અપમાન-ભરી વર્તણૂકજ આપણી નજરે ચડશે.

દરેક ધર્મના ધર્માચાર્યો અને શાસ્ત્ર-કારોએ-દરેક દેશના સુધારકોએ, એક વાત ફરી ફરીને કહેલ છે કે, દુનિયાનું, દેશનું, સમાજનું, જ્ઞાતિનું કે કુટુંબનું લાલું ધમ્મણું હોય, તેનો ઉત્કર્ષ કરવો હોય, તો હમેશાં જગતની સમસ્ત સ્ત્રી જાતિ પ્રત્યે પછી તે સ્ત્રી આહે માતા હોય, પહેન હોય, પત્ની હોય અથવા તો ગમે તે સંબંધમાં હોય, કે કોઈ પણ જાતના સંબંધમાં ન હોય, તો પણ માનની-પૂજ્યભાવની દષ્ટિ કેળવો. હિંદુ-ઓના સ્વયંભૂ મનુ, પારાશર, નારદ, જેવા સ્મૃતિકારો: ઇસ્લામ ધર્મના પ્રવર્તક મુહમ્મદ પયગંબર સાહેબ: યુરોપ આખાને ધ્રુમવનાર નેપોલિયન: હાલના નાસ્તિકવાદના યુગમાં યુરોપ-અમેરિકા જેવા સુધરેલા દેશોમાં હિંદુ ધર્મનો ઝડપે ફરકાવનાર સ્વામી વિવેકાનંદ અને સ્વામી રામતીર્થ: જગત આખાને પોતાના સત્ય અને અહિંસાના સિદ્ધાંતોથી આકર્ષતા અને ભારતના આખાલ વૃદ્ધ ખરનારીઓનાં હૃદય ઉપર અધિકાર ભોગવતા મહાત્મા ગાંધીજી : આ દરેક મહાપુરુષ એકજ વાત કહે છે કે જો તમારો ઉદ્ધાર અને અબુદ્ધ આહતા હો તો સ્ત્રી જાતિ પ્રત્યે સન્માન વૃત્તિ કેળવો.

હિંદુ શાસ્ત્રની અર્ધનારીધરની લાવના : નવરાત્રિ જેવા ઉત્સવોની ઊજવણી : શાસ્ત્રોમાં દેવીઓનું સ્થાન : વગેરે હિંદુઓની સ્ત્રી સન્માનની લાવનાનાં દૃષ્ટાંત રૂપ છે. ચારણ્ય ધણા જૂના સમયથી દેવી-બાળક તરીકે ઓળખાય છે. ચારણ્ય જ્ઞાતિમાં આવડ, ખોડિયાર, કરણીજી, બહુચરાજી, બૂટ આદિ સર્વ જ્ઞાતિમાં પૂજાતી અનેક દેવીઓ, અનેક સતીઓ અને

સનારીઓ ઉત્પન્ન થયેલ છે કે જેના પ્રભાવે હજુ પણ ચારણો સમાજમાં દેવી-બાળક તરીકે પોતાનું સ્થાન જાળવી રહ્યા છે. પ્રાચીન કાળમાં આપણી માતિમાં સ્ત્રીઓનું સ્થાન બહુ જ ઊંચું હતું. દરેક પુરૂષ સંબંધી-પિતા, ભાઈ, સસરા, જેઠ, પતિ, દિવેર વગેરે-પોતાના આશ્રયે રહેતી સ્ત્રીનું સન્માન જાળવતા; અને તેના પ્રત્યે એક જાતનો પૂજ્યભાવ રાખતા. એટલુંજ નહિ પણ ચારણ પુત્રવધુને સાસરામાં યે કાઠ 'વહુ' કહીને સંબોધતું નહિ, પરંતુ સંબંધ પરત્વે 'બહેન', 'દીકરી' કહીને બોલાવતાં. દરેક ચારણ સ્ત્રી સ્વમાનવીક હતી. સ્વમાનને ભોગે મૃત્યુને બેઠવા તે તૈયાર થતી. અને તેથી એ

જગદંબાનાં બાળકો પણ સ્વમાનપ્રિય, અને અદ્ભુત ચારિત્ર્યજળવાળાં થતાં. પરંતુ જેમ જેમ આપણામાંથી સ્ત્રી સન્માનની ભાવના ઓસરતી ચાલી, જેમ જેમ સ્ત્રીઓ પ્રત્યે સામાજિક અભાચારો વધતા ચાલ્યા, તેમ તેમ આપણે આપણા ઉન્નત સ્થાનેથી અવનતિની ઊંડી ખાઈ તરફ ગમડતા ગયા. એટલે કે, જ્યાં સુધી આપણે સ્ત્રી જાતિ પ્રત્યેની આપણી વર્તણૂક અને વર્તવિમાં ફેરફાર કરીશું નહિ- સ્ત્રીઓને સમાજના અગત્યના અંગ તરીકે સ્વમાનભર્યું જીવન જીવતી બનાવીશું નહિ, ત્યાં સુધી આપણા ઉદ્ધારની બધી વાતો આકાશ કુસુમવત્ છે.

—(ક્રમશઃ) '—



ના લેખકો-વિદ્વાનોને

“આજના દુઃખ સળગતા ભારતમાં જન્મ પામી, યુવાન બની, આપ વૈભવો અને વૈભવજનિત સુખોનાં ગાણું નહિ ગાઈ શકો. જિંદગીની બધી તીખાશ ને કડવાશ: જિંદગીની બધી યાતનાઓ અને વાંછનાઓ: જે આપ અને આપની પેઢીઓ સેંકડો વર્ષોથી સહ્યા કરો છો, તેનું પ્રતિબિંબ આપનાં તમામ કાર્યોમાં અને આપની તમામ રચનાઓમાં જિંદગીનો જોડો.”

—સુદેશજી આનંદ

(આંતર રાષ્ટ્રીય નામના મેળવનાર પ્રગતિશીલ ભારતીય સાહિત્યકાર:

તેમણે અંગ્રેજીમાં ‘કુલી’, ‘અદૂત’ વગેરે કૃતિઓ રચી ઇંગ્લાંડને તાલ્લુખા યુરોપિયન પંજાબી છે: યુવાન છે: આપણા સ્ત્રી દ્વારા ભગતની જેમ તારા-ચંદ્રની જ કરનાર સાહિત્યના ઉગ્ર વિરોધી છે.)



ચારણ દેવો આવો !

લેખક : લક્ષ્મકવિ શ્રી દલાલાઈ ભાયાલાઈ કાગ; મળદર ,

સંવત ૧૯૯૪ ના વૈશાખ વદી ૬-૭-૮ એ ત્રણ દિવસ અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનનું પાંચમું અધિવેશન રાજકોટમાં મળ્યું હતું. તે પ્રસંગે ચારણ બંધુઓને આવકાર આપતું અને ઠપકો દેતું આ ભાવવાહી કાવ્ય રચીને ભગતશ્રીએ સંભળાવ્યું હતું.

ચેરો છંદ

આવો ચારણ સુખન ધારણ દેવોનાં માન,
આવો સત્યવાન હે સ્વમાનના પૂજારી-ટેકો
આવો મંગળ ગવાય જમણે લાકુ જમાય,
છેવટનું એક જૂઠું ખાઈ પેટ ભરશું;
મળશું સૌ સગાં સાંઈ લેશું પૈસો કે પાઈ,
બીજી ક્યાં લગત થાય વાત નદી કરશું;
દુનિયા મર કહે ભીખ આપણ સૌ કહે શીખ,
શૂદ્રની ગદાય શીખ શાસ્ત્ર કે' પુકારી-આવો ૧
આવો કવિતાના બાપ ધોવા અહીં પરમ પાપ,
સઘળા હરતેલ સૈતાપ દુનિયાના કાણા;
વાણી સુકુમાર યાર ધર ધર પરણાવનાર,
વિક્રય કરનાર ખોડિયારના હે બધા;
મન નહિ અપમાન માન ચોરાના મીઠમાન,
વૃત્તિ સતો સમાન આજ અમારી-આવો ૨
આવો દેવીના બાળ દીર્ઘ કરવા ભૂપાળ,
આપણ વિણ વિશ્વના સાહિત્યનું શું થાશે;

જગ્યો વિકરાળ કાળ માનવમતનો વિશાળ,
 આપણ વિણ તેહનાં સુગીત કોણ ગાશે;
 લંપટને ભીઠમ કોણ કંઞસને કરણ દ્રોણ,
 કહેશે કહો કોણ હાથ હાયરે પસારી—આવો ૩

શૂર સૌ કરતા શિકાર, કરતા મધમાંસ આર,
 અંદર તકરાર ધાર ખાર ખૂણ કરતા;
 અંગે આજસ અપાર નહોતો પુરુષાર્થ ધાર,
 ભીખ બાજ લાજ વિણ પૂરે ધર ફરતા;
 કુળના ચીલા સૂકાય તો તે વંકવા દુઃખાય,
 રહિયા તે કાજ હાય ! દેવ ભિખારી—આવો ૪

જગતું નાટક વિરાટ, (એમાં) ચારણનો કયો પાઠ,
 એનો કરજો ઉચાટ દેવવંશ રાગી;
 જગ્યો એક નર અઘાટ વસમી દશે થપાટ,
 રહેશે નહિ વાટ ઘાટ ચેતજો સુવાગી;
 અંદર ભેદોની ભીંત તોડો થઈને અલીત,
 જ્ઞાનજો ખચીત એક જીગરવાની ખારી—આવો ૫

સત નહિ કળજુગમાંહો, કે'તી ગઈ નાગબાધ,
 કરતી ગઈ આઈ ઉપદેશ એ ભવાની;
 એનાં કેટલાં અભાગ તાગે નવ મળે તાગ;
 'કાગ'ને જરાવે આગ બાળ વિધવાની;
 એનાં આંસુની ધાર પ્રવચકાળના અંગાર,
 સૂણજો દેવો-કુમાર ! અર્જ અમારી—આવો ૬

—કાગવાણી ભાગ ૨ જ્ઞમાંથી



કુદાનમાં ઘેર અપમાન

લેખક: શ્રી ભગવતીદાન મનુભાઈ રોહડિયા, શેરડી (કચ્છ)

સમ્ય સમાજની વિચારશીલ વ્યક્તિઓ સશંક બની પ્રશ્ન કરે છે કે, ચારણો રાજ્ય રજવાડાઓમાં ભિન્નતા દર્શાવે, લગ્નાદિ માંગલિક પ્રસંગોમાં હાથ પસારતા રોળાબંધ હાજર થઈ માંગણ વર્ગની હરોળમાં બિલા રહી 'પરવા' કે 'ત્યાગ'ના નામથી એવું બાતું હલકી કોટિનું કુદ દાન લેવાં કાં તત્પર થાય છે? ચાણક્ય ગણાતા ચારણો હાથે કંઈકની આવી કૂર મશ્કરી કાં કરાવે છે? આવું ઘેર અપમાનથી ભરેલું માનવતાશૂન્ય દાન કાં સ્વીકારે છે? તેમના આવા વૈધક પ્રશ્નો સાંભળી સમ્પત્તિય સુતા વ્યક્તિને અત્યંત લાગવત ખનડું પડે છે!

જેની હરોળમાં બિલાતાં આપણા ગૌરવને ઝાંખપ લાગે, જેના હાથથી દેવાતી એ દાનની રકમ લેતાં આપણને ધિષ્ઠાર ઉત્પન્ન થાય, જે દસ્યથી આપણી દેવ-સંસ્કૃતિને કલંક લાગે તેવા સ્થાનમાં આપણે મક્કાતા મુખે જઈએ એ તો આપણે સાચા પદ્મપ્રથમા છીએ, એમ જ સૌને લાગે. અને એ બ્રહ્મામાં વધારો કરનાર બાબત તો એ છે કે, આપણે જન-સમાજ પાસે "એ દાનના અમે હક્કદાર છીએ," એમ સગવડ જાહેર કરીએ છીએ! ખરેખર, એ સાંભળી મનુષ્ય-લોકના પવિત્ર ચારણ પુર-પોમાં જ નહિ, પણ દેવલોકના દેવ ચારણોમાં યે શોકની અવધિ જેવો આઘાત થતો દર્શે!! તેઓ વિચારતા દર્શે કે, આ અમારા વંશજો!!!

આપણી દેવ-સાતિનો પુરાણ-પ્રસિદ્ધ દાવો છે કે, ક્ષત્રિય-સમાજના અમે અગ્રગણ્ય તારણદાર છીએ-ભારતમાં ક્ષત્રિય-સમાજનું ક્ષાત્રત્વ સજીવન રહ્યું છે, તે અમારા પૂજ્ય દેવત્વને આભારી છે. એટલે કે, જો એ આભૂણો અને આત્મ-પ્રશસ્તિઓ : જે કહેા તે, સાચાં હોય તો રાજ-રજવાડાઓમાં માંગલિક પ્રસંગ વગર નોતપે' હજારોની સંખ્યામાં એકત્ર થઈ તે પ્રસંગે મહેમાન તરીકે ત્યાં આવેલ અનેક રાજ-મહારાજાઓની હાજરીમાં માંગણ તરીકે દાન માટે દોડદોડી કરી એ આભૂણો અને એ આત્મ-પ્રશસ્તિઓનું આપણે હડેયોક નીલામ કરાવતા હોઈએ એવું સૌને લાગે છે. જિભારી, રાજનો પૂજનીય બન્યો હોય, એવું કદી સાંભળ્યું છે? આપણા પરમ જ્યોતિર્ધર ૨૦ હાકુર કિશોરસિંહજી સોદા 'પાગલ' કવિએ આપણી એ મિથ્યા બ્રહ્મધનો જે માર્મિક જવાબ આપ્યો છે, તે ઘણા યે જાતિ બંધુઓના લક્ષ્યમાં દર્શે :

“ ગુરુ-દક્ષિણાં જો વાહુજોં કે”

બ્યાહ મેં તુમકો મિલે ।

વહ પોટ પર તુમ વહ રહે”

પર ત્યાગ હિત નિત ચિત ઢુલે!

જ્યા મિશ્રુકોં સંગ પાર્થિવોં કા”

શિશ્ય-ભાવ સુના કહોં ?

તે ચારણો! ગુરુભાવ રચતે

હવ જ્યોં મરતે નહોં !!

આચાર્ય મિશ્ર-કૃતિ કે વનિ

માન નૃપતિન સન” ચંદો !

૧. ક્ષત્રિયોના. ૨. હાથ ઓડ. જે કાંઈ પાણી પાવડું આપવાનું નહીં કરી એકત્ર થયેલા ચારણોને જનરક્ષકીય વણમાં પૂરે છે, તે વખતે એ મોંઘા મહેમાનોના જરૂર સિપાઈઓના ધક્કા અને કવચિત્ સોદીઓથી ભારે અને છે, તે ભાવ અહીં છે. ૩. રાજાઓનો. ૪. (રાજાઓ) પાસેથી.

ક્યા મિશ્રુકોં કો માન મિલ
સકતા કહી ? સચ તો કહો ? "

વાસ્તવિક રીતે આંખ ઊઘાડીને જોઈએ તો ક્ષત્રિય રાજ મહારાજાઓને તેમના સ્વધર્મ-પરિપાક્તાર્થે ઉપદેશ દેવાની આપણે બિલકુલ યોગ્યતા શુભાવી બેઠા છીએ અથવા ખીજા શબ્દોમાં કહીએ તો દેશી રાજાઓના હાથમાં અત્યારે પરરાષ્ટ્રનીતિ (Foreign Politics) નક્કી કરવાનો જરા પણ અધિકાર ન હોવાથી આપણા એ ઉપદેશની તેમને મુદ્દત જરૂર નથી. પરંતુ આપણે એ જરી પુરાણા હક્કને આગળ ધરી-તેનો ઢોલ પીટી આત્મધારિત્ર્યદ્વારા આપણા સ્વધર્મનો વિકાસ કરીએ છીએ. અને તે દ્વારા અન્ય સમજદાર વર્ગમાં આપણી અવગણના યાય, એ સ્વાભાવિક છે.

આપણે જિંદુ નિહાળીએ તો દીવા જેવું સ્ફુટ દેખાય છે કે, આપણને અપાતા એ દાનમાં આપણી સંસ્કૃતિનું ખૂન યાય છે: માનવતાનો ધ્વંસ થાય છે: દેવપુત્ર અને દેવી પુત્રનાં સંબોધનોમાં હાસ્યજનક કત્તંક તરી આવે છે. આવી આત્મક્રાંતિક સ્થિતિમાં કેટલાક તેજોદ્રેષી ચારણોત્તર સાક્ષરો આપણને ભિક્ષુક, ખુશામદખોર, નિંદક આદિ કત્તંક લગાવવાની તક મેળવતા ગયા. અને તે કત્તંક જ્યારે આપણે શુદ્ધદાન લેવા તત્પર બનીએ છીએ ત્યારે ક્ષત્રિયોને પણ સાચાં ભાસવા લાગ્યાં. એટલે કે, એવી માન્યતાઓના ચર જેમ જેમ તેમના હૃદયપટ પર ચડતા ગયા, તેમ તેમ તેમના માનસમાં આપણી પુરાણી પૂજનીયતા નામમાત્ર અને તે પણ જીડી જવા સમાન દેખાવા લાગી છે.

આચારુજી દાનની અધિકારીકાઇ જાતિ હોય તો તે પ્રાચીન વર્ણધર્મના બધારણે ફક્ત

શુદ્ધ જાતિ છે. એટલે કે શુદ્ધ જાતિને ખપતું એ દાન લેવા જ્યારે આપણી જાતિ હકકદાર બને, ત્યારે તો આપણું દેવત્વ શુદ્ધત્વમાં પરિણમ્યું છે, એમ ન્યાયપુર:સર આપણે કબૂલવું પડે છે.

આપણા કેટલાક માનનીય સર્વોચ્ચ હક્કદાર તો હજી સુધી ક્ષત્રિય-સમાજ પર ચાલ્યા આવે છે. અને તે આપવા માટે તેઓ તેમના ક્ષત્રિયત્વ રહેતા સુધી બંધાયેલા છે. છતાં તે ચારણ અને ક્ષત્રિય: બન્ને સમાજને શોભાસ્પદ હક્કો કોઇ કોઇ સ્થાને તો સદંતર બૂંસાઇ ગયા છે અથવા નામશેય રહ્યાં છે. તેનો સવળો પ્રતાપ પણ આપણી આ શુદ્ધ-સ્વરૂપિણી-દાન-પ્રહણ-શુદ્ધિનો હોય તેમ લાગે છે.

આપણા આ શુદ્ધ-ધર્મથી રાજા-મહારાજાઓ આપણા ભવ્ય ભૂતકાળના પારસ્પરિક-સંબંધને ભૂલી આપણા આવા પ્રકારના અન્ય હક્ક-અધિકારની ફરિયાદો સાંભળતા નથી. તેઓ એ ફરિયાદોના ફેસલા તેમના અધિકારીઓ પાસે કરાવે છે. અને એ અધિકારીઓ આપણું પતન કરવા માટે પ્રયત્નશીલ હોય છે-લાગ શોધતા હોય છે. એટલે આપણા સંબંધમાં મનકાવતો અપમાનજનક ફેસલો કરવામાં તેઓ સફળાયાતા નથી. પરિણામે એ કુદાનના મહાપાપથી આપણે આપણા પરમ પવિત્ર પૂર્વજોનો વારસો શુભાવી રહ્યા છીએ.

કોણ જાણે કયા સમયનો અમંગળ યોધડિયે આપણને આવું નિર્દિત દાન લેવાની કુશુદ્ધિ સૂઝી કે જેના કલુષિત અંશ અત્યારે પણ આપણી શુદ્ધિમાં સ્થાન લઇ રહ્યા છે ! જે દેવ-શાંતિના પૂર્વજોએ પાર્થિવ પ્રજાભનોથી

ન લોભાતાં પોતાના પવિત્ર ઋષિ-શ્રવન દ્વારા
વિશ્વ-પટ્પર પોતાની સુધૃતિ દેવાવી. તે
શાંતિના હાલના આપણે વંશજો આવી એક
નાચીઝ રક્ષ લેવામાં એ પૂર્વજોએ સચિત
કરેલી કીર્તિ-મત્તાને ગુમાવી રહ્યા છીએ. અને
તે છતાંયે તેનો પશ્ચાત્તાપ નહિ, એ શું ઓછો
દુઃખનો વિષય છે !

વિષ્કાર હજો આપણી કુમતિને ! હયાનત
હો આપણી એ ક્ષુદ્ર કામનાને ! ! શાપ હોજો
એ દાનની કુપ્રધાના હિમાચતીઓને ! ! એવાં
અડગ-એક નાદથી આપણે સૌ આપણા પ્ર-
ગતિ માર્ગમાં વેરાયેલા એ કુદાનના મલિન
રજકણો ઝાડી-ઝાપટીને સાફ કરીશું, તો જ
જગતને એમાં આપણી સાચી ઉત્તતિનાં
દર્શન થશે.



શૂરવીરોને પણ પ્રેરણા દેતી ચારણ કામની જવલંત ગાથા

પ્રજા-દમનતા પ્રપંચો રચી રહેલા દરબારો આજે રસહીન બન્યા છે.

[સુપ્રસિદ્ધ અંગ્રેજી માસિક ' મોડર્ન રિવ્યુ ' ના ડીસેમ્બર સને ૧૯૩૮
ના અંકમાં શ્રીયુત દેવેન્દ્ર સત્યાર્થીએ 'the Charans of Rajputana' નામક
'મનનીય લેખ લખ્યો છે. તે ઉપરથી ગુજરાતી ભાષાના અનેક રાષ્ટ્રીય દૈનિક
'જનમભૂમિ'ના તા. ૧૮-૧૨-૩૮ ના અંકમાં ઉપરોક્ત શીર્ષકથી " પોતાના
પ્રેરક વાણી-પ્રવાહથી શ્રીતાજનોને સુગ્ધ કરતી ચારણ કામની આ જવલંત ગાથા
છે. જમીન પર સામસામાં હાથોહાથ જેલાતાં યુદ્ધોનો જમાનો ગયો, અને શૂર-
વીરોને પાનો ચડાવનાર ચારણોની મહત્તા ઓછી થઈ. તેમના દુહાઓની હવે
જરૂર રહી નહિ. આજે તો મશીનગનોનો તડતડાટ, ટેંકના કર્કશ અવાજ,
બોમ્બગોળાના કર્ણુ-લેહી અવાજો અને યુદ્ધ-વિમાનોનો લય-સૂચક ઘેરો નાદ,
લડવૈયાઓને પાનો ચડાવી રહ્યા છે. રણભૂમિ પર દુહા લલકારતો ચારણ આજે
કાળના પટો નીચે દટાયો છે. ભૂતકાળમાં ચારણો રાજદરબારમાં આદરમાન
પામતા હતા. ચારણોનાં પ્રેરક ગીતોથી રાજદરબારો ચૂંજતા હતા. રાજાઓ તો
આજે પણ છે. પરંતુ પ્રજા દમનના પ્રપંચો રચતા રાજદરબારોમાં આજે
ચારણનું સ્થાન નથી. એ ઉજ્જવળ કામ હવે તો કદાચ પોતાની કાવ્ય-શક્તિ પીસરી
જવા લાગી હશે. " એવી પરિચયાત્મક નોંધ તથા કિંચિત ફેરફાર સાથે આ

તીર્થક્ષેત્ર

પરંતુ ચારણોનું તીર્થક્ષેત્ર તો રાજપૂતાના રહ્યું. દર દરના ચારણો પણ ઉજ્યટ દેવીના સ્થાનકે આવવા માંગ્યા. તેઓને રાજપૂતાના પર ખૂબ પ્રેમ હતો. કારણ કે શાય ને પ્રેમની ગાથાઓ લાંથીજ સાંપડતી હતી.

આ પછી ચાદમી સદીનો લોહિયાળ-સંગ્રામોનો કાળ આવ્યો. રણુચબોરનો કિલ્લો અક્ષાઉદ્દીનના હાથમાં ગયો; ચિત્તોડ પણ પડ્યું; પદ્મિનીએ બંદક કર્યું; રાજપૂતોએ કેસરિયાં કર્યાં; આ અર્થે નીરખ્યું; ચારણોને માતા હિંગળાને પ્રેરણા આપી કે, આવાં અદ્ભુત ગીતોનાં વીરગીતો રચો. અને તેમણે કુહાઓ રચ્યા.

દરેકને પ્રિય એવા અનુરાગનાં એ પ્રેરક કાવ્યો દેશભરમાં પ્રિય જન્યોં ને ફેલાયાં. ને રાણા હમીરે ચિત્તોડ પાછું લીધું. આ અદ્ભુત વિજય ચારણોનાં વીરગીતોને આભારી હતો. એ સ્વાધીનતા તથા સ્વમાનની લડત સદીઓ સુધી ચાલ્યા કરી.

રાજપૂતો વિજય પામતા ને પરાજિત થતા. સ્વાધીનતાની એ સતત લડતનું કેંદ્ર મેવાડ હતું. અને સ્વાધીનતાની લડત અર્થે દેહ અપાવી દેવાની પ્રેરણા આપતાં ચારણ-કાવ્યો રચાયા હાગ્યાં. દેહ, મન, આત્મા: સર્વસ્વ સ્વાધીનતાને અર્થે અર્પણ કરનાર, પીરાની એ વીર-ગાથાઓ હતી.

ચારણોમાં બધાજ કાંઈ આ કાવ્યો રચવાનો ધધો કરતા નહોતા. તેમાંના ધણુ ગોપાલન અને, પશુ પાલનનું કામ કરતા. મેઘોની ખુપડીઓને 'મેશ' કહેતા; અને એક રીતે તેઓનું કાર્ય સંગ્રામને મદદરૂપ હતું. એમની ગાયો યુદ્ધવીરોને શુદ્ધ ઘી પૂરું પાડતી, તેમની ઊંઘેરના અગ્રવો રણસંગ્રામમાં કામ આવતા.

કેટલીક વખત કોઈ કોઈ ચારણ વણગરની માફક ગામડે ગામડે પોદિયા લઇને ફરતા. ને તે ખાસ ખંજર, તલવાર, દાસ જેવી વસ્તુઓનું વેચાણ કરતા જતા. રાજ્યનો આશ્રય હોઇને તેઓને જમીન કે જગીરો મળતી. ને એ રીતે તેઓ પૈસેટ્ટે સુખી રહેતા.

પરંતુ ગમે તે ધંધામાં હોય છતાં ચારણની કાવ્યશક્તિ નષ્ટ થતી નહિ. કવિતા તો એના લોહીમાંજ રહેલી છે. ને તેથીજ તે 'વણુ પદિયો વાતું કરે' છે. ને ઊગતા ચારણ કવિને કવિરાજનું ભિરૂ પ્રાપ્ત કરતાં વાર લાગતી નહિ.

ચારણ જામના સભ્યોમાં એટલી પ્રતિષ્ઠા ને પવિત્રતા હતી કે, ચારણોનો દેશ ખૂબજ શુદ્ધ અને પવિત્ર મનાતો. ને તેમનો ગમે તેવો ગુન્હો હોય છતાં દેહાંત દંડની સજા તેમને કરવામાં આવતી નહિ. કદાચ તેની પછવાડે એવો પણ ભય હોય કે એકાદ કાવ્યઝરણુ સૂકાઈ જશે !

ગમે તે કહેવાનો હક્ક

ચારણોની બુદ્ધિમત્તા અને કળાની તથા અકિંતવની રાજ્યો ઉપર એવી ઊંડી છાપ પડેલી હતી કે, તેમને રાજદરબારમાં ગમે તે ખોલવાની છૂટ હતી. ચારણ રાજાશ્રયે જીવતા. રાજાની બેટસોજાદો પાળી તેની પ્રશંસા કરતા. પરંતુ ચારણ રાજ્યથી કદી અંગતો નહિ. તેની સમક્ષ તે લાઘવતા અનુભવતો નહિ. રાજા પાસેનો તેનો પોતાનો હક્ક છે, એમ માનતો. જેમ રાજપૂત તલવાર ધારણ કરીને સ્વાધીનતા માટે લડવા સર્મથો હોય, તેમ ચારણ દેશ-ભરમાં વીરતાના પ્રવાહોને અખંડ રાખવા બધાથો હતો. ને કેટલીયે વખત વીરકાવ્યોથી ચોદાઓને ઉત્તેજન આપનાર ચારણ પોતે પણ તલવાર લઇને યુદ્ધમાં ઊતરી પડતો. રાજપૂતાનાના ઇતિહાસમાં આવા ચારણવીરોનો સંપૂર્ણ ઇતિહાસ નથી, એ શોચનીય છે.

ચારણ્યોનાં કાવ્યો મુખ્યત્વે દુહા રૂપે હતાં, એ અગાઉ જાણીવું છે. દુહો એ પ્રગતો પ્રિય હંદ હતો. સુદ્ધો નહોતાં, ત્યારે નરનારીઓના પ્રેમની વાતો દુહા દ્વારા કરવામાં આવતી. સુદ્ધકાળમાં ને મધ્ય યુગમાં દુહાઓ માત્ર વીરરસથી જ અંકિત બન્યા.

આવા દુહાઓ કાણે રચ્યા. તે વિષે કોઈ માહિતી નથી. દરેક રાજપૂત-પતિ પતિને રણસંગ્રામે પાઠવતી વખતે દુહા દ્વારા વીર-સંદેશ આપતી. કોઈ રચયિતાએ દુહામાં પોતાનું નામ આપ્યું નથી.

કંઠસ્થ કાવ્યો

ચારણ્યોનાં આ કાવ્યો મુખ્યત્વે કંઠસ્થ હતાં. તેમના ચોપડાઓમાં તેઓ તેને તોંધી લેતા નહિ. જે તેમણે રચેલા સર્વ કાવ્યોને લેખિત સ્વરૂપમાં સાચવવામાં આવ્યા હોત તે રાજપૂત વીરોનો સળંગ ઇતિહાસ મળી આવતાં આ દુહાઓ બધા વિસ્મૃતિથી છવંત રહેત, એટલુંજ નહિ, પણ દરેકની પંક્તિઓ પણ ચોક્કસ નહોતી. સ્થળે સ્થળે તેના શબ્દોમાં ફેરફાર માત્રમ પડતા. ને તેથી તેનાં કર્તાનું નામ હંમેશાં અજ્ઞાત રહેતું.

દુહાઓનાં કાવ્ય ઉદ્દ્યોધન રૂપે અગર તે બે વ્યક્તિઓના વાર્તાલાપ રૂપે રચનામાં આવતાં.

ચારણ્યોની કામ જોતાં સર્વત્ર એકરૂપતા નજરે પડે છે. તેમના દેહ, અહેરાની રખાઓ, વિચારો, વાણી વાટે કાવ્ય-શક્તિ, રીત-ભાવ અને બીજા અનેક બાબતોમાં જાણે કે એકજ બીજામાંથી લાગેલા હોય તેવા તેઓ લાગે છે.

ધોર સુદ્ધ વખતે પણ પોતાની અનોખી જગત સહને ચારણ્ય સુદ્ધ ક્ષેત્રમાં જતો; તે લગ્ન-વૈવાહ્યોને પાનો ચડે એવાં સુદ્ધ-ગીતો એક પછી એક સ્વયં રચીને છેડતો.

ચારણ્યોનાં અદ્ભુત કાવ્યોની પ્રશંસા હિંદના કપીધર શ્રી રવોદ્રનાથ ટાગોરે 'રાજસ્થાન-સંશોધન-સભા' સમક્ષ નીચેના શબ્દોમાં કરી હતી:

ટાગોરની અંગૂલિ

“ ભક્તિનું સાહિત્ય આપણે દરેક પ્રાંતમાં વાંચીએ છીએ. દરેક સ્થળે કવિઓએ રાધા-કૃષ્ણનાં ગીતો પોતાની રીતે ગાયાં છે. પરંતુ પોતાના લોકીયી રાજસ્થાને જે સાહિત્ય સર્જ્યું છે; તે અનોખું છે. તે અકારણ નથી. કારણ કે રાજપૂતોને બિરદાવનારાઓ રણભેરીનાં સમક્ષ જીવનની નહરતા સામે સ્વયં-ગીતો રચતા ને ગાતા. તેમની સામે તેઓ સાક્ષાત્ તાંડવને

૧. તા. ૧૮ ફેબ્રુઆરી સને ૧૯૬૭ ના રાજ નં. ૬ દારકાનાથ ટાગોર સ્ટીટમાં કવિવર રવોદ્રનાથ ટાગોરના પ્રમુખપદે 'રાજસ્થાન-રસચંદ્ર-સોસાઇટી' ની એક સભા યજ્ઞ હતી. તેમાં તેના મંત્રી શ્રીરધુનાથપ્રસાદ સિંહાનિયાએ તેમને અન્વેષણ-કાર્ય કરતાં સભામાં ચારણ્ય કવિઓનાં વીરરસપૂર્ણ કાવ્યો સંભળાવ્યાં હતાં, તે સાંભળી એ વયોરૂઢ કવિવરના અહેરા ઉપર પણ લાંબી દોડી આવી હતી. અને તે પછી તેમણે આ અંગૂલિ આપી હતી. ૨. ચારણ્યોને તેમના એ કર્તાવ્યનું બાન કરાવતાં મહાકવિ સૂર્યમંદલજી મિશ્રણે સભા જ કહ્યું છે કે :

રણ હાલીજે ચારણાં ! ચાહે અવ લગ જૈન ।

કરૈ સુદહ જિસડી કહેા, વિષ સો દૂર વળે ન ॥

(હે ચારણ્યો! અત્યાર સુધી ઘર બેઠે ઘણી મોજ કરી. હવે તમે રણક્ષેત્રમાં ચાલો. ત્યાં પોતાની સગી આંખે વીર મોહાઓનાં કામ જુઓ. અને ત્યાં જેવું તેઓ કરે, તેવુંજ તેમનું ન કરો. દૂર રહીને જે વર્ણન કરશો તે તેવું સાચું નહિ બને.)

—તંત્રી : જીજ્ઞાસી વિભાગ

જોઈ રહેતા. આજે કલ્પનાથી એવું કાવ્ય કોઈ રચી શકે તેમ છે ?

રાજસ્થાની ભાષાનાં દરેક ગીતમાં જો વીરતાનાં તત્ત્વો ભર્યા છે. એ હિંદના ગૌરવનો વિવષ છે. તે સ્વાભાવિક સમ્બાધ ભરેલ તે કુદરતી છે.

મારા મિત્ર ક્ષિતિમોહન સેને મને હિંદી કવિતાનો પરિચય કરાવ્યો હતો. આજે મને એક નવી વસ્તુની પિછાન થઈ છે. આ ઉદય વસોવતાં કાવ્યો મારી સમક્ષ સાહિત્યની એક નવીજ દિશા પ્રુત્તી કરે છે. મેં ઘણી વખત

સાંભળ્યું હતું કે, ચારણોએ પોતાનાં કાવ્યોથી વીરોને પ્રેરણા આપી છે. આજે એ મેં જાતે અનુભવ્યું. આજે પણ એ કાવ્યોમાં ગળા રહેલું છે. ચારણી કાવ્યોનું એક સરસ પુસ્તક બહાર પડે તે જરૂરનું છે.”

રવિચાણુના ઉપરના સંગ્રહો આદરણીય છે. કાઠિયાવાડના ચારણી-સાહિત્યના શ્રી મેઘાણીએ કરેલા સંશોધન પછી એ વિશા પ્રત્યે કેટલાકનું લક્ષ્ય દોરાયું છે. પરંતુ તે માટે જો કાર્ય કરે ને અભ્યાસને ઉત્તેજે તેવી કોઈ સંસ્થા છે નહિ. આપણા આ ગુપ્ત ધનને બદાર લાવવાની જરૂર છે.



મેવાડ રાજ્યનાં પુસ્તકાલયો અને મ્યુઝિયમ

લેખક : સ્વ. મુનિશ્રી હિમાંશુવિજયજી ન્યાયકાવ્યતીર્થ

[પ્રવેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈનસમાજમાં મુનિરાજશ્રી વિદ્યાવિજયજી મહારાજ એમની વિશાળ ધર્મભાવના અને વિદ્વતા માટે સુપ્રસિદ્ધ છે. આજે તેઓ હિંસામાં ગળાડૂળ સિંધ પ્રાંતને અહિંસાનો ઉપદેશ દઈ રહ્યા છે. મુનિશ્રી હિમાંશુવિજયજી તેમના સુખ્ય શિષ્ય હતા, અને સંસ્કૃત-પ્રાકૃતના ઉત્તમ વિદ્વાન અને ઇતિહાસના આશાસ્પદ લેખક હતા. શુરૂની સાથે જ વર્ષ પૂર્વે સિંધનો વિહાર કરતાં રસ્તામાં તેમનું ભર યુવાન વયે મૃત્યું થયેલું. તેમના સ્મારકરૂપે તેમના લેખોનો હમણાં સંગ્રહ પ્રસિદ્ધ થયો છે. શુરૂ-શિષ્યની એ વિરલ જોડીએ સં. ૧૯૬૨નું ચાતુર્માસ ઉદયપુરમાં કરેલું. તે પ્રસંગે ઉક્ત ઇતિહાસપ્રેમી મુનિજીએ ઉદયપુરનાં પુસ્તકાલયો અને મ્યુઝિયમની મુલાકાતો લીધેલી, અને, તે દરમિયાન આપણા આધુનિક એક ઉત્તમ વિદ્વાન ડા. સા. કરણીદાનજી દધિવાડિયા સાથે તેમનું ઘણી વખત મળવું થયેલું. પ્રાતઃ સ્મરણીય ઇવિરાજશ્રી રયામલદાસજીની વિદ્વતાના પરિપાક રૂપી ‘વીર વિનોદ’ ગ્રંથનાં પણ તેમણે અહીં દર્શન કરેલાં. આ લેખમાં તેમણે આપણા આ બે વિદ્વાનોની તથા

તેમની કૃતિઓની યોગ્યતા વિષે નિષ્પક્ષ અને સુંદર મોંઘ લીધી હોવાથી તેને અત્રે અક્ષરશઃ જિતારીએ છીએ. ચારણ બંધુઓ આવા લેખો વાંચી પોતાના વિદ્વાનોને યોગ્યતામાં શીખે એવી આશા છે. * —તંત્રી : શુભરાતી વિભાગ]

ભારત ભૂમિમાં 'મેવાડ' પુણ્ય દેશ છે. દરેક દેશ પોતાની વિશેષતા ધરાવે છે. તેમ મેવાડ પણ અનેક વિશેષતાઓ રાખે છે. આરસો વર્ષોથી મેવાડમાં રીસોદિયા વંશના ક્ષત્રિયો અવિચ્છિન્ન રીતે શાસન ચલાવી રહ્યા છે. એકજ દેશ ઉપર એકજ વંશનું આટલાં વર્ષો સુધી રાજ્ય હોવાનું ઉદાહરણ, ભારતના ઇતિહાસમાં તો શું, પણ બીજાં રાષ્ટ્રોમાં પણ જવદલેજ મળી શકશે. મેવાડમાં વીરતાનો ગુણ સારી રીતે વિકાસ પામ્યો છે. આ શુશુને કળવધા માટે મેવાડવાસીઓએ પોતાનાં ધન, માત્ર, પુત્રી, સ્ત્રી અને બહાલા પ્રાણોને પણ તૃણવત્ ગણી લાગવામાં પૂરેપૂરી ઉદારતા બતાવી છે. તેથી તેઓ 'શું મરેહા, શું મુગ્ધ કે શું પહાણ, દરેક લડાયક કોમોની સાથે લડી પોતાના દેશની કીર્તિને બચાવવા માટે લગભગ દોઢ હજાર વર્ષ સુધી કટિબદ્ધ રહ્યા છે. રાણા પ્રતાપે આ કીર્તિની ઉજ્જવલતામાં ખાસ

વધારો કર્યો. તેમના પિતાથી ઉદયસિંહજીએ સત્તરમી સદીના પ્રથમ ચરણમાં મનોહર ઝાડી અને પહાડોથી શોભિત તથા સુરક્ષિત પ્રદેશમાં 'ઉદયપુર' નગર વસાવી ત્યાં મેવાડની રાજધાની બનાવી. તે પહેલાં ચિતોડમાં અને 'નાગદ્દ'† વગેરે સ્થળે મેવાડની રાજધાની હતી, પણ તે સ્થાને કાળબળે શત્રુઓનાં આક્રમણોથી ઘેરાઈ ગયાં, છિન્નભિન્ન થયાં, તેથી ઉદયપુર વસાવવાની ફરજ પડી. અત્યારે મેવાડની રાજધાની ઉદયપુરમાં છે. જો કે હવે મેવાડમાં વીરતાનાં પૂરે ઓસરતાં જાય છે, પણ પૂર્વકાળમાં વીરતાની આરાધનામાંજ વધુ સમય વીત્યો હોવાથી મેવાડ દેશ સાહિસ, કલા અને શિક્ષણના વિષયમાં પંચતંત્રની જેમ ઉજ્જેખનીય પ્રગતિ સાધી શક્યો નથી.

આ દિશામાં રાજ્ય તરફથી અભિમાન લઈ શકાય તેવો પ્રયાસ લેવાયો નથી. બીજાં રાજ્યોમાં વીસમી સદીમાં જેટલી રાજ્ય તરફથી

* અમારે હુખ સાથે કહેવું પડે છે કે, આપણી કોમની મહાન વિભૂતિઓને તેમનાં જીવનકાળમાં આજબવામાં આપણે વ્યકિતગત દિલ્લે મહત્ત્વ આપી સાવ ઉદારીન રહ્યા છીએ. આપણી એ ટૂંતિને ઉદેશીને આપણી કોમના આધુનિક મહાન પુરૂષ દેશભક્ત હાં સાં દેસરીસિંહજી સોદા (કોટા)ની પ્રશંસા કરતાં કવિ શ્રીઅક્ષયસિંહજી રત્નુએ યોગ્યજ્ઞ કયું છે:

અર્જોં ઉપાસ્થિત અપુનમેં, કેસર-મે નરનાહ ।

ઘીંતે દિન જાતે વિહ્દ, ક્યોં ન ઝડાતે હાહ ॥

મુગ્ધ રાજનૈતિક રસિક, સુજસ-સુગંધ-સમીર ।

કેસર મમ કેસર જહાં, ફુલ ચારણ ફસમીર ॥

—તંત્રી : શુભરાતી વિભાગ

† પંદરમી સદીના ઉદ્યા સમય સુધી આ નગર ખડુ સમૃદ્ધ હતું. ત્યાં રાજધાની છે. કુભારાજાનું તે પ્રિય નગર હતું. કહેવાય છે કે ત્યાં ૩૫૦ મંદિરો હતાં. અત્યારે મહાના રૂપમાં 'નાગદા' નામથી યોગ્યભાવ છે.

લાયબ્રેરીઓ, સાહિત્યિક સંસ્થાઓ છે, તેના પ્રમાણમાં આ રાજ્યમાં ઓછી જણાય છે. (સં. ૧૯૯૧ ના) ગયા યોમાસામાં અમે ઉદયપુરમાં હતા ત્યારે રાજ્ય તરફથી ચાલતી પબ્લિક અને પ્રાઇવેટ લાયબ્રેરીઓ અને મ્યુઝિયમ જોવાનો લાભ મને મળ્યો હતો તે વિશે ટૂંકમાં અહીં પરિચય આપવા ચાહું છું.

વિક્ટોરિયા લાયબ્રેરી

આ લાયબ્રેરી સજ્જનનિવાસ ખાગમાં આવી છે. હાં વિક્ટોરિયા મહારાણીનું આવકું છે. લાયબ્રેરીનું મકાન સારા ઢંગનું છે. થોડાં ઘણાં ઊંચાંઓ આવે છે, પણ જણાય છે કે પબ્લિકને માટે હોવા છતાં ઉદયપુરની પ્રજા તેનો લાભ બહુજ ઓછો લે છે. ' પુસ્તકોનો સંગ્રહ લગભગ ૭,૦૦૦ નો હતો તેનો લાભ લેનાર વર્ગ પણ જૂજ છે. નવાં પુસ્તકોને સંધરવા તરફ પણ રાજ્યના અધ્યક્ષની કાળજી ઓછી હતી. ત્યાં સિક્કાઓનો સંગ્રહ ઉલ્લેખનીય છે. સોના, રૂપા, તાંબા અને લોહા વગેરેના સિક્કાઓ છે. તેમાં ઘણા ખરા મપકાળથી જૂના નથી. લાયબ્રેરીની સાથે જ વિક્ટોરિયા મ્યુઝિયમ છે. તેમાં મહારાણા કુમારાણાના સમયના નાના મોટા શિલાલેખો ઘણા છે. કેટલાક કુટિલક્રિપિના લેખો તથા બ્રાહ્મીલિપિના શિલાલેખો પણ ઉલ્લેખનીય છે. હિંદુ અને જૈનોની કેટલીક ખંડિત મૂર્તિઓ અને તેના અવયવો પણ છે. એક જૈન મૂર્તિનું પરિકર કુમારાણાના સમયનું છે, તે 'નાગહર' નગરનું છે જેને અત્યારે નાગદા કહે છે. તેની નીચે આ પ્રમાણે લેખ કોતરેલો છે:-

ओं नागहदपुरे राणाश्री कुंमकर्णराज्ये
श्री आदिनाथ विवस्व परिकरः कारितः ।
प्रतिष्ठितः श्रीखरतरंगछे श्रोमतिवर्धन-

सूरिभिः ॥ उत्कीर्णवान् सूत्रधार धरणा-
केन श्रीः ।

મ્યુઝિયમમાં બીજી પણ કેટલીક વસ્તુઓ છે. જેવી કે, મારેશા સિંહ, વાઘ, મગર વગેરે જનાવરો, જૂનાં વાસણો અને વસ્ત્રો વગેરે. પણ તેમાં 'રીતનું રાધનું છે.' ખાસ મહત્વની વસ્તુ શાહજહાં પુરંમની ખાસ પાઘડી છે. તેણે ઉદયપુરના મહારાણા કરણસિંહજીની પાસે આવી શરણ મગ્યું અને મહારાણાને ચરણે પોતાની પાઘડી મૂકી હતી. આ બનાવ ઇસ્વી સન ૧૬૨૧ માં બન્યો એમ કહેવાય છે. •

ઉપર્યુકત લાયબ્રેરી અને મ્યુઝિયમના અધ્યક્ષ શ્રીયુત પંડિત અક્ષયકીર્તિજી છે. તેઓ નવયુવક અને હિંદી-મજા ભાષાની કવિતામાં સારો રસ ધરાવે છે. આ બંને સંસ્થા ઉદયપુર રાજ્યના ખર્ચથી ચાલે છે. આના નિભાવ માટે રાજ્ય દર વર્ષે ૩,૪૦૦ રૂપિયા ચિત્તોડી એટલે કે બે હજાર રૂપિયા ખર્ચે છે. આખા ઉદયપુર રાજ્ય તરફથી જનતાને માટે ફક્ત આ એક જ પુસ્તકાલય છે. આની પ્રગતિ માટે ઘણો અવકાશ છે, માટે મેવાડના રાજ્યે પૂરતું લક્ષ્ય આપવું ઘટે.

સજ્જન નાણીવિલાસ

આ પુસ્તકાલય રાજમહેલમાં છે. આની સ્થાપના સંવત ૧૯૩૧ માં મહારાણા સજ્જનસિંહજીના શાસનકાળમાં થઈ છે. આમાં નીચેના ખંડમાં 'ઇતિહાસ કાયાલિય' છે. ત્યાં સરકારી તવારીખને લગતાં પુસ્તકો, દસ્તાવેજો, પટ્ટાઓ, સિક્કાઓ અને તામ્રપત્રોનું પણ સાહિત્ય સંગ્રહાયેલું છે. રાજ્ય તરફથી પ્રજાને કોઇને કોઇ પણ જમીન યા બીજી કોઇ વસ્તુ ક્યારે અપાઇ છે તે બધી નોંધ અહીં રહે છે. આમાં કુલ ૧,૬૫૮ પુસ્તકો છે, જેમાં થોડાંક

તલિખિત પણ છે. આ સંસ્થાના ઉપરી માન દલિવાડિયા કરણીદાનછ ચારણ છે, આ વિદ્યાપ્રેમી, સન્નમન, વિદ્વાન અને રાજકૃત છે. તેથી રાજ્ય તરફથી તેમને જાગીર અને માન મળેલાં છે. આ સંસ્થામાં પણ ત્રણ પુસ્તકો ખરીદવા તરફ બહુજ ઓછું પાન અપાય છે.

હસ્તવતીલકાર

આ પુસ્તકાલય પણ મહેલમાં જ સન્નમન ચારણ વિદ્યાસની પાસેજ છે. તેમાં જૂના કાળથી સંગ્રહિત ચપેલાં હસ્તલિખિત પુસ્તકોનો સારો સંગ્રહ છે. કુલ ૨,૩૧૯ પુસ્તકો છે, તેમાં કુલ ૩૧ વિભાગનાં આ પ્રમાણે પુસ્તકો છે :

વિષય	સંખ્યા
વેદ	૨૦
વેદાંત	૪૮
ભગવદ્ગીતા	૪૧
ધર્મશાસ્ત્ર	૧૦૮
કર્મકાંડ	૧૩૨
પુરાણ	૧૨૮
ઇતિહાસ	૧૯
વૈદક	૫૪
જ્યોતિષ	૧૧૮
શિલ્પ	૪
શાલિહોત્ર	૧૩
મંત્રશાસ્ત્ર	૯૦
કાવ્ય	૩૪
કોશ	૨૨
સાહિત્ય	૫૪
વ્યાકરણ	૨૪
સંગીત	૧૨
મંત્રકૃત લેખમાં	૩૧
બાળા-સંસ્કૃત હસ્તલિખિત પુસ્તકો	૨૭
છપેલાં સંસ્કૃત પુસ્તકો	૫૮
રામાયણ	૯

વિષય	સંખ્યા
ન્યાય (દર્શન) શાસ્ત્ર	૨૧
પાતંજલ યોગશાસ્ત્ર	૪
નાટક	૨૦
પરમુરણ	૨૫
રાજનીતિ	૧૧
રહસ્ય	૧
સંગ્રહ	૪
ધનુર્વેદ	૩
શ્રોતક્રમ	૬
રત્નપરીક્ષા	૫
સ્તોત્ર	૪૫૧
ટિપ્પણી	૧૩
જૈનદર્શન	૩૯
ભાષા	૧૦૨
ચોપડા	૧૨૨
ભાષાનાં પુસ્તકો	૧૫૦
અંગ્રેજી	૫૪
ઉર્દૂ	૧૦૨
ફારસી	૧૦૪
તવારીખ	૩૧

આની રચાપના ધણાં વર્ષો પહેલાં થઇ છે, એટલે આમાં સારો સંગ્રહ હોવો જોઇએ. આનો ઉપયોગ બહુ જ ઓછો થાય છે. આનું નવીન દેખી દેટકોગ થાય એ જરૂરનું છે. આ જાને પુસ્તકાલયો ખાનગી છે, એટલે પ્રગ્ન તેનો લાલ લઇ શકતી નથી. કોઇ ખાસ વિદ્વાન વ્યક્તિએને જોવા માટે ખાસ મદારાજાથીની આજ્ઞા લેવી પડે છે. શ્રીમાન મદારાજા સાહેબે આ જાને પુસ્તકાલયો જોવાની મને અનુમતિ આપી અને શ્રીમાન કરણીદાનછએ આ પુસ્તકાલયો મને અજાવવામાં પોતાનો સમય આપ્યો તે બદલ જાને મદાનુભાવેને નું ધન્યવાદ આપ્યા વગર રહી શકતો નથી.

સાંભળવા પ્રમાણે રાજમહેલમાં એક ત્રીજી પથ્થુ ખાનગી લાખઝેરી છે; જેમાં સરકાર પાસે જે પુસ્તકો ભેટ આવે છે તે રખાય છે.

વીરવિનોદ

સગજન વાણીવિલાસમાં એક મહાન ગ્રંથ મારા જ્ઞેવામાં આવ્યો. તેનું નામ છે 'વીરવિનોદ'. તે મોટા કદના પાંચ ગ્રંથમાં પૂરા થયો છે. તે પાંચે ભાગનાં ૫૪૪, ૬૩૦ છે.

આ ગ્રંથમાં રાજપૂતાનાની જ નહિ પરંતુ આખી 'દુનિયાની ભૂગોળ સંબંધી બહુ જ વિસ્તારથી પ્રમાણપુરઃસર લખ્યું છે. ખાસ કરી રાજપૂતાનાના ઇતિહાસ પરત્વે બહુજ વિસ્તારથી લખવામાં આવ્યું છે. મેવાડ રાજ્યનાં તમામ દક્ષતરી સાધનો ઉપરથી આ ગ્રંથ તૈયાર કર્યો હોવાથી પ્રાચીન પ્રશસ્તિઓ, શિલાલેખો, પદાઓ, સનદો, વહીઓ, તાત્ર-પત્રો અને રાજ્યની આદાઓ આમાં આપ્યાં છે, તેથી સદર ગ્રંથની સત્યતા-ઉપયોગિતા અને પૂર્ણતામાં સારો વધારો થયો છે. આનું નિર્માણ લગભગ વિક્રમ સંવત ૧૯૪૩ માં થયું છે. મેવાડ રાજ્યના ખર્ચથી આ ગ્રંથ સંપૂર્ણ પાંચ ભાગમાં રાજ્ય તરફથીજ છપાઇ ગયો છે. તેમાં સાંભળવા પ્રમાણે એક લાખ રૂપિયાનું ખર્ચ થયું છે. આ મહાન ગ્રંથના આધારે શ્રીમાન પદિત જૌરીશંકરજી ઓઝાએ

'રાજપૂતાને કા ઇતિહાસ' વગેરે અનેક પુસ્તકો લખ્યાં છે.^૧ આ વાતની ખાતરી તેમના ગ્રંથોમાં કેકાણે કેકાણે વીરવિનોદના ઉતારાઓ અને ઉલ્લેખોથી થાય છે. આટલો ઉપયોગી આકર ગ્રંથ હોવા છતાં કમનસીબે મેવાડ રાજ્યને તેમાં વહેમ પડવાથી અર્થાત્ રાજ્યનું અશિત થવાની આશંકાથી તેનો પ્રચાર સાવ બંધ રાખવામાં આવ્યો છે. અર્થાત્ છપાયા પછી તે પુસ્તક કોઇને ય અપાયું કે અપાતું નથી, તેથી તે મહાન ગ્રંથના લાભથી સાહિત્યસેવી વિદ્વાનો વચિતજ રહે છે ! અને તેથી રાજ્યના લાખ રૂપિયાનું નકામું પાણી થયું કહેવાય. આ ગ્રંથના રચયિતાની કેટલી બધી મહેનત અને આશા હશે ? એ બધી અત્યારે તો એક ઢગધારી કોટડીમાં સડી રહી છે ! ગ્રંથકાર જીવતા હોત તો તેમના આત્માને આ રિથિતિ જોઇ કેટલું દુઃખ થાત ? આ મહાન ગ્રંથના કર્તા છે શ્રીમાન કવિરાજ સાંવલદાનજી^૨. તેઓ નંતે ચારણુ હતા, પથુ સંસ્કૃત, હિંદી વગેરેના સારા વિદ્વાન, શોધક અને કવિ હતા^૩. તેઓ મેવાડ રાજ્યના ઇતિહાસ-કાર્યાલયના અધ્યક્ષ હતા. આ કાર્યાલયના અનુભવો અને બીજાં સેકડો સાધનોથી તેમણે વીરવિનોદ નામનું પુસ્તક બનાવી પોતાની કીર્તિને અમર બનાવી જગત ઉપર મહાન ઉપકાર કર્યો છે. તેઓ પોતાના સમયમાં એક પ્રતિષ્ઠિત વિદ્વાન અને કવિ ગણાતા. મેવાડ રાજ્યનું ભૂપણુ હતા. તેઓ અત્યારે

૧. ૫૦ 'કેસરીમહલ શર્માએ 'મેવાડ કે સપૂત' નામક ગ્રંથમાં કવિરાજ શ્રી શ્યામલ-દાસજીના જીવનચરિત્રમાં, અને દી૦ બ૦ શ્રી હરખિલાસજી શારદાએ 'ઓઝા અભિનંદન ગ્રંથ' અંતર્ગત 'રાજપૂતાને મેં પ્રાચીન શોધ' નામક લેખમાં આવોજ અભિપ્રાય આપ્યો છે.

૨. તેમનું નામ સાંવલદાનજી નહિ પણ શ્યામલદાસજી હતું.

૩. અહીં 'પથુ' શબ્દનો પ્રયોગ જ્ઞેતાં લેખક, મહાશયનો એવો અભિપ્રાય હોય તેમ જણાય છે કે, ચારણો સંસ્કૃત, હિંદી કે ગુજરાતી ભાષાના બેચી કોર્ટના વિદ્વાન કે કવિ હોઇ શકે નહિ. વિક્રમની ત્રીજીથી અઢારમી સદી સુધીમાં બ્રાહ્મણુ વિદ્વાનો અને કવિઓએ લખેલા સંસ્કૃતગ્રંથોમાં જ્યાં જ્યાં ચારણોનો ઉલ્લેખ થયો છે, ત્યાં ત્યાં કવિ અને ચારણુ અથવા કવિ

આ મત્વ લોકમાં શરીરથી નથી પણ યશઃ
કાયથી અત્યારે છે અને ભવિષ્યમાં જીવત
રહેશે. હું વર્તમાન મહારાણા સાહેબને આ
અનુરોધ કરું છું કે તેઓ આ મહાન વિદ્વાનના

આકરશ્ચયનો પ્રચાર કરી મહાન પુણ્ય-
કીર્તિને પ્રાપ્ત કરવાનો પ્રસંગ જવા ન
દે. આવા અથા જગતની વસ્તુ હોય છે.*

અને ચારણકવિ એમ ગમે તે કારણથી બિન્નતા ખતાવવામાં આવી છે. અને બીજી બાજુ છેલ્લાં એક
હજાર વર્ષથી અધાધુધી અને લગાઇ-ઝગડામાં રમ્યા પમ્યા રહેલ રાજપૂતાના પ્રદેશના વસવાટને
લીધે ચારણ જાતિએ પણ સંસ્કૃત ભાષાનું પઠન-પાઠન ખિત્તુલ છોડી દીધું છે, એમ
અમારે દુઃખ સાથે કબૂલવું પડે છે. અને તેથીજ બાહ્યભાષા વિદ્વાનોએ આપણા માટે
આના ઉલ્લેખો કર્યા હોય એમ લાગે છે. એટલું જતાં જે સત્તરમી સદી પછીના કેટલાક ચારણ
કવિઓ સંસ્કૃત ભાષાના ઉત્તમ વિદ્વાનો હતા. જે કે તેમણે પણ સંસ્કૃત ભાષામાં તો કોઇ
અમર રચના કરી નથી, જતાં જે સંસ્કૃત ભાષાની વિદ્વતાએ તેમને હિંદી-હિંગલના કવિઓમાં
મહાકવિપદ અપાવ્યું છે. અને એ દિવ્દતાનો નિમોઽ પણ તેમની તે તે ભાષાની કૃતિઓમાં
જોવામાં આવે છે.

મહાકવિ સૂર્યમલ્લજી મિશ્રજી, કવિરાજ ચંડીદાનજી મહિપારિયા, મહામહોપાધ્યાય કવિરાજ
સ્વામલદાસજી, ગોસ્વામી ગણેશપુરીજી, મહામહોપાધ્યાય કવિરાજ મુરારિદાનજી આસિયા,
હાકુર કૃષ્ણસિંહજી સોદા આદિ ઓગણસમી સદીના સંસ્કૃત ભાષાના ધુરંધર ચારણ વિદ્વાનોના
મૃત્યુ પછી પણ એ પરંપરા ઇશ્વરકૃપાએ ચાલુ હતી, પરંતુ હવે તે સૂકાઇ જશે એવો સંભવ
છે. કેમકે છેલ્લાં પંદર વર્ષમાં ૬૦ સાં હનુમદાનજી ગાડજી અને ૬૦ સાં શક્તિદાનજી
બારહઠ ગયા. ગયે વર્ષે જાતિના એકમાત્ર સંસ્કૃતના અસાધારણ વિદ્વાન ઇતિહાસમૂર્તિ
૬૦ સાં કિશોરસિંહજી સોદા ગયા ! હવે પુન્યપાદ દેશભક્ત ૬૦ સાં કેસરીસિંહજી
જોદા (કોટા) અને પ્રસ્તુત લેખમાં ઉલ્લેખિત ૬૦ સાં કરણીદાનજી દધિવાડિયા જેવા
જે ત્રણ વયોવૃદ્ધ ઉત્તમ વિદ્વાનો બાકી છે. અત્યારે જે કે જ્ઞાતિમાં કેળવણીનો
પ્રચાર વધ્યો છે, અને રાજપૂતાનાનાં જે ત્રણ યુવક અંધુઓએ તો હિંદની સર્વોપરિ
શિક્ષણ-સંસ્થા હિંદુ વિશ્વવિદ્યાલય, કારીની એમં એં જેવી સર્વોચ્ચ પદવી મેળવી છે. પરંતુ
તેમણે કારી જેવા સંસ્કૃત ભાષાના વિશ્વવિખ્યાત રચનાનો લાભ ન લેતાં પોતાની બીજી ભાષા
તરીકે સંસ્કૃતને બદલે હિંદી કે બીજી કોઇ ભાષા લીધી હતી ! આ સ્થિતિ વધુ વખત ચાલુ
રહી કોઇ એજ્યુએટ અંધુ સંસ્કૃતનો અભ્યાસ નહિ કરે તો ઉપરોક્ત જે ત્રણ વિદ્વાનોના
આયમ્યા પછી ચારણજાતિમાં વીસમી સદીમાં પણ એકેય સંસ્કૃતનો વિદ્વાન મળશે નહિ, અને
નાની સરખી શાસ્ત્રોક્ત કે પૌરાણિક વાત માટે પણ આપણે અન્ય જાતીય વિદ્વાનોનો આશરો શોધવો
પડશે ! હજુ તો ચારણજાતિના વૈદિક, પૌરાણિક અને મધ્યકાળનો ઇતિહાસ આપણે શોધવાનો
છે; તે સંસ્કૃત ભાષાના અભ્યાસ વિના કેવી રીતે શોધી શકીશું ? એટલે કે,
કોલેજોમાં ભણતા સમ્પ્રતીય યુવક અંધુઓ અમારી આ નમ્ર સૂચના તરફ ધ્યાન આપી, અધરી
છે જતાં જે જ્ઞાતિને ભોગે પોતાની બીજી ભાષા તરીકે સંસ્કૃતને લઇ એમં એં અને
એવી અમે આશા સેવીએ છીએ. * આ લેખ લખાયા આદ ઉદયપુરના વર્તમાન મહારાણા
સાહેબે આ મહાઅર્થને ૬૦૭ રૂપિયા કલદાર અથવા ૧૦૦૭ રૂપિયા ચિત્રોડીઃ મૂલ્યથી વેચવાની
આજ્ઞા બહાર કરી છે.

—તત્રી : ગુજરાતી વિભાગ

કૃત્તેહ પ્રકાશ પ્રશસ્તિકાવ્ય

જે શ્રીમાન કાકાર કરણીદાનજીનો ઉલ્લેખ હું પહેલાં કરી ગયો છું તેઓ કવિરાજ સાંવલ-દાનજીનો ઉત્તર પરંપરામાં થયા છે. અર્થાત્ કાકાર કરણીદાનજીના દાદા, સાંવલદાનજી કવિ-રાજના ભાઈ થતા હતા. તેથી કવિરાજ સાંવલદાનજીના વિદ્યાપ્રેમની ગ્રાંખી કાકાર કરણીદાનજીમાં નજરે પડે છે.^૧ તેમણે 'કૃત્તેહ પ્રકાશ પ્રશસ્તિકાવ્ય' નામની એક રાજપ્રશ-સ્તિ ગાવી છે. તે સંસ્કૃત ભાષાનાં ૧,૨૫૦

પદોમાં પૂરી થઈ છે. તે એક સાદું કાવ્ય છે. તેમાં બાપા રાવળથી લઈ મહારાણા ભૂપાલસિંહજી સુધી સાધારણ કાવ્ય અને ઇતિહાસ મિશ્રિત પદ્ધતિથી સરળ અને સંક્ષે-પમાં વર્ણન છે. છંદ મોટે ભાગે અનુષ્ટુપ છે.

કાકાર શ્રી કરણીદાનજી સજ્જન અને વિદ્વાન્ હોઈ નમ્ર અને ગુણુમાહી છે. ગયાં ચાતુર્માસમાં અમારી સાથે તેમનો પરિચય થયો. તેઓ અમારી પાસે અવારનવાર ઉપાશ્રયે આવવા લાગ્યા. તેમની ઓફિસમાં મને લઈ ગયા.

૧. સ્વ. પ્રાતઃસ્મરણીય કવિરાજ શ્રી શ્યામવ્રદાસજી દધિવાડિયાના લગીરય પ્રયત્નથી ઉદયપુરમાં 'ચારણ પાઠશાળા'ની સ્થાપના થઈ હતી. તેમાં સંસ્કૃત ભાષામાં પડાંગ કાવ્ય-સાહિત્યનું ઉચ્ચ શિક્ષણ અપાતું હતું. પરંતુ ઉક્ત કવિરાજજીનો સને ૧૮૯૩ માં દેહાંત થતાં પાઠશાળાનું કામ શિથિલ બન્યું અને ચારણોની તત્કાલિન વિદ્યા પ્રત્યેની અરુચિને લીધે તેમાં ભણતા ધણાખરા વિદ્યાર્થીઓ નારી ગયા. છતાં યે જે પાંચ-સાત પ્રતિભાસંપન્ન વિદ્યાર્થીઓએ ત્યાં રહી કાવ્ય-સાહિત્ય અને વ્યાકરણાદિનો સંપૂર્ણ અભ્યાસ કર્યો, તેમાં દેશભક્ત ઠા. સા. કેસરીસિંહજી સોદા (કોટા), ઠા. સા. કરણીદાનજી દધિવાડિયા અને સ્વ. ઠા. સા. કિશોરસિંહજી સોદા એ મુખ્ય હતા. એ ત્રણે સંસ્કૃતના ઉત્તમ વિદ્વાન અને કવિ થયા.

અત્યારે એ પાઠશાળાનું પરિવર્તિત નામ "શ્રી ભૂપાળ ચારણ જાત્રાલય" રાખવામાં આવ્યું છે. ચારણ પાઠશાળાને તેના સંસ્થાપક કવિરાજ શ્રી શ્યામવ્રદાસજીના ઉત્તરાધિકારી પોતાની ખાનગી મિલકત સમજી તેનો અનુચિત લાભ લેતા હતા. એમનો અધિકાર ખસેડીને તેને હાલના સ્વરૂપમાં લાવવાનું પ્રાયઃ મધુ શ્રેષ્ઠ અખિલ ભારતીય ચારણ સમેલનના બૂનપૂર્વ પ્રધાનમંત્રી અને હાલમાં આ પત્રના મુખ્ય તંત્રી ઠા. ઇશ્વરદાનજી આસિયાની ધણા વર્ષોની નિરંતર પ્રેરણા, પ્રયાસ અને પ્રયત્નને આભારી છે. અત્યારે જાત્રાલયનો પ્રવચ ઠા. સા. કરણીદાનજી દધિવાડિયાના હાથમાં છે, અને તેઓ તેના સેક્રેટરી છે. પરંતુ આ અંકના દિ'દી-વિજાગમાં આ જાત્રાલય સંબંધી જે તંત્રીનેધિ પ્રસિદ્ધ થઈ છે તે વાંચતાં અમને દુઃખ થાય છે કે, તેમના જેવા વિદ્વાન સજ્જનના હાથમાં જાત્રાલયનો પ્રવચ હોવા છતાં પણ તે સંતોષકારક નથી; અને તેની સાથે તેઓ બિતંદિતનાં કાર્યો તરફ પણ દુર્લક્ષ્ય સેવે છે! એમના જેવા પ્રતિભાશાળી વિદ્વાનની સમેલનના એક પણ અધિવેશનમાં હાજરી નહિ, તે સુ ઓછો દુઃખનો વિષય છે! કહેવાનું તાત્પર્ય કે, તેઓ એ તંત્રીનેધિની ઉપયાગી સૂચનાઓ પર શીઘ્ર ધ્યાન આપી તેના કાર્યરૂપમાં અમત્ત કરશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

—તંત્રી : ગુજરાતી વિભાગ

તેમણે ઉપર્યુક્ત 'કૃતેહ પ્રકાશ પ્રશસ્તિકાન્ધ' ઉપાત્રયમાં લાવી મને અતાવ્યું. અને તેમાં યોગ્ય સુધારો કરવાનું પણ કહ્યું. જહુ પ્રેમપૂર્વક મેં તે કાવ્યનો કેટલોક ભાગ જોયો અને મારી બુદ્ધિ પ્રમાણે મેં તે માટે શ્રી કરણીદાનજી સાહેબને યોગ્ય સૂચના કરી; જેનો અમલ તેમણે નહીં ભાવથી કર્યો. મને દુઃખ છે કે આખું કાવ્ય જોવાની તેમનો જહુ આગ્રહ હોવા છતાં તે કાવ્યને હું સંપૂર્ણ જોઈ શક્યા નેટલો સમય કાઢી શક્યો નહિ અને તેથી તેમની મારણી હોવા છતાં, તે ઉપર મારો અભિપ્રાય પણ લખી શક્યો નથી. આ કાવ્યમાં સીસો-દિયા વંશનો પ્રારંભથી અત્યાર લગીનો દૂંક ઇતિહાસ છે, જે 'વીરવિનાદ'નું નવનીત પણ કહી શકાય શ્રીમાન હોદાર કરણીદાનજીના કહેવાથી જણાયું કે મહારાણા 'કૃતસિંહ'ની ઇચ્છા-પ્રેરણાથી પ્રસ્તુત પ્રશસ્તિની રચના કરવામાં આવી છે. તેથી ઉદયપુર રાજ્યની સનાતન પદ્ધતિ પ્રમાણે આ સંપૂર્ણ કાવ્યને શિલાલેખોમાં કોતરાવવાની પૂરી ખાતરી હતી. દવયોગે કાવ્ય પૂરું થતાં પહેલાં મહારાણાશ્રી કૃતસિંહજી સાહેબ દેવલોકવાસી થઈ ગયા. અત્યારે તેમનાજ પુત્ર મહારાણાશ્રી ભૂપાલસિંહજી રાજ્યાદી ઉપર છે. હોદાર કરણીદાનજી ઉપર તેમની કૃપા સારી છે તેથી તેમને પૂરી આશા છે કે, વર્તમાન મહારાણા સાહેબ આ પ્રશસ્તિ કાવ્યને શિલાલેખોમાં કોતરાવી ચિત્તોડના મહેલમાં આ કોઈ પ્રસિદ્ધ સ્થાનમાં મુકાવશે અને પોતાની કારકિર્દીને ગિરંજીથી બનાવશે.

ઉદયપુર રાજ્ય પ્રાચીનતમ હોવા છતાં અત્યારે ઉદયપુરમાં દિગ્ગજ વિદ્વાનો તો નથી; પણ પડિત ગિરિધરલાલજી શાસ્ત્રી, હોદાર કરણીદાનજી વગેરે કેટલાક સારા વિદ્વાનો છે. પડિત ગિરિધરલાલજી કાવ્ય સાહિત્યનાં સારા માતા વિદ્વાન છે. તેમણે કાવ્ય પ્રકાશ ઉપર પદ્યબદ્ધ સંસ્કૃત વૃત્તિ વગેરે કેટલાક ગ્રંથો બનાવ્યા છે. ઉદયપુરમાં રાજ્ય તરફથી એક સંસ્કૃત શાળા પણ ચાલે છે.

મેવાડ રાજ્ય તરફથી ચાલતાં પુસ્તકાલયોની અહીં રૂપરેખા આપી છે. આટલું મોટું અને પ્રાચીન રાજ્ય હોવા છતાં રાજ્ય તરફથી જનતાને માટે ફક્ત એકજ 'પુસ્તકાલય' છે, એ જહુજ ઓછું દેખાય છે, જ્યારે વડોદરા રાજ્ય તરફથી એક હજાર કરતાં વધુ પુસ્તકાલયો સ્થાપિત થયાં છે. જે કે મેવાડની પ્રજામાં શિક્ષણનો ધણો અભાવ હોવાથી તેને વાચનનો શોખ પણ નથી, છતાં રાજ્ય તે શોખ લગાડવા પગલાં લે તો સફળતા મળી શકે ખરી.

ખીજી વાતની એ ભલામણ છે કે, મેવાડમાં સેંકડો પ્રાચીન જૈન અને વૈદિક મંદિરો ભગ્ન-અર્ધભગ્ન અવસ્થામાં પડ્યાં છે. અનેક પ્રાચીન તળાવો, કિલ્લાઓ અને જૂનાં સ્થાનો છે. ત્યાંથી મૂર્તિઓ, શિલાલેખો વગેરેનો સંગ્રહ કરી રાજ્યના મ્યુઝિયમને સમૃદ્ધ, બવસ્થિત અને ઉપયોગી બનાવવામાં આવે તો મેવાડના ઇતિહાસ ઉપરજ નહિ; પરંતુ ભારતના ઇતિહાસ ઉપર સારો પ્રકાશ પડી શકે. હું આહું છું કે મહારાણા સાહેબ આ નહીં સૂચના તરફ ધ્યાન આપી યોગ્ય કાર્ય કરી અતાવશે.*

‘દોમુદી’ એપ્રિલ ૧૯૩૬ ના અંકમાંથી ઉદ્ધૃત

* મુનિ શ્રી દિમાંડુવિજયજીના ગૃહેવ મુનિરાજ શ્રી વિદ્યાવિજયજી મહારાજે પણ ઉદયપુરના એ ચાતુર્માસ પ્રસંગના વિદાર સંગ્રહો ‘મારી મેવાડ યાત્રા’ નામથી ગુજરાતી ભાષામાં

વિસ્તૃત અને પાંડિત્યપૂર્ણ લેખમાળા લખેલી, અને તે “જૈન જ્યોતિ”, “મુંબદ્ર સમાચાર” આદિ પત્રોમાં પ્રસિદ્ધ થયેલી. ડિંદો ભાષામાં તે એ લેખમાળા “મેરી મેવાડ-યાત્રા” નામથી પુસ્તિકાકારે પણ પ્રસિદ્ધ થવા પામી છે. તેમાં ઉક્ત મુનિરાજે ઓસવાદ ંનોના ઉદયપુર રાજ્ય સાથેના ધનિષ્ઠ સંબંધનું વર્ણન કરતાં આપણા આધુનિક સમર્થ કવિરાજ હાકુર કેસરીસિંહજી સોદા (સોન્યાણા)એ તેમના અમર ગ્રંથ “પ્રતાપચરિત્ર”માં ઓસવાદ કુલબૂણ્ય મંત્રીવર ભામાશાહની અપૂર્વ સ્વામીભક્તિનું જે અનૂદી કવિતામાં આલેખન કર્યું છે, તે આખો પ્રસંગ સુંદર વિવેચન સહિત આપ્યો છે. આ પ્રસંગે એ લેખમાળામાંથી તેટલો ભાગ અને ઊતારવાના લોકને અમે રોકી શકતા નથી. -તંત્રી : શુભરાતી વિલાખ

“.....જ્યારે મહારાણા પ્રતાપનું નામ, એનું દેશભિમાન અને એની ધર્મદ્રઢતાનો દુહુન્ની આજ પણ દિગ્-દિગંતમાં ગાજી રહ્યો છે. તેવીજ રીતે કટોકટીના સમયે એ મહારાણાના સહાયક થનાર અને દેશરક્ષાના કાર્યમાં તેને ઉત્તેજિત કરનાર ભામાશાહનું નામ પણ તેટલુંજ જગપ્રસિદ્ધ વ્યાપ્ત થયેલું છે. દુનિયાનો કાંઈ પણ સાચો ઇતિહાસકાર મહારાણા પ્રતાપના નામની સાથે મહામાતૃ ભામાશાહનું નામ પણ ભૂલી શક્યો નથી; અને ભૂલી શકે તેમ નથી. મહારાણા પ્રતાપની સાથે ભામાશાહ માટે પણ આજ સુધીમાં ઘણું લખાયું છે; અને ઇતિહાસકારોએ, કવિઓએ, નાટકકારોએ, ભામાશાહની સ્વામીભક્તિ અને દેશભક્તિનાં ભૂરિ ભૂરિ વખાણ કર્યાં છે. આ ધૂંધાતો ઉલ્લેખ કરવાનો આ પ્રસંગ નથી, છતાં શ્રીયુત કેસરીસિંહજી ખારલુઠ નામના એક કવિએ હમણાં જહાર પાડેલ ‘પ્રતાપચરિત્ર’માં પ્રતાપ અને ભામાશાહનો પ્રસંગ જે સુંદરતાપૂર્વક વર્ણવ્યો છે, એની કંઈક વાનગી આ પ્રસંગે આપવાની હાલયને રોકી શકતો નથી.

મહારાણા પ્રતાપ ધનહીન, સાધનહીન યતતાં પોતાના ખ્યાસ મેવાડનો ત્યાગ કરે છે. ત્યાગ કરતાં કરતાં પણ પોતાની સ્વતંત્રપ્રિયતાને છોડતો નથી; અને પોતાના સાથીઓને સંભળાવે છે :

કહુ દિન હિમિ રહિ દુર કહિં, સ્થાપહિં રાજ્ય સ્વતંત્ર ।

પ્રાન રહૈ તક નહિં રહૈ, પત્તા તો પરતંત્ર ॥ ૭૨૧ ॥

પ્રાણ રહેવા સુધીમાં ક્યારે પણ પરતંત્ર-શુદ્ધાગ્રીમાં નહિ રહેવાની પ્રતિજ્ઞા કરતાં પ્રતાપ દેશ છોડી ચાલી નીકળે છે. હૃદયમાં દુઃખનો ખાર નથી, પણ સાધનહીન પ્રતાપ માટે દેશ છોડવા સિવાય બીજો શો ઉપાય છે?

પ્રતાપ ઘોડેસવાર થઈ વિદાય થાય છે. તે વખતે જેના વાળ સફેદ થઈ ગયા છે, શરીરથી અશક્ત છે, કાકડીના ટેકાથી ચાલી રહ્યો છે, ચાલતાં ચાલતાં કોકરો ખાય છે, એવો એક વૃદ્ધ પુરૂષ પ્રતાપની સામે માર્ગમાં આવીને આડો ઊભો રહે છે. આ વૃદ્ધ પુરૂષ કેવા ભાવપૂર્વક મહારાણા પ્રતાપની સામે આવીને ઊભો છે, એનું વર્ણન કરતાં કવિ કથે છે:

સ્વર્પિ-મક્તિ-પ્રેમ ધર્યો પૂરન હૃદય લીલ,

દેસ-અભિમાન મર્યો જાકો રગ-રગ મેં ।

કીરતિ કો લાઢાં ઔર મન કો ઉદાર ગાઢો,

મામાસાહ આઢો આપ ઢાઢો મયો મગ મેં ॥ ૭૩૨ ॥

સંખ્યાકાળનો સમય હતો, પ્રતાપે લાકડીના ઢેકાથી સામે આવીને ઊભેલા વૃદ્ધ પુરુષને ન ઓળખ્યો. પ્રતાપ એ વૃદ્ધ પુરુષને પૂછે છે: “તમે કાણ છો? તમારી જાત શી? તમારું નામ શું છે? તમારી ઉપાધિ શી છે? તમારું ગામ કયું?” ભામાસાહ પ્રતાપના આ પ્રશ્નોના ઉત્તરમાં જે કહે છે, તે કવિના શબ્દોમાં આમ છે:

ચોલિ ‘જયજીવ!’ ઔર નજર સપ્રેમ કોન્હી,

સેઠ કે અપાર મયો હૃદય હુલાસ હૈ ।

હાથ જોરિ ચર્નન મેં અરજ કરન લાગો,

ચિત્રકૂટ હમારો પુરાનો નાથ ! વાસ હૈ ।

વનિયા હૈ જાંતિ ઔર કિંકર કો નામ ‘મામા’,

વર્તમાન વાસ જો યહાં તેં વહુ પાસ હૈ ।

પુરુષા હમારે રહે રાનન કે મંત્રી પલાસ,

રાવરો વપાલુ ! યહ દાસન કો દાસ હૈ ॥ ૭૩૪ ॥

‘ભામા’નું નામ સાંભળતાંજ પ્રતાપ આશ્ચર્યમાં ગરકાવ થયો. ભામાસાહ એ તો પોતાનો ખુબીમાન્ય રાજપુરુષ. ભામાસાહનું સ્થાન પ્રતાપના દરબારમાં, અરે પ્રતાપના હૃદયમાં કેટલું જીયું હતું એ પ્રતાપના શબ્દોથી પ્રતીત થાય છે:

વહુત પ્રસન્ન હોઈ પાતલ નજર લોન્હી,

કહી મહારાન તુમ વાંઘવ કી ટૌર હો ।

લાંચક હો વહુત હમારે સ્વાસ સેવક હો,

જેતે હૈ હમારે મંત્રિ ઉન્કે હ મૌર હો ।

કેટલું ખુબીમાન ! પ્રતાપ કહે છે: તમે તો મારા બાંધુને સ્થાને છો, લાંચક છો, અમારા ખાસ સેવક છો, એટલુંજ નહિ પણ અમારા અત્યાર સુધીના મંત્રીઓમાં સુકેટ સમાન છો.

પ્રતાપે પોતાનો પ્યારો દેશ છોડવાનું કારણ બતાવ્યું, છતાં ભામાસાહ દેશ નહિ છોડવાને આગ્રહ કરે છે, અને પોતાની હાર્દિક ભકિત પ્રગટ કરે છે. અને જ્યારે તે માર્ગમાંથી દડતો નથી, ત્યારે પ્રતાપ કહે છે:

કહે મહારાન સાહ પેસો હી તુમ્હારો ભકિ,

તદપિ હમારી ગલ નાહક પેરા હો તુમ ।

ધર્મ કે નિમિત્ત સવ સેના વલિદાન મરે,

દેલિકે હમાંગે દુગ્ધ નાહક જેરા હો તુમ ।

તુર્ક સોં લરન નહીં સેના ફિર સંચય હૈ,
તેતો ધન વૂઢે સાહ કહૈતે મરો હો તુમ ?
અપને નિવાસ પર ક્યોં નહિં ફિરો હો પાછે,

પેસો હઠ મામાસાહ ! નાહક કરો હો તુમ ॥ ૭૨૭ ॥

લામાશાહ કહે છે : જે વખતે જન્મશ્રમિ વિપત્તિમાં આવી પડી છે, તેને જોઈ હું કેમ સંતાઈ શકું ? આવા વિષ્ટ પ્રસંગમાં મારા દેશની અને સ્વામીની યથાશક્તિ સેવાથી કેમ પાછો પડું ? આખરે તે કહે છે :

ચિત્ત અનુસાર આજ સેવા હી વજાઝ્ઝ કહા ?

માલિક કે હૈત નાથ ! ઝમો વિકિ જાઝ્ઝ મૈ ॥ ૭૩૮ ॥

સ્વામીની સેવાને માટે હું બિભો બિભો વેચાઈ જવા તૈયાર છું. ધન્ય છે લામાશાહ ! લામાશાહ પોતાનું સર્વસ્વ મહારાણા પ્રતાપના ચરણોમાં ધરી દે છે. સ્વામિભક્તિ અને દેશ ભક્તિના આદર્શ સમાન લામાશાહ ઇતિહાસનાં પૃષ્ઠોમાં પોતાનું અમર નામ ડોતરાવે છે કવિએ લામાશાહની આ ભક્તિની ખૂરશૂરિ પ્રશંસા કરતાં છેવટે સાચા સ્વામીભક્ત સુગ્રીવ સાથે તુલના કરતાં કહ્યું છે :

उन किय सेवा लोभ हित, तुम निरलोभ असेस ।

सेवक घर सुग्रीय तै, भामासाह ! विसेस ॥ ૭૪૬ ॥

સેવા બનેએ કરી, પરંતુ સુગ્રીવની સેવા લોભના કારણે હતી. લામાશાહની સેવા નિર્લોભપણાની હતી. એટલા જ માટે સુગ્રીવ કરતાં પણ લામાશાહ વધી ગય છે. ”



સાહિત્ય-સેવા

પુસ્તકના રૂપમાં જ વાચકોના હાથમાં પુસ્તકોનો થોડો મૂલ્યમાં આવે તો જ એ વ્યક્તિએ સાહિત્યની સેવા કરી છે, એનું માનવામાં આવે તો અનવરથાનો પ્રસંગ બિભો થશે. એ નામના કવિએ પોતાના જીવન દરમિયાન પચાસેક જેટલાં અનુવાદ-કાવ્યો લખીને સાહિત્યની જે સેવા કરી છે, તે છપાયેલા કાગળોના મોટા ઢગલાથી યદ્ય શકતી નથી આ તરત લક્ષ્યમાં રાખવાની જરૂર છે.

—ગોવિંદ સખારામ સરદેસાઈ

બ્રહ્મચર્ય

“બ્રહ્મચર્યનું પાલન સંસારમાં મુશ્કેલ તો છેજ, પણ જો તે જગતમાંથી નિવૃત્ત થઈને પળાતું હોય, તો તેની બહુ કિંમત નથી.”

—મહાત્મા ગાંધીજી

દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ !

(લેખક : કવિશ્રી ત્રિભુવનભાઈ ગૌરીશંકર વ્યાસ, રાજકોટ)

[ચારણ જ્ઞાતિને અધોગતિ-અસ્ત બનાવવામાં જાગીરના મદની સાથે તેના જીવન-સહચર મધ-દારૂએ કેટલો અગત્યનો ભાગ ભજવ્યો છે; અને ભજવ્યો જાય છે, તેનાથી કાણ અગ્નિ છે ? હમણાં જ મારા એક બાળપણથી પરિચિત સમ્પત્તીય રોહી કે જેઓ અમારા પંથકમાં જ્ઞાતિને ઉપકારક નીચવાની હું આશા સેવતો હતો, તેમનું દારૂથી થયેલું અધઃપતન મેં નગરો નગર જોયું, ત્યારે તો માઈ કાળજી કપાઈ ગયું !

ગયા વર્ષથી હિંદના સાત પ્રાંતોમાં કંગ્રેસી-અમલ શરૂ થતાં મદ્રાસ પ્રાંતમાં સર્વ પ્રથમ દેશના દુશ્મન એ દારૂના દૈત્યનો ફરજિયાત નાશ આરંભાયો. અને ત્યાર બાદ યુગ્મજ પ્રાંતમાં પણ પ્રસિદ્ધ ઔદ્યોગિક નગર અમદાવાદમાંથી છેલ્લા ચારેક માસથી તેની કાનૂત દ્વારા બંધી ફરમાવવામાં આવી છે. એ માંગલિક પ્રસંગે કવિશ્રી ત્રિભુવનભાઈએ આ માર્મિક-ઉત્તમ ભાવવાદી કાવ્ય રચ્યું છે. તે આપણા સમાજને પણ બહુ ઉપયોગી જણાતાં અહીં જોતાયું છે. જે કે મહાકવિ ઉમરદાનજી બાળસે દારૂના દુર્યુણનું માર્મિક વર્ણન કરવામાં કાંઈ બાકી રાખ્યું નથી, અને એ કવિતાથી આપણે સમાજ બહુધા પરિચિત હોવા છતાં તેની કાંઈ અસર થયેલી જણાઈ નથી. છતાં એ આ નવયુગના જાગરણે પ્રસ્તુત કવિતા કાંઈક અસર નીપજતી અન્ય સામાજિક કુરુદિઓની જેમ દારૂના દુર્યુણને ફગાવી દેવા આપણા સમાજને વિચાર કરતો કરશે એવી આશા છે.

—તંત્રી : ગુજરાતી વિભાગ]

સુસણા છંદ

આજ ભારતતણો ગગન ધનધૌર છે, દુઃખ દારિદ્ર ને દર્દ દળથી,
પોહિત છે ભંધુઓ, ભગિનીઓ, બાળકો, વ્યસનના પૂર માંહે વમળથી;
શક્તિ સદગુણને નષ્ટ કીધાં અરે ! બ્રહ્મ કીધું ભલું વતન પ્યારું,
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ !
અન્ન ખાવા નથી, દૂધ પીવા નથી, વસ્ત્ર પૂરાં નથી અંગ ઉપરે,
જીવનનાં સાધનો જરૂર પૂરતાં નથી, કામનો થાક તે ક્યાંથી જોતરે ?
હાંડ પિંજર સમી નીપજ છે પ્રજા દેશમાં દૂર પેઠા લૂંટારૂં,
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ !
નિંદગી વેડફી છે અમારી અરે ! પાક તેં સર્વ નાપાક કીધું,
દુષ્ટ ને પુષ્ટ અમ હિંદ સંતાનનું ઘૂંટડે ઘૂંટડે લોહો પીધું;

ધર્મની ભાવના ધૂળ ભેગી કરી, નીતિને તેં ખનાવી ખતર,
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દાર !

હિંદુને ના ખપે જૈનને ના ખપે, પાક ઇસ્લામને તો ખપે ના,
તોય તેં હાય ! પરદેશથી આવ્યોને, આંહો અડા જમાવ્યા જ રોના ?

વેશ સુધરેલનો ધારીને ભાળવ્યા, જીવન તેં ઝેર કીધું અમારું,
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દાર !

કુળની કુર્ચીનતા, પુરુષની પુર્નીતતા, નારીની નમ્રતા તેં હરી છે,
ખીસતાં પુષ્પ શાં બાલુકાંની અરે ! ગાલની લાલોંચો ઊતરી છે;

હત્સવો ટાળીને મિજલસો માંડી તેં ખાલીનું માન મોટું વધાર્યું;
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દાર !

વેશ વિજાયતી ધારી આ દેશમાં તેં પ્રવેશી પ્રતિપક્ષ સ્થાપ્યો,
દેશનાં વેશ, સાદાઈ ને શુચિ તણી ભાવનાને તિરસ્કાર આપ્યો;

યદ્યપિ ભૂખ છતાં મઘપી વધી પડ્યા, દુર્ગુણોનું લઈ છેક લાર
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દાર !

રામ ને રહ્યોમનો બપ જપતી પ્રજા તેમનાં વદન તેં બ્રષ્ટ કીધાં,
ગર્જીય ગાળો વડે એજ મુખથી અરે ! કેંક સત્તારીને કષ્ટ કીધાં;

જ્ઞાન હડખાયલું હોય એવું ક્યું મતુજનું મગજ તેં તો નહારું,
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દાર !

મુકિતને ઝંખતી ભારતી માત જ્યાં પૂર્ણ સ્વાતંત્ર્યનાં યુદ્ધ માંડે,
કાણુ એવો હશે હિંદો જે આ સમે મઘના પાનથી લાન છાંડે !

કષ્ટ હોજો બહુ નષ્ટ હોજો સહુ, કિંતુ ના જોઈએ બ્રષ્ટ દાર;
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દાર !

યુગ-સંદેશ

લેખક : શ્રી જીવજીલાલ નાથાભાઈ વરસડા, ભાદરવા (મધ્ય ગુજરાત)

નવયુગની હાકલ આજે મનુષ્ય માત્રને-
પછી તેં રંકે હો યા રાગ, બાળક હો યા
વૃદ્ધ, કુલીનશાહીનો મોંઘાતા હો યા સમાજ-
વાદનો હિમાવલી હો, પરંતુ માનવ-જાત નરકિ
જેને જેને આ યુગમાં જીવતું છે, તેને સાંભળ્યે
જ છૂટકો છે. કેમકે આજનું વર્તમાન એ
આવલી કાઢતું ભાવિ બનશે. આજે આકાશ-
વાણીના યુગમાં બહેરો માણસ પણ ગમે ત્યાં
એસી આ સંદેશ સાંભળી શકશે, અને જન્મ-માંધ
નવી દૃષ્ટિએ જોઈ શકશે. આજે તો આપણા
વડીલોની જૂની દુનિયા અદૃશ્ય થઈ છે, અને
આપણે વિજ્ઞાનની નવી દુનિયામાં મૂકાઈ ગયા
છીએ. શ્રદ્ધા આંધળી બની છે, અને જીવિતે
નવી દૃષ્ટિ સાંપડી છે. આજની હવા અને
જૂનું માનસ બન્ને વિરોધી તરવા બન્યાં છે.
એકે ક્રાંતિનો ખનિ સંભળાઈ રહ્યો છે.
એવા જીવિતાવાદના જમાનામાં આપણે આજે
જીવી રહ્યા છીએ.

એક બાજુ વૃદ્ધ સામાજિકવાદ જાણે કે
તેનાં કુકર્મોની શિક્ષા ભોગવતો હોય તેમ રોગી
બની. વિનાશક માર્ગે ગતિ કરી રહ્યો છે,
ત્યારે બીજી બાજુ લોકશાસનવાદ વધુ યુવાન
અને શક્તિશાળી બનતો જતો જોવામાં આવે
છે. એવા પ્રચંડ ક્રાંતિના પ્રવાહ વચ્ચે રહીને
માનવ-જીવનના ગંભીર પ્રશ્નો આજના માન-
વીએ ઊઠેલવાના છે. અને એ પ્રશ્નો ઊઠેલી
પોતાના જીવનમાં મૂકવાના છે. માનવજાતિ
મુક્તિને માર્ગે પોતાની કૃત્ય કરી રહી છે, પણ
તેના માર્ગમાં જે કેટલાંક અવરોધો છે, તે
હમણે વર્ષની તેની વેદનાનાં સ્મરણ ચિદ્વેનો
છે. એ રાક્ષસી અવરોધોને દૂર કરી આંતર-

રાષ્ટ્રીય-દૃષ્ટિએ આજના જીવન-મરણના ગંભીર
પ્રશ્નોનો આપણે ઊકેલ આણવાનો છે.

આત્મરક્ષાના, જીવન-વિકાસના અને વિશ્વ-
શાંતિના બહુમુદ્દ્ય પ્રશ્નો પ્રત્યે ઉદારીનતા
રાખ્યે હવે માનવ-જાતિને પાલતી શકે તેમ
નથી. પશ્ચિમનું વિજ્ઞાન આજે માનવ-જીવનમાં
તાણા-વાણાની ખેંડે વણાઈ ગયું છે. જીવનની
ધણી ખરી જરૂરિયાતો ઉપર આજે તેણે
પૂર્ણ કાણુ મેળવી લીધો છે, પરંતુ વિજ્ઞાન
દ્વારા કુદરત ઉપર ક્રોધ મેળવવા જતાં આજનો
માનવી તેનો કેદી બન્યો છે એમ કહીએ તો
જરાયે ખોટું નથી. અને તેથી આપણા
જીવન-મરણના પ્રશ્નો આજે પહેલાંના કરતાં
તદન નિરાળા બન્યા છે. એટલે કે ભૂતકાળમાં
જીવતું જેટલું સહેલું હતું, તેટલું જ આજે તે
મુશ્કેલ બન્યું છે. જીવનનાં ખર્ચ, સાધનો અને
જરૂરિયાતો-નવીન ઊભાં થયાં છે. જીવનના
માર્ગમાં સ્વપ્ને પણ ખ્યાલ ન હોય તેવી
મુશ્કેલીઓ આજે ઊભી થઈ છે.

આજની દુનિયામાં સૌ કાંઈ જોઈ શકે છે
કે, વિજ્ઞાનીઓને મન પૃથ્વીનો ગોળો
એક નાની વસ્તુ બની ગયો છે. એને ધારણ
કરનાર કાચબો ને શેપનાય કાણુ જાણે ક્યાં
આજે છુપાઈ ગયા છે ! પછી આપણા
કવિઓ તેમનું સ્થાન જાણતા હોય તો ભલે !
આકાશ-ઉડ્ડયન પૃથ્વી-પર્યટન, સમુદ્ર-વિહાર
એ તો હવે સર્વ સાધારણ વિષય જેવાં બની
ગયાં છે. આજે તો મંજળ અને ચંદ્રની
દુનિયામાં જવાની મદત્તવાકાંક્ષા કેટલાક પેઢા-
નિષ્ઠા મેલી રહ્યા છે. આજનો કાળા માથાનો

માનની તો મૃત-સંજ્ઞાની વિદ્યાના પશુ પ્રયોગ કરવા માગે છે. આજે વગર તારના દરદરના દેશો વચ્ચેના સદેશાઓ, ગાયન, નૃત્ય વગેરે સાંભળવું કેટલું સસ્તું બન્યું છે ? પરંતુ જાતિ સર્વત્ર વર્જયેત્ ની પેઠે જગતને ઉપકારક એ વિજ્ઞાન તેને વિનાશને પથે પશુ દોરી રહ્યું છે. અને એના ફળરૂપે અનેક જાતની લાઘાવક રાસાયણિક સામગ્રી, મનુષ્ય સંહારનાં એરી ગેસ જેવાં સાધનો દુનિયાનાં તમામ પ્રાણી રાષ્ટ્રો તરફથી હઠજાળવે તૈયાર થતાં જોવામાં આવે છે અને તેનું પરિણામ વિશ્વ-યુદ્ધમાં આવે તો નવાઈ નહિ. આજે દુનિયાનાં મોટાં મોટાં રાજ્યો અરસપરસ મિત્રતાના કરાર કરે છે. પરંતુ તેથી એમ માની લેવાનું નથી કે, યુદ્ધ આવવાનું નથી. એવા કરાર કરવા છતાં એ રાજ્યો અંદરખાતેથી લડાઈને પથેજ દોરાઈ રહ્યાં છે. એમની વચ્ચે પરસ્પર સાચો વિશ્વાસ અને મિત્રતાની ભડી લાગણી હોય તેમ જણાવું નથી. આ અંકના હિંદી વિભાગમાં મુખ્ય તંત્રી મહોદયે માવો મહાયુદ્ધ નામક લેખમાં ફ્રાંસ અને જર્મનીની ભયંકર કિસ્સેબાંદીનું જે વર્ણન કર્યું છે, તે ઉપરથી એવાં બળવાન રાજ્યો યુદ્ધસામગ્રી ધરાવવાને બદલે નહીં નહીં યોગ્યતાઓ અમલમાં મૂકી દિન પ્રતિદિન વધારતાં જાય છે એમ આપણે જોઈ શકીએ છીએ. તેમના મિત્રતાના કરારની પાછળ પવિત્રતાની લાવના બિલકુલ નથી. પરંતુ તેમાં એ સ્વાર્થી સામ્રાજ્યોની રાજ-રમત અને ભેદનીતિનો ઢાંકપીછોડો છે. એટલે મિત્રરાજ્યો ક્યાં અને દુશ્મન રાજ્યો ક્યાં તે કહેવું આજે મુશ્કેલ બન્યું છે. દુનિયાનાં ધણાં રાજ્યો પોતાના બજેટનો મોટો ભાગ યુદ્ધ-સામગ્રીમાં શેરીને બદલે લેનો લઈને પશુ ખીજાથી પાછળ ન રહી જવાય તેટલા માટે પોતાની શક્તિ વધારવા આગળ આગળ દોડતાં

અને તેની ચિંતામાં ઘેરાયેલાં જોવામાં આવે છે. પરંતુ આ બધી દોડધામ થાય છે શા માટે એ પ્રશ્ન મહત્વનો ખુલાસો માગે છે.

આજે ખાસ કરીને પશ્ચિમની પ્રગમમાં વ્યાપારી દૃષ્ટિએ ધર્પાનો દાવાનળ સળગાવી દીધો છે; અને વિજ્ઞાનની શોધોએ તેમાં ઘી હોયું છે. પોતાના પુરુષાર્થમાંજ માનનારી એ પ્રજા આજે એ રીતે અવજે માર્ગે દોરાઈ રહી છે. જર અને જમીનની ભૂખી એ પ્રજાને કાચા માસની ખરીદી માટે કાયમનાં બજાર જોઈએ છે. આ સ્વાર્થી નીતિ સિદ્ધ કરવા માટે પોતાની રાજ્યસત્તા વધુ બળવાન બનાવવાની તેમને ખાસ જરૂર લાગે થઈ છે. અને તેને માટે ગમે તે ભોગે પોતાનાં પાડોશી નિર્બળ રાજ્યોને દબાવીને અથવા ગળી જઈને ફેસિલિટી કે ડિક્રેટરશાહીને નામે પોતાની શક્તિઓનું મજબૂત સંગઠન કરી ખીજા સ્વતંત્ર અને સમૃદ્ધ દેશોને પશુ યુગ્મબ બનાવી બળવાન રાજ્યસત્તા દ્વારા ચૂસણનીતિ ચાલુ રાખવાના નીચ પ્રયત્નોની તેમની વચ્ચે તીવ્ર હરિશાઈ જાગી છે. ૧૯૧૪ના વિશ્વયુદ્ધ પછી આજ સુધીમાં આપણે આવી આંતરરાષ્ટ્રીય અને આંતરદેશીય જાળતો વિશે ધણું ધણું સાંભળ્યું છે અને હાલ જે નવા નવા બનાવો બને છે, તે રાજકીય દૃષ્ટિએ સમસ્ત દુનિયાનું ખ્યાન ખેંચી રહ્યા છે.

એટલે કે, એક દેશમાં ઉદયપાયક થાય તો તેની અસર દરેક દેશ પર થાય, તેવા સંજોગોમાં આજની દુનિયા મૂકાઈ ગઈ છે. કારણ કે વંચવાદને લીધે પ્રત્યેક દેશ એકબીજાની બિલકુલ નહક આવી ગયો છે. વિજ્ઞાનની છેલ્લામાં છેલ્લી શોધોએ દુનિયાને ભયભીત બનાવી મૂકી છે. માનવ વિનાશનાં ચક્રો ગતિ-માન બન્યાં છે—માનવ સંહારનું મહાભારત

તેનો આપણે દીર્ઘદષ્ટિ રાખી વિચાર કરવો જોઈએ. આપણે ધણું જિંધા હવે તો એ નિદાને ખંખેરવી પડશે. દુનિયામાં સૌના જગ્યા પછી પણ સ્વમાનપૂર્વક મનુષ્ય જીવન જીવવાની આપણને ઇચ્છા હોય તો જેમ અને તેમ જાદી જાગવું આપણા માટે સજામતીલયુક્ત છે.

આપણા આપદાદાઓ આમ હતા ને તેમ હતા, તેના રાગડા આજની દુનિયા સાંભળવાની નથી. એ તો આપણી અસારની નીતિ-રીતિ જોઈ આપણું સ્થાન નક્કી કરશે. આપણા દેવત્વના દાવાથી આજની દુનિયા અંતરવાની નથી. તેની સાથે આજની દુનિયા જે સંજોગોમાં મુકાઈ છે, તેનાથી આપણે પર નથી એ નિર્વિવાદ સત્ય પણ આપણે કૃષ્ણ કરવું પડશે. આજના પ્રશ્નો આપણે કાસ ઉપર છોડીશું તો જીવનના શેષમાં દેવાળિયા બનવાનો આપણા માટે વિષમ પ્રસંગ જીમો થશે એ નિર્વિવાદ છે. અને તેમ બનતાં આપણી ભાવિ પ્રજા આપણને દોષિત ઠરાવશે. એટલે કે આપણે પિતા તરીકેનું કાણુ અદા કરીને નહિ પણ વધારીને બદ્દે આપણી માતૃભૂમિને ભાર રૂપ જીવન જીવીને માનવજાતિ તરીકેની ફરજ અદા કર્યા સિવાય આપણી પ્રજા માટે કશકિત વારસો મૂકી ચાલ્યા ગયેલા મણાઈશું. અને ભાવિના ઇતિહાસમાં આપણું સ્થાન ભારતના સાચા સંતાન તરીકે નહિ, પણ પેટપાણુ પામશે તરીકે હશે એ ચોક્કસ છે. ભુઓને, છેલ્લી બે સદીમાંજ આપણી કેમે બિશુક-જ્ઞતિને મહત્ત્વ આપવાથી આપણો હનરો વધતો જગકતો ઇતિહાસ કેટલો આંખો બંધો છે !

હિંદુ પ્રજાના એક શ્રેષ્ઠ અંગ તરીકે, ચારણ જાતિ તરીકે, નવયુગનું જીવન જીવવા માટે આપણે આપણા આજના કર્તવ્યનો

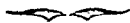
વિચાર કરવાનો છે. બાળા આદમના જમાનાની વાતો કરતાં લેનમાં પડ્યા રહે હવે આપણને પાકવે તેમ નથી. આપણે જે વ્યક્તિગત રાજસત્તાને આપણું આશ્રય સ્થાન માની રહ્યા છીએ, તેની આજે શી હાલત છે તે આપણે સમજ લેવી જોઈએ. અને એ નામના ક્ષત્રિય રાજ્યકુટુંબોને દોષિતમાન બનાવનાર રત્નો તરીકે આપણું તેમાં શું સ્થાન છે; અથવા સીધા અર્થમાં કહીએ તો એ નરેશોને આપણા ઉપર કેટલું હેત છે, તેનો વ્યક્તિગત દિતની દૃષ્ટિએ નહિ, પણ સમષ્ટિ જિનની દૃષ્ટિએ આપણે વિચાર કરવાનો છે. પાંચ-પચીસ વ્યક્તિઓને કવિ તરીકે તેમની પાસે રાખે તેનાથી આપણે કૂલાઈ જવાનું નથી, પરંતુ રાજ અને પ્રજાના હૃદયમાં એ કવિઓનું આજે શું સ્થાન છે, તેનો આપણે ઊંડા વિચાર કરવાનો છે. આજે તો જેના પૂર્વજોને ગયેલું રાજ્ય પાછું મેળવી આપવામાં ચારણ જાતિએ મહત્ત્વનો ભાગ લીધો છે, તે જેવાડના નિઃકલ્લેકી રાણાએજ બીડીને સત્તે કે પટ્ટા ન હોવાનું કોરણે ચતાવી મેવાડી ચારણોની જાગીરો ઉપર કાળી નજર કરવા માંડી છે! એ સ્થિતિમાં બીજા ક્ષત્રિય નરેશોની તો વાતજ શી કરવી? અને તેમ છતાં જે જાણે કે ધરના કે ધોરના ન હોઈએ તેમ એ નિરંકુશ નરેશોની સત્તાના પીઠ ચાથડનારા મણાઈ અન્ય જાતિઓનાં બદ્દે સરદાર વજ્રેલમાઈ પટેલ જેવા સમર્થ લોકનેતાઓનાં આપણે વારંવાર મહેલું સાંભળવાં પડે છે, એ શું આપણા માટે ઝોજા દુઃખનો વિષય છે !

સારાંશ કે, આજનો યુગ સંગઠિત બની આંતરજાતીય સંબંધ સુધારવાનો છે-યુગનાં વહેણે જોળખી નવજીવન પ્રાપ્ત કરવાનો છે.

કૃષ્ણમંડુકની સંકુચિત દષ્ટિ રાખ્યો આજે પાસવે તેમ નથી. માર, સોરઠિયા કે એવા ખીબા હુદ બેઠો તોડી અભિજ્ઞ બનીને જાનિતા વિરામ પ્રથો આજે આપણે ઊંઝલવાના છે, બહેકે જુલકાળનાં સામાન્યિક અને જાનિદોદના પાપોનું પ્રાપ્તિન કરી જગતના ભાવિ હવત સંભામમાં આપણે દરેકે ઊંઝલવાનું છે-સંકુચિત ભાવના-એથી પર બની મનુષ્યત્વ કેળવવાનું છે-પ્રુગા-મદ્યોતર યુક્તમી-માનસ ઠોડી બાહ્ય-સ્વાત-ગનાં આપણે મૂલ્ય ચૂકવવાનાં છે.

નામરૂપનો મોદ ઠોડી જાનિ, અને દેશને મારે પોતાના સર્વશરની આદુનિ આપનારા દેશમજન દાકુર કેસરીસિંદણ મોદા જેવા ખીબા પુરો આપણામાં સમાજની વેદાઉપર આજગ આવશે, ત્યારેજ એવા જગીસ લગણા પુરોગા

તપ અને આત્મભોગથી પ્રસન્ન થયેલ હમર આપણી ભાવિ પેઢીને સાચા આરથીવાદ આપશે. અને ત્યારેજ આપણું હવત આપણને બારરૂપ ન જલ્જાનાં હમરની જાતીસ સમું જલ્જાશે-ત્યારેજ આપણે વિરાટનાં દર્શન કરતા હવત-મુક્ત બનીશું-અવકારને તજી અબેદને માર્ગે વિચરી સત્યનો સાધારકાર કરીશું-કમ'યોગને માર્ગે આપણે જ્ઞાને દોરીશું અને 'સાચાશિવ'ને પ્રસન્ન કરીશું-પ્રજુતા ખારા પુરો બની સ્વતંત્ર ભારતનું સ્વપ્ન સિદ્ધ કરીશું. અને ત્યારેજ સ્વતંત્રતાના, એનપતાના મન્ત્રો હવતમાં મુક્ત શક્તિમાતાના સાચા પુરો મજાલ સિદ્ધ આરજોના વારસ હોવાનો દાવો આપણે કરીશું. એ શુભ વિરસ નહકમાં આપણે જોઈ શકીએ 'એવી પરમાત્મા પ્રત્યે કાં પ્રાર્થના ન કરીએ ?



ભારતીય સંસ્કૃતિ : પુરૂષાર્થ

સુમેરિયન, એસિરિયન, હર્મિયિયન આદિ જૂની સંસ્કૃતિઓ સ્મૃતિગેય થયા છતાં ભારતીય સંસ્કૃતિ ટકી રહી છે. પરંતુ આપણી સંસ્કૃતિએ આખ્યાત્મિકતા અને અનાસક્તિ વગેરેનાં ગુણો વગરે બાર મૂક્યા. જેને પશ્ચિમી સમાજ નિગતિમાર્ગ મદળ કર્યો, અને ત્યાં વ્યાપી. આખ્યાત્મિક તથા અને સર્વમ એ અધિકારીનો આદર્શ છે, ત્યારે મૂલ્ય નો જુરિપુરન સત્ત્વ પૂરતામાં જ છે.

તોડમાં જુલાઈ ૧૯૩૬ માં થયેલ પરિવારક સ્વચ્છતાની મંદિરાનંદ અને મી મર્દાગામ (મોરબી)



પૃથ્વિ ગુજરાતના જ્ઞાતિ-સમાચાર

તા. ૧૧-૧૧-૩૮ ના રોજ શ્રી કૃષ્ણ-કુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય (ભાવનગર) માં શ્રી ચા. હિ. સભાની કાર્યવાહક સમિતિ તથા શ્રી વિદ્યાલય વ્યવસ્થાપક સમિતિની બેઠક યજ્ઞ હતી.

ચારણ હિતવર્ધક સભાની કાર્યવાહક સમિતિની બેઠકમાં હાજરી આપનારાઓનાં નામે—

૧. શ્રી કારણભાઈ મહેડુ, પ્રમુખ, ૨ શ્રી દલાભાઈ ડાંગ, ઉપપ્રમુખ, ૩ શ્રી રામદાનજી ટાપરિયા, ઉપપ્રમુખ, ૪ શ્રી હરદાનભાઈ નરેલા, ૫ શ્રી નારણભાઈ રોહિયા, ૬ શ્રી પિંગલશીભાઈ પાયક.

વિદ્યાલય-વ્યવસ્થાપક સમિતિની બેઠકમાં હાજરી આપનારાઓનાં નામે—

૧ શ્રી કારણભાઈ મહેડુ, પ્રમુખ, ૨ શ્રી દલાભાઈ ડાંગ, ૩ શ્રી રામદાનજી ટાપરિયા, ૪ શ્રી હરદાનભાઈ નરેલા, ૫ શ્રી છતાભાઈ શામળ, ૬ શ્રી રેવાભાઈ બારહટ, ૭ શ્રી પિંગલશીભાઈ પાયક.

૩૦ સ. ની બેઠકમાં પસાર થયેલા ફરિયાદો—

આ સમિતિ દરાવે છે કે શ્રી ચા. હિ. સભાનું આગામી પંચમ અધિવેશન ગુજરાતમાં યોગ્ય સ્થળે યથાપ્ત અથવા જેઠે માસમાં કરવું.

૨ શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય માટે રજવાડાંઓમાં ફરિયાદો કરવા માટે જનાર પ્રતિનિધિમંડળના સભ્યોની પૂર્વ અનુમતિ સાથે તે કાર્યની શરૂઆત અર્થે પોપ સુંદર ની નિધિએ પ્રતિનિધિમંડળે જવું, એમ આ સમિતિ નક્કી કરે છે.

૩ આ સમિતિ સમિત નોંધ લે છે કે વારંવાર કહેવામાં આવ્યા છતાં ભાવનગરના

રાજકવિ શ્રી હરદાનભાઈ પિંગલશીભાઈ નરેલાનાં પોતાની પાસે થતાં વર્ષથી થાપણ તરિકે રહેલા વિદ્યાલય ફંડના રૂ. ૮૫૫ (અગભગ) હજી મુખી આપ્યા નથી. ફરીથી આ બેઠકે પ્રસંગે કહેવામાં આવતાં શ્રી હરદાનભાઈની સંદરહ રૂપિયા ચાલુ વર્ષના પોપ સુંદર મુખી માં આપી દેવાની ખાત્રીવાળી ખાસ વિનંતિ ઉપર ખ્યાન આપીને તે મુદત મુખીમાં સંદરહ રૂપિયા આપી દેવાની આ સમિતિ શ્રી હરદાનભાઈને લગામણુ કરે છે, એને આશા રાખે છે કે શ્રી હરદાનભાઈ આ વખતે પોતાના વચનનું જરૂર પાલન કરશે.

૪ થાગડ બિનજવામદાર માણુસોએ સંસ્થાને નામે (સંસ્થાની પરવાનગી લીધા વિના) નાણાં ઊધરાવેલ છે, એવા જાણુ થતાં આ સમિતિ દરાવે છે કે આ બાબતમાં એક ચેતવણી પ્રસિદ્ધ કરી જનતાને માર્ગદર્શન કરાવવા માટે મંત્રાંએ યોગ્ય કરવું.

૫ આ સમિતિ દરાવે છે કે, મોલા (બોળકા)ના રહીશ શ્રી રંદાવનભાઈ જટાણકર શાસ્ત્રીએ લખેલ 'સાંઈ નેહડી'ની વાત સંસ્થાને ખર્ચે છપાવી પ્રસિદ્ધ કરવી.

૬ આ સમિતિને એક સૂચન દ્વારા જાણુવામાં આવ્યું છે કે હાલમાં શ્રી ચા. હિ. સભા ચારણ સંમેલનના મુખપત્ર તરીકે જે 'ચારણ' ત્રિમાસિક પત્ર પ્રસિદ્ધિ યાવ છે, તે પત્રના ગુજરાતી વિભાગની છપાઈ, પ્રસિદ્ધિ તથા અન્ય વ્યવસ્થાને અંગે જે કંઈપણ ખોટ શ્રી ચા. હિ. સભા ચારણ-સંમેલન ને આવે તો શ્રી ચા. હિ. સભાએ તે ખોટની ભરપાઈ અર્થે કંઈક જવાબદારી પોતાના ઉપર લેવી.

આ બાબતમાં સંપૂર્ણ વિચારણા લીધા પછી આ સમિતિ એમ માને છે કે અત્યારના

સંજોગોમાં શ્રી ચાં હિં સમા આવી જાતની જવાબદારી પોતાને શિર લેવાને અશક્ત છે.

૭. 'શ્રી હાલાર માર ચારણ મંડળ' ના રિપોર્ટના પૂંદાની અંદર તથા કવિરાજ શ્રી માવદાનજી બીમજીભાઈ રતનુએ રચેલા પુસ્તક 'શ્રી યદુવંશ પ્રકાશ' માં ચારણોના પાંચ બેદો વિષે જે હકીકત પ્રસિદ્ધ થઈ છે તેમાં રીતરિવાજ, પહેરવેશ વગેરેનું જે લખાણ છપાયું છે તેનાથી ઘણાં અધુરોની લાગણી દુઃખાઈ છે એમ જાણવામાં આવતાં આ સમિતિ 'શ્રી હાલાર માર ચારણ મંડળ'ના પ્રેમુખ, મંત્રી તેમજ અન્ય કાર્યકરો તથા કવિરાજશ્રી માવદાનજી બીમજીભાઈ રતનુ (કાળોવડ) ને ખાસ વિનંતિ કરે છે કે ચારણ જાતના અંકય તથા ઉન્નતિને દક્ષમાં રાખીને આવી લાગણી દૂલવનારી વસ્તુઓ પ્રસિદ્ધ ન કરવાની કાળજી રાખવાની કૃપા કરેવી.

શ્રી વિં ૦૫૦ સમિતિની જોડકમાં પસાર થએલ હશે—

૧ શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણ-વિદ્યાલયના ગૃહપતિ તરફથી વિદ્યાલયના મંદાનમાં વધારો કરવાની થએલ માગણીને આ સમિતિ યોગ્ય માને છે અને હરાવે છે કે પ્રતિનિધિમંડળ રજવાડાઓમાં જઈ આવી મદદ મેળવી આવે ત્યાં સુધી આ કાર્ય મુગ્ધતી રાખવું. પરંતુ કોઈ સંજોગવશાત્ પ્રતિનિધિમંડળ ન જઈ શકે તો આવતા વર્ષે (સં ૧૯૯૫ ના એન મુદ ૧ પટ્ટી) શ્રી પ્રમુખ સાહેબની પરવાનગી લઈને યોગ્ય મંદાન વધારો કરવો.

૨ વિદ્યાલયના ગૃહપતિ તરફથી વિદ્યાલયની દક્ષિણ બાજુની પાતર દરબારી જમીન ખરીદ કરી લેવાની સૂચના મળતાં સદરજી બીન ખરીદવાનું આ સમિતિ યોગ્ય માને છે

તથા હરાવે છે કે ગૃહપતિએ આ બાબતમાં યોગ્ય પગલાં લેવાં.

૩ ભાડલાના વિદ્યાર્થી વાલાભાઈ સાગડાની રૂબરૂ અરજ ઉપરથી આ સમિતિ હરાવે છે કે વિદ્યાર્થી મજકુરે નિયમ મુજબ વિદ્યાલયમાં દાખલ થવાની શરતો પૂરી પાડી નથી, છતાં પણ તેના સ્થિતિ-સંજોગોને ધ્યાનમાં લઈ તેને વિદ્યાલયમાં ભિલકુલ મારી વિદ્યાર્થી તરિકે સગવડ આપવી.

૪ રામપરાના વિદ્યાર્થી રામદાન દેવીદાન લાંગાની રૂબરૂ અરજ ઉપરથી તેના સ્થિતિ-સંજોગોને ધ્યાનમાં લઈ તેને વિદ્યાલયમાં સગવડ આપવાનું આ સમિતિ હરાવે છે.

શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલયમાં પોપ મુદ ૬ નો રાજ તેનો વાર્ષિક મહોત્સવ જિજ્વાયો.

શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય માટે ફંડ બિયરાવવા જનાર પ્રતિનિધિમંડળે હવે સુધી કંઈ કંઈ નથી, એ ઘણી દુઃખની વાત છે. કવિરાજ શ્રી રામદાનજી તૈયાર છે, પણ ખીન સમયોની અગવડતાને અંગે વિવ્રમ થઈ રહ્યો છે.

શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય માટે ફંડ બિયરાવવા તથા શ્રી ચાં હિં સમાના પ્રચાર અર્થે શ્રી જયમલદાનજી શિવદાનજી પાવક પ્રથમ ગુગડાતના પંચમહાદય, ખેડ તથા અમદાવાદ ગિલ્લાઓમાં ફરી આવી દમણમાં ચરાદરી, વડિઆર તથા ઉત્તર ગુગડાતને પ્રવાસે જઈ આવ્યા. સર્વે ચારણોએ તેઓને સારી સત્કાર આપી હતી.

શ્રી મેરલા મેઘાણુંદમાઈ લીલાને તેમની આરણ્યસાહિત્ય અને લોકસાહિત્યની સેવા બદલ પોરબંદરનાજા શાહ સોદાગર શ્રી નાનજીભાઈ કાળીદાસ મહેતા તરફથી એક સુવર્ણચંદ્રક (સોનાનો ચાંદ) અર્પણ કરવામાં આવ્યો. આ ચંદ્રક અર્પણ કરવાની ક્રિયા પોરબંદરના મહારાણા શ્રી નરવરસિંહજી સાહેબ બહાદુરનો શુભ દરસ્તે તા. ૮-૧-૩૯ ના રોજ પોરબંદર મુકામે થઈ હતી.

લોકી (કોશિયાવાડ) ના સાહિત્યપ્રેમી યુવાન હરિશંકર સાહેબે પણ મેરલાને તેમની ઉપરોક્ત સેવા-યોગ્યતા બદલ ૧૦૦ રૂપિયાનું વર્ષાસન શાંધી આપી હમણાં પોતાના રાજકીય ખનામ્મા છે.

ગોંડલના યુવાન કવિશ્રી મોગી કૃત 'મે'લોના મે'લથી વાંઝી' અમને અમારી હૃંપડી' નામક લોકપ્રિય ગીતથી મેરલા લીલાએ 'પંચ છંદિયા રેકડ'માં ડી. એ. ૫૫૧૪ નંબરની રેકડ'માં આરેક માસ પૂર્વે ગિતરોંગું હતું. એ રેકડ બહાર પડી ચૂકી છે. હજારો દેખાતે હજારો મૂકનાર એ ગીતની રેકડો ચુપી અને સંગીતપ્રેમી આરણ્ય બહુઓ પોતાને ત્યાં વસાવવાનું ચૂકે નહિ.

સામરડા (પાટણપુર રાજ્ય) નિવાસી શ્રીયુત્તમજીતદાન પ્રતાપસિંહ કંજોટકે જેઓ મેટ્રિક થઈને પાંચ છ વર્ષથી વડોદરા રાજ્યના પોલીસ ખાતામાં જોડાયેલા છે, તેઓ આજુ સાલે વડોદરાનાં પોલીસ ટ્રેનિંગ સ્કૂલમાં ફર્સ્ટ ક્લાસમાં પાસ થયા છે.

અ. ભા. ચા. સંમેલનના પંચમ અધિવેશન (રાજકોટ)ના સંક્ષિપ્ત હેવાલ સાંભળે તો સાં હિં સભાનાં ચતુર્થ અધિવેશન (રાજકોટ) નો સુદર-દળદાર રિપોર્ટ પ્રસિદ્ધ થઈ ગયો છે. સાં હિં સભાનાં જે મેમ્બર બહુઓને તે ન મળ્યો હોય, તેમણે તેના મંત્રીજીને લખીને મંગાવી લેવા તત્ત્વનીય કરવી.

એક ઉત્તમ સામાજિક સુધારો

મોડવદર (કચ્છ)ના વતેની કવિશ્રી રવાજી મંજુજી રતુએ તેમનાં દાદીમા શ્રી ગંગાબાઈનો સ્વર્ગપાસ થતાં કારણ કરવાના વિકૃત રિવાજને તિલાંજલી આપી. ૪૨૫) ઢારી ધર્માંદા આપી છે. તેમણે આવી જાહેર હિમત બતાવી સાતિમાં જે ઉત્તમ દાખલો બેસાડ્યો છે, તે બદલ અમારાં હાર્દિક અભિનંદન. અન્ય યુવાન બહુઓ આનો દાખલો લેશે ?

શોક-સમાચાર

અ. ૧૦ કવિશ્રી શાહુલજી ગાંગડા

ઉત્તર ગુજરાતમાં આઠાણુવાડા ગામના નિવાસી કવિશ્રી શાહુલજી રૂપશીભાઈ ગાંગડા વિગત પોપ સુદિ ૧૫ ને શુક્રવારને દિવસે ૬૨ વર્ષની ઉંમરે દેવલોક પામ્યા. સમસ્ત ઉત્તર ગુજરાત અને વડિયાર પંથકમાં એ પ્રાચીન શેઠીના અંતિમ કવિ અને અર્જુન વાર્તાકાર હતા. જૂની કવિતાઓના તો તેઓ લંડાર હતા. હજારો કવિતાઓ તેમને કંઠાય હતી. પાટણુવાડા પંથકમાં રાજપૂત અને અન્ય સમાજમાં બહુમાન હોવા છતાં તેઓ એક નિરભિમાની અને સાદાંધર્મી ભરપૂર ભક્ત ચારણ હતા. જૂના જમાનામાં બિછર્પાં હતા, છતાં તેઓ સમયાનુકૂલ સુધારાને માનવા. તેમણે કન્માવિક્રય સંબંધી એક કાવ્યગ્રંથ પણ લખ્યો છે. અમારા તો તેઓ ખાસ મુરખી હતા. તેઓ પાછળ બે નાની ઉમરની દીકરીઓ ચૂકી ગયા છે.

તેમનાં પત્નીનો ગયે વર્ષે કરુણ રીતે દેહાંત થયેલો. એમના નિધનથી ચારણ કામને ભારે ખોટ પડી છે. પ્રભુ એમના આત્માને શાંતિ આપો.

સ્વ૦ સર સયાજીરાવ ગાયકવાડ

વડોદરાના વિશ્વવિખ્યાત નરેશ સર સયાજીરાવ ૭૬ વર્ષની ઉંમરે સ્વર્ગસ્થ થયા. હિંદમાં ઘણાં દેશી રાજ્યો છે, પરંતુ શ્રીમંત સયાજીરાવે પ્રગ્નની સર્વાંગીણ ઉન્નતિ માટે જેટલું કર્યું છે, તેટલું તેમાંના કોઈપણ નરેશ કર્યું નથી. જો કે વડોદરા રાજ્યમાં વસંતો ચારણોની જાગીરા-ગિરાસ વગેરે આ મહાન નરપતિના શિક્ષાગુરુ ધણિપટના પ્રતાપે નામશેષ થતાં તેમનો ગુજરાતના હેલ્થ એક હજાર વર્ષના ઇતિહાસમાં સુવર્ણકાળ રૂપે ગણાયેલો. ૬૪ વર્ષનો સુદીર્ઘ રાજ્યકાળ ચારણો માટે તો દુઃખદ જ નીવડ્યો છે. છતાં યે શ્રીમંતે પંજાત કામોને જીવણી આપવા માટે ઉદાર સવલતો આપી હતી, અને તેમાં ચારણજાતિનો પણ સમાવેશ થતો હોવાથી તે દ્વારા જ એક બાંધુઓ બની જીવણી મેળવી શક્યા છે, અને જીમ્મો માટે તેનાં દાર પુલ્લાં રાખ્યાં છે. એટલે તેટલા પૂરતી ચારણ જાતિ તેમની આસારી છે. પ્રભુ એ પ્રગ્નપાલક મહાન નરપતિના આત્માને શાંતિ આપો.

સ્વ૦ ચારણકુળભૂપણ કવિરાજશ્રી પિંગળશીભાઈ નરેલા

ગુજરાત, ૬૨૭ અને કોઈંયાવાડના ચારણ-સમુદાયનાં બીજમ પિતામહ, પૂજ્ય કવિરાજશ્રી પિંગળશીભાઈ નરેલાનો ૮૨ વર્ષની જૈ ઉંમરે વિગત ફગણ સુદિ ૧૨ ની રોતે સાડાચાર વાગ્યે ભાવનગર મુકામે સ્વર્ગવાસ થયો.

પૂજ્ય પિંગળશીભાઈના નામ-કૃતિથી કાણ અજ્ઞાણ છે? એમનો પરિચય કરાવવો એ તેમને અપ્રસિદ્ધ કરાવવા જેવું છે. એમનું સ્થાન ચારણ જાતિમાં અજોડ હતું. એક કાળે એમનાં પ્રભુભક્તિનાં પદો પર ચારણસંભાળ આફરીન હતો. એમણે એક રાજકવિ કરતાં ભક્તકવિ તરીકે છવન-છંપી જાણ્યું છે. તેઓ મધ્યયુગી સંતોના પથગામી હતા. ભાવનગરના પ્રતાપી ગોદિસ નરેશોએ તેમના એ સંતહૃદયને પ્રેરણાજનક પાઠ સદા પદ્મવિત રાખ્યું હતું. એમનો અડીખમ દેહ-આંધો જોઈ જોધપુરનરેશ મહારાજ ભાનસિંહજીની 'દેહ દગજ દીસતા ડારણ, રાજાં રૂચિ શોમે કવરાજ' એ ગીત-પદિત યાદ આવતી. સમસ્ત ચારણ જાતિ એમને પૂજ્ય દષ્ટિથી જોતી. એમના જેવા એક મહાન વ્યક્તિના નિધનથી લૂટાએલી ચારણ જાતિ વધુ લૂટાઈ છે. એવા યશસ્વી પિતાના સ્વર્ગવાસથી તેમના સુપુત્રો શ્રીદેવદાનભાઈ અને શ્રીજોગદાનભાઈને જે દુઃખ થયું છે, તેમાં અમે ભાગ લઈએ છીએ. પ્રભુ એ મહાન આત્માને શાશ્વત શાંતિ આપો એજ પ્રાર્થના.

“चारण” वर्ष में चार बार विजयादशमी, वसंतपंचमी, अक्षयतृतीया और
रक्षाबंधन पर प्रकाशित होगा।

वार्षिक मूल्य दो रुपये होगा और यह सर्वथा अग्रिम लिया जायगा।

चारण जातिकी सर्वांगीण उन्नति के साधक लेखादि के साथ समयानुकूल अ
विषयों के लेखादि को भी “चारण” में स्थान होगा।

केवल वे ही लेखादि “चारण” में छप सकेंगे जो एकही तरफ़ शुद्ध एवं स्पष्ट
लिखे हुए होंगे।

“चारण” में छपने के लिये हिंदी भाषा के लेखादि डा० ईश्वरदान आशिया,
ग्राम-मंगदिया, पो० नाथद्वारा (मेवाड़-राजपूताना) के एवं गुजराती भाषा के
लेखादि श्री खेतसिंह नारायणजी मिश्रण (गढ़वी), मु० मुढेरा, पो० पडापली
(उत्तर गुजरात) के पते पर भेजने चाहिये।

“चारण” के ग्राहक कानून एवं रुपयेपैसे संबंधी लिखापढ़ी श्री पिगलशीभाई
परवतजी पायक, श्री रुष्णकुमार-चारण-विद्यालय, भावनगर (काठियावाड़) के
पते पर करनी चाहिये और वार्षिक मूल्य उन्हींके पास भेजना चाहिये।

पत्र-व्यवहार के समय ग्राहकों को अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये
और जवाब के लिये टिकट भेजना चाहिये।

प्राप्त लेखादि तभी वापस किये जायेंगे जब इसके लिये डाक-व्यय प्राप्त होगा।

बिना नाम के लेखादि नहीं छापे जायेंगे, परन्तु कोई अपना नाम न छपवाना
चाहे तो ऐसा लिख दे।

(टाइटल पृष्ठ ४ का दोष)

और हो रहे हैं जो अपने पैसे के लिये, पैसेकी खातिर कागज़ों के दस्ते के दस्ते
गिने हुए चल जायेंगे, परन्तु “चारण” में जातिहित के लिये कुछ लिखना उन्हें
शायद दूर सर मात्तम होता है। इस मनोवृत्ति के लोगोंसे यह तो आशा ही कैसे
की जाय कि वे पत्र के ग्राहक बढाने या उसकी आर्थिक स्थिति सुधारने में
अपने प्रभाव का उपयोग करेंगे।

जाति के विद्वानों की जब हालत यह है तो अन्य सजातीयों के लिये कुछ
कहना ही व्यर्थ है। सम्मेलन की चाहिये कि पत्र-संचालन की व्यवस्था ठीक करने
की शक्ति योजना करे, बरना भय है कि फिर कहीं पत्र बंद न हो जाय।

आशा है, पाठकगण उपरोक्त स्पष्टीकरण के बाद पत्र के अनियमित प्रकाशन
के लिये प्रकाशक एवं सम्पादकों की क्षमा करेंगे।

“चारण” का अनियमित प्रकाशन

“चारण” का प्रथम अंक भी समय पर नहीं निकल सका और दूसरा अंक तो तब निकला जब कि तीसरा अंक निकलना चाहिये था। ऐसी दशा में तीसरा अंक स्वतः देखे छपेगा और चौथा अंक जो “चारण” के प्रथम वर्ष का आखिरी अंक होगा वह भी नियत समय—रक्षाबंधन (श्रावणी) पर निकल ही जायगा इसमें सन्देह है। इस अनियमितता के लिये सम्पादक व प्रकाशक दोनों ही कुछ २ दोषी हैं। किसका दोष अधिक, यह यदि पूछा जाय तो कहना पड़ेगा कि मुख्य दोष उस परिस्थितिका है जिसके कारण उन्हें दोषी बनना पड़ता है।

पत्र का सम्पादक मेवाड़ में, सहकारी सम्पादक एक मारवाड़ में एवं एक गुजरात में और प्रकाशक हैं काठियावाड़ में। पत्र समय पर निकले भी तो कैसे? किन्तु और कोई उपाय भी न होने से इस अव्यावहारिक व्यवस्था का आपदा के रूप में स्वीकार करना पड़ रहा है। इसके अलावा पत्र समय पर न निकलने का एक मुख्य कारण यह भी है कि सम्पादकों में से एक भी इस सम्पादन-कार्य को अपने निजी कामों से पहिले करने की हालत में नहीं है। अतः यह कार्य गौण रूपसे होता है। मारवाड़ के सहकारी सम्पादक महोदय राज्य में नौकर हैं, सुना है डी० लिट्ठ० की उपाधि के लिये तय्यारी कर रहे हैं और अ० भा० चारण सम्मेलन के प्रधानमंडित्व का भार भी वहन कर रहे हैं। ऐसी दशा में ये सज्जन, यदि पत्र के लिये एक ठेका-सा ईश्वरभक्ति संबंधी अपना लिखा हुआ निबन्ध और कुछ ऐसे ही छप्य आदि भेज कर अपने हिस्से के सम्पादन कार्य की इतिकर्तव्यता मान बैठ तो क्या ठीक नहीं है? सम्पादक स्वयं ऐसी स्थिति में है कि उस पर जो यह भार डाला गया है वह उसे तैसे निभ रहा है वही गौणमत है, क्योंकि उसकी निजी परिस्थिति ऐसी ही है। अब रह गये गुजराती सम्पादक महोदय। वे स्वयं अभी कल तक बड़ौदा के हेनिंग कॉलेजके विद्यार्थी थे और अब सिर्फ पंद्रह-बीस दिन से अपने गाँवमें शिक्षक की नौकरी पर नियुक्त हुए हैं। इतना होते हुए भी यही सबसे अधिक सम्पादन-कार्य में ध्रम कर रहे हैं। प्रकाशक महोदय प्रायः बीमार रहते हैं।

इस हालतमें जाति के विद्वानों की फिर यह विलचस्पी है कि डा० सा० केसरीसिंहजी (कोटा), श्री अक्षयसिंहजी (अलवर), श्री मोतीसिंहजी वारहठ, श्री आनंदानजी वारहठ और श्री उदयसिंहजी धुधियाड़िया (जोधपुर), श्री किशनसिंहजी महड़ (बीकानेर), श्री जीवणलालजी वरसड़ा (भादरवा), श्री भगवतीदासजी रोहड़िया (शिरडी) एवं श्री नारणभाई रोहड़िया के अतिरिक्त आज तक किसीने एक लाइन तक लिख कर इस कार्य में सहयोग नहीं दिया। ऐसे प्रतिभाशाली युवक विद्वान भी जाति में हैं जो विभवविशाल में सर्व प्रथम आये, परन्तु वे भी “चारण” में कुछ लिखने का कष्ट स्वीकार नहीं करते। कई बी० प०, एम० प० और पल्० पल्० बी० हैं—(शेष डाइरल पृष्ठ ३ पर)

ॐ

श्री जगदीश्वरी विनयते

चारणा

अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन

का

त्रैमासिक मुखपत्र

वर्ष १]

अक्षयतृतीया

[अङ्क ३]

विक्रम सम्बत् १९९६

सम्पादक :

ठाकुर ईश्वरदान आशिया

सहकारी सम्पादक :

भैरव शुभकण कधिया, M. A. LL. B.,

गुजराती विभाग सम्पादक :

खेतसिंह नारायणजी मिश्रण

प्रकाशक :

शंकरदान जेठीभाई देया, लॉयडी

वार्षिक मूल्य २)]

[एक अङ्क के III)

जा एवं राजपूत भी ऐसे हैं जो चारण जाति परम्परागत ऐक्य एवं प्रेम-संबंध को अधुण न्याये रखना चाहते हैं, पलड़ा किस तरफ का गरी होगा यह समय ही बतावेगा।

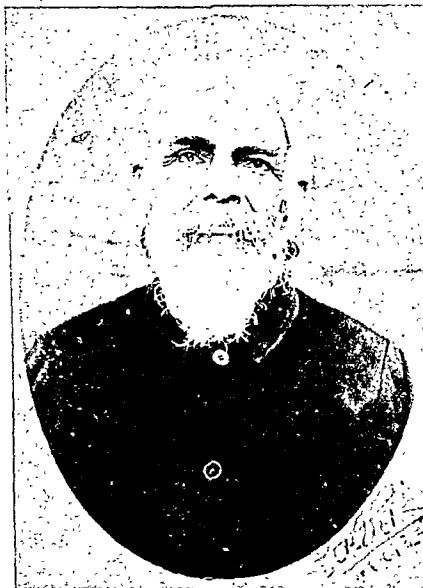
अब हम थोड़ा अपनी तरफ भी देखें कि हमारे प्रति ऐसी कुलित भावना की जिम्मेदारी हम पर भी है या नहीं। लेखक के मत में इसके लिये राजपूतों से अधिक नहीं तो कम भी चारण दायी नहीं। उन्होंने ही अयोग्य राजपूतों को भी पांच पतों के लेख से दान में कर्ण, भोज, वीरता में महावीर अर्जुन; सत्य एवं ग्रन्थ-पालन में रामचन्द्र और हरिश्चन्द्र तक कह कर उन्हें आसमान पर चढ़ा दिया। और इस तरह अपने-आपको बहुत ही गिरा दिया। यह नियम है कि जो अपनी इज्जत खुद नहीं समझता उसकी कोई भी इज्जत नहीं किया करता। हमारी इस हीन मनोवृत्ति का दुष्परिणाम हमारे लियेता घातक हुआ ही है राजपूतों के लिये भी अच्छा नहीं हुआ, मर।

अब तक हमने बहुत संश्लेष में अपनी वर्तमान दशा का विवेचन किया वह प्रत्यक्षतः जाति के पुरुषवर्ग ही से सम्बन्धित है। जाति के शेष आधे भाग के लिये यहां कुछ न कहा जायगा तो यह वर्णन अधूरा ही रहेगा।

सारे मानव-समाज में स्त्री की महत्ता के में मतैक्य है। हिन्दू भी "पितृ-सत्त-

गुण माना" आदि कह कर इस महत्त्व को स्वीकार करते हैं। और हिन्दू जाति का अंगभूत चारण-समाज तो इस मानवशक्ति का विशेष रूप में आभारी है। चारण जाति की स्त्रियों में उठ सौ वर्ष पूर्व ही ये देवियां हो गई हैं जो महाशक्ति के अवतार मानी जा कर राज से लेकर रंक तक बड़े भक्ति-भाव से आज भी पूजी जाती हैं और जिन के प्रताप से चारण आज भी 'देवीपुत्र' कहलाने का गौरव पाते हैं। परन्तु आज चारणों की मातायें इस पवित्र देवी शब्द को सार्थक नहीं करतीं! उनमें भी अन्य साधारण स्त्रियों के समान ही ईर्ष्याद्वेष एवं कलह-प्रियता देखने में आती हैं। सारा-बहु, देवगनी जिझनी, नन्द-भावज या एक से दूसरी कोई भी घर में हो उससे प्रेमपूर्वक रहना आज कल बिरती ही स्त्रियों जानती हैं। सुत्ती, आलस्य प्रायः हर घर में छाया हुआ रहता है जिस के कारण न घर साफ-सुथरा होता है और न घर की कोई चीज। पुरुषों की ऊपर वर्णन की हुई अकर्मण्यता और अन्य कथित कारणों से गरीबी तो घर में घर किये हुए ही होती है और फिर पदों की अनावश्यक प्रका प्रचलित होने से स्त्रियों को महीने २, दो २ महीने तक नहाना नषीव नहीं होता है और न कपड़े ही इतने होते हैं कि उन्हें बदला जाया करे। इसलिये गंदे कपड़े रात-दिन पहिने रहने से और पौष्टिक भोजन न मिलने आदि के कारण स्वास्थ्य भी उनका जैसा-साहिये, वैसा-उत्तम नहीं रहता

राष्ट्र-धर्म पर सर्वस्व आहुति करनेवाले



देशभक्त कविवर ठाकुर श्री केसरीसिंहजी सा० सौदा,

प्रमुख—अखिल भारतीय चारण-संमेलन

आयु ६६ वर्ष

फोटो ता० ७-१-३८ (सं० १९९२ वि०)

देहा

अज्ञाँ उपस्थित अपुन में, केसर-से नरनाह।

भीते दिन जाते बिहद, क्यों न उठाते लाह ॥

श्री केसरमई घटी (कल्ल) के धनु-नृत्य से]

—श्री अक्षयसिंहजी रत्न (अलवर)

और फलतः न वह रूप-लावण्य हर जगह दिखाई देता है जो उत्तम स्वास्थ्य का प्रतीक है। जहाँ मानवों का यह हालत है तो उनके बच्चे-बच्चियों का जालन-पालन किस तरह का होगा। इसकी कल्पना सहज ही में की जा सकेगी। पाप-माता अपने बाल्यत्व-आय से पुत्र को और अपनी अपने प्रेम एवं अग्रहकार्य-उत्प्रेक्षितों से पति को संतुष्ट रखने में असमर्थ है। कई जगह पुत्रों का माताओं के साथ और पत्नियों का पतिव्रतों के साथ का व्यवहार भी सन्तोषजनक नहीं होता। कई जगह विधवायें उनके संबंधियों द्वारा गैरी-कपड़े तक के लिये काट पाती हैं।

हमारी जाति की स्त्रियों की इस दयनीय दशा में एक बात अवश्य ऐसी है जो उनके लिये शौर्य की है और वह है उनके सदाचार को। इस संबंध में आज भी वे आदरणीय एवं अनुकरणीय हैं। माना कि यक्ष-तक्ष शिष्यव्रत भी मुनी जानी हैं परन्तु आज के दूषित वातावरण में ऐसी शिक्षाव्रत अपवाद-स्वरूप ही सम्झी जाँगी, व्यतिरेक। आचार्य, गुरु, कल्पवृक्षों की समुचित शिक्षा को और भी ध्यान दिया जाय तो ऊपर दिखाये हुए दोष बहुत शीघ्र भिद जायें और वे मनुष्य श्रेष्ठ हो जायेंगे।

ऊपर के सब विवरण से यहाँ निष्कर्ष निकलता है कि चारण जाति की सामाजिक अवस्था भूतकाल में चितनी ही उन्नत रही हो, वर्तमान काल में वह सन्तोषजनक नहीं और यदि समय रहते उस पर ध्यान दिया जा कर सुधार

के कुछ कारगर उपाय शीघ्र नहीं किये गये तो भविष्य भी अन्धकारमय ही समझना चाहिये।

सम्मोहन ने अपने अधिवक्ताओं में इस अवस्था पर ध्यान दिया है और आवश्यक सुधारों के लिये प्रस्ताव पास कर जाति की अपनी दशा उन्नत करने का मार्ग दिखा दिया है। अब आवश्यकता है हर जगह ऐसे व्यक्तियों को जो सम्मोहन के प्रस्तावों का अमल में लाने का माहस दिगावें। यदि जाति के समझदार लोगों में यह माहस आ जाय तो अब भी हमारी सामाजिक अवस्था का सुधार जाना असाध्य नहीं है। सन्तोषप्रद रूप में नहीं तो भी शिक्षा का कुछ प्रचार हो चला है। जोधपुर के चारण छात्रालय की स्थापना से मास्वाट में इस दशा में अच्छी प्रगति है। उदयपुर व कोटा में भी छात्रालय स्थापित हो चुके हैं जयपुर व बीकानेर में एकत्रित धन से चारण विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं। अलग्गर में छात्रालय स्थापित हो जाने की संभावना है और अन्य स्थानों पर भी सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत रूप से शिक्षाप्रचार की तरफ प्रयत्न हो रहे हैं। ये शुभ लक्षण हैं। शिक्षित युवकों में और उनके सम्पर्क में आनेवाले में अपनी सन्तान को शिक्षित बनाने का अनुराग और हानिकार रुढ़ियों के प्रति मानसिक और वाचिक विरोध शुरू हो गया है। यह अनुराग एवं विरोध व्यक्तिगत उदाहरणों से सब जगह फैल सकता है जिस का परिणाम रुढ़ियों का नाश और शिक्षा का प्रचार अवश्यम्भावी है। जगद्वा, जाति के समझदारों में जातिहित की भावना से नम्र को हितवाने की और तदनुसार व्यवहार की समझ एवं साहस उत्पन्न करे।

तब और अब

(प्रथमांक से आगे)

(ले० राजस्थान-केसरी देशभक्त ठा० सा० श्री केसरीसिंहजी बारहद, कोटा)

राजा का व्यक्तित्व

यों तो प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में वैविध्य रहता ही है फिर भी एकीकरण की सामान्य पद्धति से मानवस्वभाव और चरित्र में सामंजस्य निरूपण करना समाजशास्त्र का सिद्धान्त है। उस निरूपण में कर्म, अकर्म, धर्म, अधर्म, नीति, अनैति आदि का विखेयण ही मनुष्यत्व के निखरा लेने की कसौटी है।

किसी जीवनसंस्कारबद्ध भावुक व्यक्ति के राजा चाहे देवताओं का व ईश्वर का अंश क्यों न प्रतीत होता हो, परन्तु राजा भी है आखिर मनुष्य नानधारी प्राणी ही। काम, क्रोध, लोभादि पङ्क्तिकारों से लिप्त साधारण से साधारण व्यक्ति में कोई भी राजा, केवल राजा होने से ही उत्पन्न नहीं उठता। अतः उसके व्यक्तित्व को भी मनुष्यत्व के नाते प्रारम्भिक दृष्टि से जांचना

होगा; और फिर, वह सत्ता का प्रतिनिधि होने के नाते विशेष कसौटी से कसे जाने का पात्र है।

असंस्कृत मानवस्वभाव में मनुष्यत्व और पशुत्व का संमिश्रण रहता है। सात्विक चरित्र के अनुपात में ही मानव मनुष्यत्व के निष्कट पहुँचा हुआ कहा जायगा और तामसिक चरित्र उसे पशुत्वमें ही व्यक्त करेगा। यही कारण है कि चरित्र के पैमाने से ही किसी भी समाज या राष्ट्र का उत्थान और पतन नापा जाता है। यह सत्य है कि सामान्य व्यक्ति की चेष्टा उतनी सामने नहीं आती जितनी राजकी, क्योंकि हजारों-लाखों आँखें उसकी ओर निरन्तर घूरती रहती हैं। अतः वह सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा भी दया का पात्र हो जाता है। यह उसका सौभाग्य समझा जाय या दुभाग्य !

राजा का व्यक्तित्व कैसा होना चाहिये इस संबंध में तो आर्यजाति के धृति, स्मृति, महामोक्ष, रामायण, शुकनीति आदि धार्मिक और राजनैतिक गद्दार ग्रंथों में आदेश और आदर्श भरे पड़े हैं। उन्हीं आदर्शों पर अति मान्यता होकर चलने के पुरस्कार में यह कहना अनुचित नहीं था कि “नराणां च नराधिपः।” परन्तु अब वे हमारे लिये काल्पनिक चित्र हैं। हमारा लक्ष्य तो वर्तमान राजाओं के व्यक्तित्व पर ही प्रकाश डालना है।

जहां विधानबद्ध राज्य-व्यवस्था है, जैसे कि इंग्लैंड, वहां राजा का व्यक्तित्व देश के हानि-लाभ, सुख-दुःख में महत्व नहीं रखता। परन्तु हमारे यहां राजारत्ता का सर्वोच्च केन्द्र एक ही राजा नामक व्यक्ति पर आ जाने से देश के सुख-दुःख, शान्ति-अशान्ति का वही मूल हेतु हो जाता है। हमारे सामने इंग्लैंड के साठे तीन राजा चले गये और षष्ठ जॉर्ज आ गये तथापि इस आने-जाने में न किसी का बना न बिगड़ा। परन्तु इधर किसी राज्यों में जानेवाले अच्छे-बुरे राजाओं की पुरानी जायमें (फर्मा) उठती रही और नयों के साथ सर्वथा नई जायमें बिछती रही। कौन कह सकता है कि उदयपुर के महाराणा सरूप-सिंहजी की दोस आर्थिक व्यवस्था, अंग्रेजों के महलों में आने पर मार्ग तक की गंगाजल से शुद्धि, महाराणाओं के भयपान न करने की पाषाणलेखबद्ध प्रतिज्ञा, महाराणा सजनसिंहजी

की देशकालानुसार बांधी हुई सुसंबद्ध राज्य-व्यवस्था, गौरवपूर्ण नीतिपटुता एवं महाराणा पतहसिंहजी का भारत के समस्त राजाओं और बड़े से बड़े ब्रिटिश अधिकारियों पर पड़नेवाला वह अनुपम प्रभाव, गवर्मेंट हिन्दू तक के कायल करनेवाला वह स्वाभिमान आज भी शीप है? यह मैंने केवल उदाहरणरूप से एक राज्य का नाम लेकर बताया है; बाकी इन समस्त राज्यों में इतना नाटकीय परिवर्तन हो गया कि जहां दिन था, वहां रात हो गई और रात थी वहां सुंधला दिन। कारण वही है, नये ने पुराने पर झाड़ दिया और नई लीला रचाई। इस अस्थिर व्यवस्था में किसी को यह सतिवना नहीं कि प्रजा का जीवन कल किस प्रवाह में बहेगा। जिस राज्यव्यवस्था से मान्य का कोई संदूध नहीं, वहां प्रजा के हृदयपट पर तो वही लिखा है कि “राजा करे सो न्याय, पसा पड़े सो दाय।” अर्थात् सब उस अलख भाग्य ही का खेल है। संक्षेप में हमारे राज्यों की दशा और दशाओं व्यक्तियों का भल-बुरा जीवन एक राजा के व्यक्तित्व पर ही निर्भर रहा है। ऐसी स्थिति में राजा के व्यक्तित्व को सामान्य उपेक्षा की वस्तु मानी ही कैसे जा सकती है।

आगे चलकर हम अधिकांश राजाओं की सामान्य दिनचर्या एवं भावोक्त कुछ दिग्दर्शन करेंगे। उससे स्पष्ट है कि उससे अपवादरूप से तो राजा साधारण सज्जन व्यक्ति के अनुसार ही

रहते हैं वे भी अक्रिय हो जाते हैं। निष्कर्ष
ही कि कथित राजभक्ति की पुरानी लहोर
र चलनेवाली बेचारी प्रजा जब राजा में सामान्य
मनुष्य जितनी भी सीलता आज कल देखती है
तो संतुष्ट हो जाती है। परन्तु आज सामान्य
मनुष्य भी राजाओं में दुर्लभ हो रहा है वहाँ
आर्ज-आदर्श राजन्‍यों की तो बात ही क्या?

इस पत्र के हेतुओं की उपपत्ति इतना
बुझ बख्ति नहीं है—

(१) जीवनमर, धनमर और राजमर वे एक
एक ही अन्‍य के मूर हैं। जहाँ ये तीनों
मरते हो जायें वहाँ अन्‍य का तो डिकना ही
क्या? इस तिसारे मर पर मनुष्य चले जाने—
कहते गंदनीय क्यों न हों? होंगे कभी। क्योंकि
पुनर्जन्‍म के पक्ष कहने हैं कि ये। इतिहास के परि-
शीलन में भी ज्ञान जा सकता है कि, जब
प्रतिपक्ष गवर्नर प्रजा के भावने उत्‍तरदायित्व
और बाहरी आवेशों में राजा के प्राय मुठों में
रहते हैं। एत मन्‍यत्‍व में परिचित निर-
मन्‍यत्‍व पर और प्रजा की धन-जन में प्रत्यक्ष
मन्‍यत्‍व के कारण पर ही राजसिंहासन
के पक्षे अवर्धित हो, वहीं राज का व्यक्ति
गंदनी, मरत, उत्‍तर एत प्रत्यक्षमन्‍यत्‍व भुंति
में, दुष्ट होना मन्‍यत्‍व ही है। किन्तु अब
हि मन्‍यत्‍व ही दुष्ट है। अब केवल ही भूरी भौंरी
की इत मन्‍यत्‍व। नि मन्‍यत्‍व मन्‍यत्‍व की अन्‍य

घूरती हैं, घूरती रहे। राजसिंहासन के पक्षों
का आधार ही दुर्गरे स्थान पर सिद्ध चुक। जन-
शक्ति, धन पर और धनशक्ति जूते के जूते
पर आ बहरी। अतः आंतरिक नियंत्रण हट जाने
से राजा के व्यक्ति का प्रजा के पक्ष में जन्‍म-
राल और विचित्र हो जाना ही स्वाभाविक हो गया।

(२) किसी भी राष्ट्र या जाति के जीवन का
आधार है उसकी भाषा और संस्कृति। भाषा-
परिवर्तन से संस्कृति स्वयं बिगड़ हो जाती है
संस्कृति बिगड़ने से प्राचीन व्यवस्थाबद्ध पद्धति
के विध्वंस होने में देर नहीं लगती। प्राचीन
पद्धति के अभाव में अपने आपसे उसी पूर्णत्व
में विकसित रहना हास्यास्पद हो गया है। राजाओं
के ह्रास की ओर परिवर्तन होनेका भी यही
अनुक्रम है। वे अपनी संस्कृति और पद्धति में
रहते हुए आज के जैसे बाट के पुतले बन नहीं
सकते थे। इसी में उत्‍तर की मृष्टनीति ने मयों
प्रथम इनमें अंग्रेजी भाषा के चाले में बैठने
के लिये ही इन राजाओं और इनके प्रधान
अंग उमरावों, मरदमों, जागीरदारों के लिये मंगल
कलेज, डेरी कलेज, राजकुमार कलेज, एडिगन
कलेज आदि विद्वत् शिक्षा के गांधी मंदिर किये
और विद्वत् के नाम पर राजाओं और मरदमों
का दण्ड-दण्ड कर इनके राजकुमारों आदि को
इन गांधी में रखा गया। कर्नल लेफ (प्रिंसिपल,
मैजिस्ट्रेट) के समय तक इन गांधी का कर्ण
ही मने गये, अब और कर्ण के पीछे की

हुए कहा कि “ आप भी तो देसी ही हैं न ? ” इस पर : महाराजा : खिसिया कर मुसकुरा दिये । लेखक की आंखों ने उस मुसकुराहट में छिपाई जानेवाली खिसियाहट में यही पढ़ा कि महाराजा अपने अंगरेजी में उठते हुए भाव का हिन्दी अनुवाद ठीक न कर सके । यह राजा अपने भाव पर नहीं, केवल भाषा पर थी । जहाँ सत्य के स्वीकरण में एक पक्ष में उपरोक्त महाराजा के लिये स्पष्ट संकेत है वहाँ यह भी स्पष्ट करता उचित है कि ऊपर भाषा और संस्कृति के संबंध में जो कहा गया है उसमें वर्तमान उदयपुर-महाराणा भूपालसिंहजी, कोटा के लोकप्रिय महाराज उम्मेदसिंहजी, सीतामऊ के राजारामसिंहजी एवं उनके उदीयमान राजकुमार रघुवीरसिंहजी जैसे कतिपय न्यूनाधिक अपवाद-रूप भी हैं ।

(४) राजाओं के घरों में विलासिता की पहिले भी कमी नहीं थी । परन्तु नई शिक्षा और नये प्रलेभनों ने संस्कृत की स्वाभाविक हकाबट को टुकटा कर यह कहावत चरितार्थ कर दी कि “ गिलेय और नीम चढ़ी ” । चारित्र्यभ्रष्टता ने उच्छास्व होकर सर्वतोमुखी प्रवाह बहा दिया । यह सच है कि सब यक़्सा नहीं है । प्रशस्त योग्य जीवनचर्यावाले राजा भी हैं ; परन्तु है आटे में नमक के बराबर । अधिकांश राजाओं के खानगी जीवन में जो रोमांचकारी रहस्यमय अंगरेजियों नमरूप में हैं, उनके संबंध में

दिग्दर्शन के लिये केवल इतना सा कह कर हम मौन ही रहेंगे कि—

“ धिक्कार है उन राजमहलों को,
जहाँ विष भर रहा ।
नारकी है दृश्य सब,
शतान ताण्ड्य कर रहा ॥ ”

राजा के व्यक्तित्व के नाते इस चारित्र्यदोष का प्रजा पर क्या भयंकर परिणाम होता है, यह अज्ञकारी दुनिया से छिपा नहीं । इसे छोड़ कर राजनैतिक दृष्टि से देखने पर भी कहा जायगा कि राजाओं की इस समय जो दुर्गति हो रही है, पूर्वजों के बाहुबल से उपार्जित अंगरेज जाति के जन्म से भी अति प्राचीन, नास्तिसाली राजसिंहासनों पर नटे हुए भी वे अनश्वर कठपुतली के समान इसारी पर नचाये जा रहे हैं—इसके लिये अंगरेज उतने दोषी नहीं यह दौर्बल्य इन राजाओं के वैयक्तिक दुर्धर्मा ही का परिणाम है । इनके लोभ और काम चसना के सबके सब कारणों से ऐतिहासिक विप्लव में चुपचाप जमा होते रहते हैं । वायरा जब अपनी नीति के लिये आवश्यक समझें हैं तब ऊपर से दो शब्द टपकते हैं कि “ या तो चुपचाप गद्दी छोड़ दो, या हमारे नि किये हुए अंगरेज के हाथ में समस्त राज्य सौंप दो—हाँ, ऐसी दसा में तुम्हारे नाम का प्रय अवश्य किया जायगा परन्तु खयाद रखो कि भी दखल दिया तो सदा के लिये राजधानी

दूर रख दिये जाओगे—यदि उपरोक्त बातें स्वीकार न हों तो अपने पुत्रों की जांच के लिये कमीशन स्वीकार करो।” वस, इस सहसा वज्रपात पर राजा भौंचक्का रह जाता है, उसके ए० डी० सी० और कृपापात्र बगलें ताकने लगते हैं। उस समय उसके दुश्चित्र एक-एक करके सब सामने आ खड़े होते हैं। दुनिया में रहते हुए भी वह कयामत का दृश्य देखने लगता है। उस दिन वह अपनी असलियत पर आंख मोलता है, अतः यह कहने की हिम्मत रख ही नहीं सकता कि “आने दो तुम्हारे कमीशन को।” लाचार रोते हुए आत्मसमर्पण कर देता है उसे दूसरे के हाथ की कठपुतली बनना ही पड़ता है। सत्य है “आत्मैव रिपुरात्मनः।”

इन राजाओं की व्यक्तिगत जीवनचर्या समान न होते हुए भी कुछ बातें ऐसी हैं जो सामान्यतः न्यूनाधिक रूप में प्रायः सब राजाओं में मिल सकती हैं। किसी में एक नहीं तो दूसरी होगी ही। ऐसी बातों का संक्षेप में हिन्दुस्तान में हो सकता है—

राज में जागना, दिन के आठवीं बजे बिस्तर से उठना, रात काम छोड़ कर शिकार के लिये भाग जाना, छोटे अर्थान्त्रिकों के आनेसे कम बुद्धि के गमसे उन कृपापात्रों में या तुलाने में फिर रहना, दिमाग लड़ने जैसे गूढ़ विषयों में गुंथला घर आधीन राजधर्मचारियों पर उन्हें

छोड़ देना, प्रजा से दूर रहना, मनतरंगों पर जीवन के क्षण व्यर्थ बिताना, राजकोष को बचोती मान कर मनचाहा खर्च करना या दिखावे के लिये हथखर्च (जरूरत से बहुत ज्यादा) लेकर उससे प्रादवेद व्यापार-लेनदेन करना और उस रकम को राज्याधिकार से बटोरना, अंगरेज चाहे किसी। हैसियत का क्यों न हो उसे खुश रखने में ही अपने सुख की गैरिटी समझना, कितना ही योग्य परन्तु देशी व्यक्ति या डेप्युटेशन मित्रता चाहे तो खुशामदियों में निरुल्लेख बैठे गये मारते या ताश के पत्ते खेलते हुए भी उत्तर दे देना कि अभी फुरसत नहीं, घर ही के सरदारों या प्रतिष्ठित नागरिकों को सौभाग्यवश कभी मिलने का मौका दिया भी तो चलती मुलाकात देना—जैसे कि अंग्रेज-अफसर साधारण हिन्दुस्तानी को देता है, देशी भाषा को त्याज्य समझ कर घर में भी अंग्रेजी ही का बोलवाला रखना, अंग्रेजी भाषा न जाननेवाले या देशी पोशाक में रहनेवाले को दूर से ही मूर्ख मान लेना, अपने किसी भी कर्म का समालोचना पर मुँह चढ़ा लेना, कृपापात्र होने मात्र से ही अयोग्य व्यक्तियों को राज्याधिकार में स्थान दे देना, प्रत्येक मार्गजनिक कार्य में चौक कर उसे तोड़ टाटने में अपनी सावधानता समझना, स्वयं, स्वगणत आदि गण्यों में भ्रष्ट कर इन्हीं में राजद्रोह घुसा देना, गरीबों के मनष और कुछ गन्धधार तक डगर और फिर घोर कृपण हो जाना, और अगरंग, मद्य, हाहा-हीही,

ने इनके फौलारी और मनोवांछित बनाया जिनमें कोई कच्ची कौड़ी ढल जाने की गुंजाइश न रहे। जिस समय इस कैलेज-संबंध में श्री डॉडिन्सन, श्री जाडन और श्री हिल लार्ड कर्जन का प्रतिनिधित्व कर रहे थे उस समय कुछ मन-चले सरदारों ने जिनमें लेखक भी एक था, आवाज़ उठाई कि इन कैलेजों का पाठ्यक्रम हीन और घोर है अतः यहां भी भारतीय युनिवर्सिटियों का पाठ्यक्रम रहे, वहीं बी० ए०, एम० ए०, की डिग्रियां रहें; परन्तु दुत्कार दिये गये। डॉर्ड कर्जन की सरकार ने इन गुंडिया सानों का युनिवर्सिटी की शिक्षा से अद्वैत रखने में ही मिष्टिमात्सीति की सफलता देखी; क्योंकि युनिवर्सिटियों की शिक्षाप्रणाली सदेव हेतु हुए भी उनमें से न्यायमूर्ति रानादे, सर टी० माधवराव, लोकमान्य तिलक, गोखले, लाजपत, महात्मा गांधी, सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू जैसे निकल सकते हैं। परन्तु यहां तो उद्देश्य है इन 'गांड के पूरे और अङ्ग के अधो' को प्रारंभ ही से विदेशी भाषा और संस्कार सस्कृति में ऐसे डांक देना कि जिसके अंधकार में न अपना स्वरूप दिखाई दे न संसार को ही ठीक देख सकें। नाम मात्र की शिक्षा के साथ खूब खेलकूद और विलायती विलासिता की मोहिनी के रंग में रंगे जाकर ऐसे विचित्र प्राणी बनाकर निकाले जाते हैं कि जो घर के न घाट के। लेखक ने अनेक राजाओं को कहते सुना है कि कोई बात अंग्रेजी में लिखी हो तो हम फौल समझ जाते

हैं। हिन्दी तो बाधिया है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भरतपुर के अधिवेशन में सम्मेलन के प्लेटफॉर्म से हचरों व्यक्तियों को सबेना कर जिनमें कविमन्नाडू श्री रवीन्द्रनाथ टागोर भी थे, भरतपुर के स्वर्गीय नरेश कृष्णसिंहजी : कहा था कि "मुझे कहते हुए दुःख होता है कि हिन्दी मेरी मातृभाषा नहीं है। मेरी मातृभाषा तो अंग्रेजी बन गई, क्योंकि मैं मेरी माता का गोदी में नहीं पला, पला हूँ इंग्लिश लेडियों का गोद में, और उन्हीं की लंबी सोहबत में। इस समय जो कुछ हिन्दी बोल रहा हूँ वह में आंतरिक अंग्रेजी भावों का अनुवाद मात्र है। मैं अपने भावों को अंग्रेजी ही में ठीकर प्रगट कर सकता हूँ, हिन्दी में नहीं। मुझे स्वप्न भी अंग्रेजी में ही आते हैं। महाराजा कृष्णसिंहजी इस समय हमारे संसार में नहीं रहे परन्तु उनके प्रतिमूर्तियां अनेक राजमहलों पर आज बंठे हुई हैं। ऐसी दशा में राष्ट्रभाषा एवं अन्य देश भाषाओं के मार्मिक कवि एवं दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्रों के वे धुरंकर लेखक जो देशोद्धार के साथ राजाओं की भी हितैषिणा रखते हैं, अपने सारगर्भित भावों, विचारों और एलीलें के द्वारा देश की वास्तविक परिस्थिति पर राजाओं का ध्यान आकर्षित करने की धारणा रखते हैं, वे महान् भ्रम में हैं। राजा लोग अपनी भाषाओं को तो प्रायः छूते ही नहीं। अंग्रेजी पत्रों से भी व्यर्थ सरपच्ची करना पसंद नहीं करते। अलबत्ता इलस्ट्रेटेड, वीकली लंडन, स्पीयर, फ्रीलड, पिकचरल एंजुवेशन, पंच, मोटर ऐसे

विलायती पत्रों के आह्वक रहते हैं जिनमें विलायती खी-सौंदर्य, खेल, शिकार एवं कुत्तों की जातियों की ही विशेषता रहती है। इन पत्रों में भी केवल चित्रों को ही उत्तुम्भता से देखते रहते हैं! कोई कोई कभी कालक्षेप के लिये प्रेमी-प्रेमिकाओं के अंग्रेजी उपन्यास भी उठा लेते हैं, यह दूसरी बात। घर में भी रात-दिन अंग्रेजी ही बोलना पसंद करते हैं, हो चाहे वह एक बूढ़ा के जैसी हो या उससे भी गढ़े बीती। ये इस शिक्षा-यात्रे में डल कर न रहे हंस और न रहे कौशा। ऐसी दशा में यह तो कोई आशा ही कैसे करे कि ये पुरानी राजप्रथा के अनुगार ब्राह्ममुहूर्त में स्नान करके ईश्वर-उपासना में बैठें और शान्तिपूर्ण दरबार भरे हुए गीता, महाभारत, रामायण आदि की कथायें सुने और ईश्वरतत्व या राजधर्म की विवेचना में सूर्योदय के सात्विक समय का लाभ लें। अब तो प्रातःकृत्य है “इंग्लिश मॉर्निंग” अर्थात् प्रहर दिन चढ़ने बाद बिस्तर छोड़ना और सबसे पहिले मिगारेट का धुआँ उड़ते हुए शेविंग शक्य सामने रख कर मूँछें पोटना और चाय पीकर शिकरी बटुक या पोले को मोलट उठाना। यह है भाग्य-परिवर्तन के गाय हो आर्य-संस्कृति का अन्त।

(३) उपरोक्त शिक्षा की रंगाई पर चिट्ठिचिनी लगा कर रंग पत्रा करने के लिये आवश्यकता हुई विलायतयात्रा की और लगे उधर धकेले जाने। कुछ मोले लोगों को आशा हुई थी कि हमारे

नरेश विलायतयात्रा से लोकतंत्री शासन का व्यापक और उदार अनुभव प्राप्त कर के अपनी प्रजा को उन्नत दशा की ओर ले जाने में योग्य सिद्ध होंगे; किन्तु इस यात्रा के चसके का परिणाम निकला विपरीत। ये बोये दिमाग ऐशआराम भोगविलास की अनुपम सामग्री के चाकचिक्य में फँस कर पूर्वसंथित राज्यकोप के लाखों रुपये की मुक्तहस्त आहुति डाल कर वहाँ से विलायती विलासिता के शिवाय ला ही क्या सकते थे? यदि कुछ सीखा तो यही कि संसार में यदि मनुष्य हैं तो इंग्लैंड में, परिस्नान है तो पेरिस में, जीवन-कुतार्थता है तो यूरोपनिवास में। और हाँ, इंडिया व इंडियन्स? नोन्सेंस, डैम। यही कारण है कि प्रायः इस समय के नवयुवक राजा गोधूमनर्ण की संतान पैदा कर चुकने पर भी भारतीय रंग और रहन-सहन से पूरी नफरत करने लगे, अपनी प्रजा से दूर से दूर होते गये। इतनी हो नहीं, अंगरेजों की सोसाइटी के बिना चैन मिलने में अपनी राजधानियों को भी विलायत का रूप देने के अनर्थ को न समझ सके। उदाहरण देखा लिया जाय। राजस्थान में आज कल जहाँ की चर्चा खूब है, वहाँ के वर्तमान महाराजा विलायती शिक्षा पाकर प्रथम बार लौटे और अपने पड़ोसी राज्य में बेहमान हुए। नथ वहाँ के महाराजकुमार से प्रसंगागत बात करते हुए बोल उठे कि “देशी आदमी मूर्ख और बेईमान ही होते हैं” इस पर महाराज-कुमार ने प्रियव्रत को मीठी चुटकी लेते

मेटर, वायुमान, शिकार, व्यवहार की सुख-
तारों में ही राजत्व की कृतकृत्यता मान लेना।

इन सब बातों के साथ जो एक बात इनके परिवर्तन और पतनकी मूलभूत सत्तामें समानरूप से पाई जाती है वह है इनके स्वाभिमान का नाश। इस आत्मस्वरूप की विरुद्धि के कारणों का उत्प्रेष हम ऊपर कर ही चुके हैं। यदि ये राजा अपनी आधीन प्रजा के साथ ऐंठने को ही स्वाभिमान मानते हों तो वे महान् भ्रम में हैं। उस मिथ्याभिमान में तब ही क्या है? वह तो गौरवभ्रष्टता का प्रत्यक्ष चिह्न है और उसको कोई भी वेहयाई के नाम से अधिक पहिचान सकता है।

मेवाड़ के महाराजाओं को छोड़ कर राजस्थान के राजाओं में देशाभिमान, कुलभिमान एवं धर्माभिमान की इतिथी तो मुसलिमशाही के आगमन के साथ ही हो चुकी थी। महाराजा-वंश की यह वृत्ति भी मराठशाही के समय से शिथिल हो चुकी। फिर भी हमने अपनी आयुष्य के प्रथमभाग में इन राजाओं में स्वाभिमान की जो शेष झलक देखी उसका भी आन कहीं पता नहीं। उदयपुर के महाराणा राजनसिंहजी, फतहसिंहजी, धूँधी के महाराजराजा रामसिंहजी, एक छोटी-सी रियासत बांसवाड़ा के महाराजलक्ष्मणसिंहजी आदि स्वाभिमानी नरपतियों की वह तेजस्विता आज भी हमारे स्मृतिपटल पर

प्रकाश डाल रही है। उस झलक को हम तीन-चार तरह के उदाहरणों से स्पष्ट करेंगे जिससे पाठक तब और अधिक मार्मिक स्वरूप सहज जान सकें।

(१) संवत् १९४० में उदयपुर के महाराणा राजनसिंहजी मेहमान होकर जोधपुर गये वहाँ जोधपुर-महाराजा जसवन्तसिंहजी ने महाराणा से कहा, “कि मैं एक असह्य घटना से विचलित हो रहा हूँ और वह यह है कि मेरा ननिहाल और ससुराल नवानगर (जामनगर) में है वहाँ वे वर्तमान नरेश जाम बीभाजी अपनी एक मुसलमानी खवास (पासवान, रखैली) के पेट से पैदा होनेवाले लड़के (काढ़ूमा) को गोद लेकर राजगद्दी का वारिस करार दे दिया है और गवर्मेण्ट ने भी स्वीकार कर लिया है। इससे हमारा उस राज्य से सदा के लिये संबंध नष्ट होने जा रहा है। मैं अकेला कुछ नहीं कर सकता, आपकी मदद चाहता हूँ। महाराणा सदा हिन्दूधर्म के रक्षक और राजपूत जाति के शिरामणी रहे हैं”। इस पर महाराणा राजनसिंहजी ने सहायता देना स्वीकार कर लिया। दोनों ने सलाह करके उज्जदारी के तौर पर दो तार और दो खरीते गवर्मेण्ट-हिन्दू के नाम लिये और महाराजा जसवन्तसिंहजी ने वे अपने मुसाहिब पंजानी श्री हरदयालसिंह के साथ जोधपुर के तत्कालीन रेजिडेण्ट कर्नल बेली के पास भेज कर ज़ायी कदवाया कि जामनगर के जाम

साहिब बीभाजी ने मुसलमानों के पेट से पैदा हुए लड़के को अपनी गद्दी का हकदार कायम करके गवर्नर से मजूरी ले ली है। उसके उच्चात वायत महाराणा साहिब उदयपुर और मैं दोनों ही तार व बाजाबा खरीते देते हैं वे सरकार अंग्रेजों में पहुँचा दें। पोलिटिकल रेजिडेंट ने वे तार-खरीते उस समय के एजेन्ट दू दि गवर्नर जनरल राजपूताना कर्नल जाडफोर्ड के पास भेज दिये और सूचना दे दी कि दोनों ही रहस आप मे अजमेर में मिलेगे।

महाराणा सज्जनसिंहजी उदयपुर लौटते समय महाराजा जसवन्तसिंहजी के साथ अजमेर पहुँचे। वहाँ ए० जी० जी० कर्नल जाडफोर्ड दोनों रहसों से मिलने के लिये किशनगढ़ की कोठी पर आये। उस समय ए० जी० जी० ने कहा “कि आप दोनों रहसों ने जामनगर के मामले में तार व खरीते भेजे थे वे सच्चे हैं, क्योंकि हरएक रहस को अपनी ही रियासत के मामले में तहरीर देने व उच्चात पैदा करने का इस्तिथार है। कोई रहस दूसरी रियासत के मामले में दखल नहीं दे सकता। इसके अलावा राजपूताने की रियासत का कोई मामला होना तो किसी राम गुरुत में आपका कहना और मेरा गुना कुछ ठीक भी समझा जाता। मगर जामनगर काठियावाड़ में है इसलिए आपका उच्च करना बेजा है, आप अपने खरीते वापस ले लें जाम बीभा के शारी को हुई सन्धियों में कोई आनन्द नहीं है, वह अपनी गनेअंदाजुकी हुई मुगलमान औरन के पेट मे गुग उसी के नुके से पैदा हुए लड़के को अपना बलीअहद बनाना चाहता है तो उसे कैसे रोका जा सकता है। महाराजा साहिब

की तो कोई रिस्तेदारी भी नहीं है।” इस पर महाराजा जसवन्तसिंहजी तो चुप हो गये परन्तु महाराणा सज्जनसिंहजी ने उत्तर दिया कि किसी समय समस्त भारतवर्ष पर हम राजपूत जाति बहुत कम हो गई। फिर मुसलमान बादशाहों की लड़ाइयों में लाखों राजपूत मारे गये इससे हमारे राज्य गिनती के रह गये जिसका हमें दुःख है। अब इस अमन के जमाने में भी राजाओं की खानेअंदाज मुसलमान व अंग्रेज औरतों के पेट से पैदा होने वाले देगले लड़के रहस बना दिये जायेंगे तो ये रही-सही रियासतें भी मुसलमान व ईसाइयों की हो जायेंगी। इसको हम कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते। अपनी जाति की रक्षा करना हमारा फर्ज है। आप खुद अपनी फ़ैम व मजहब की तरफ़ी के लिये कैसी २ काशिशें कर रहे हैं? पादरी लोगों की मिशन को दूर २ सुल्कों में, बल्कि हमारी रियासतों में भी भेजकर हर तरह की मदद देते हैं और उनके रहने व गिरजा बगैरह के लिये ज़मीन आदि देने के लिये हम लोगों पर दबाव डालते हैं। आपको अपनी काम का खयाल है उसी तरह हमें भी अपनी काम का खयाल होना स्वभाविक है। क्या हम मनुष्य नहीं हैं। जामनगर काठियावाड़ में होने से क्या हुआ ! है तो राजपूतों का ही। मानूस होता है जाम का दिमाग थिगड गया है, मगर हमारा तो ठिकने है। हम इस तरह राजगद्दियों को भ्रष्ट नहीं होने देंगे। यह ठीक है कि आपका मानसुक्त काठियावाड़ में नहीं है। इसी लिये तो ये खर्गने आपके नाम नहीं बल्कि वायसराय के नाम हैं। रही मेरी रिस्तेदारी की बात। रिस्तेदारी दो-तीन पीढ़ी तक ही चलती है, मगर मेरा संबंध उगमे भी अधिक व्यापक और

विरस्थायी है। चाहे आप मानें या न मानें परन्तु चालीस में सनस्त संसार उदयपुर के महाराणा का हिन्दूधर्म कहना है और मैं भी अपनी उरा जिम्मेवारी को मानता हूँ। अतः जहाँ कहीं भी हिन्दू हो वहाँ तक मेरे अधिकार की सीमा है। यह भाषणा तो मुझ मेरी जाति के एक राजपराने का है और यहीं मेरे प्रकृत प्रतिवाद का कारण है। हम अंग्रेज सरकार के भी दोस्त हैं इसलिए नहीं चाहते कि व्यर्थ में ऐसा बगड़र उठे जो वायसरय को भी कठिनाई में डाल दे। इसलिए आप मेरे नाम से यह एक सलाह वायसरय को भेज दें कि वे जान विभा की मूर्खता पर स्वीकृति न दें। महाराणा के इस उत्तर पर ए० जी० जी० निरुत्तर हो गये और कहा कि ठीक है, मैं आपकी मन्त्रा से वायसरय को परिचित कर दूँगा और खुद भी कौशिल्य करूँगा। उम्मीद है, गवर्नमेंट जामनगर संबंधी फाइल आपके पास देखने के लिये भेज दे।

थोड़े ही समय बाद वह फाइल पोलिटिकल डिपार्टमेंट ने उदयपुर भेज दी। परन्तु दुःख है, इसी अरसे में महाराणा का स्वर्गवास हो गया। फिर भी परिणाम यह हुआ कि वह कादम्बर जामनगर का उत्तराधिकारी न रहा। कैसा स्वाभिमान भरा या सज्जन का वह अनुपम व्यक्तित्व।

कालान्तर में उसी जाम बीमांजी ने दूसरी बार उसी मूर्खता भरी सनक से अपनी उसी गायत्री ही किसी मुसलमानी के पेट के दूसरे लड़के जसवंतसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया उस समय किसी राजा ने यूँ तक न की, महाराज जसवंतसिंहजी भी मन-मसोस कर रह गये, क्योंकि सज्जन की तेजस्विता का बल संसार से

उठ चुका था। यह उदाहरण है हिन्दूधर्म की आमसुझावला भारत पर आत्मीयता का, कुलोन्मिमान का, स्वधर्माभिमान का और सर्वोपरि आश्रित स्वाभिमान का।

(२) सन् १९३७ में मेवाड़ के मगरा जिले के हजारों मीलों ने मद्रुमशुमारी पर एतराज करके राज्य के विरुद्ध चलवा कर दिया। उस प्रजाविद्रोह को शान्त करने के लिये महाराणा मज्जनसिंहजी ने अपने पूर्ण विश्वस्त प्रधानमंत्री गुप्रसिद्ध कविराजा श्यामलदासजी को फौज देकर मगरा जिले में भेजे। वे साम-दान आदि से युक्तिपूर्वक शान्ति-स्थापन में लगे हुए थे। कुछ समय बीतने पर सरकार-हिन्द ने महाराणा को लिखा की "इतने अरसे तक भी मेवाड़ में नीलंका चलवा नहीं दया। मालूम होता है इस काम के लिये महाराणा की शक्ति नाकाफी है। गवर्नमेंट इस बेरी को अपने लिये नी खनरे से खाली नहीं देखती, क्योंकि मेवाड़ से मिले हुए गुजरात के सरकारी इलाकों के मीलों पर भी चलवे का बुरा असर पड़ रहा है। इसलिए चलवा तुरन्त दबाया जाय या महाराणा गवर्नमेंट से सैनिक सहायता मांगें।" महाराणा मज्जनसिंहजी ने गवर्नमेंट की उपरोक्त तहरीर को उत्तर के लिये फौजी कैम्प में कविराजा श्यामलदासजी के पास भेज दी और उनके असली उत्तर का ही अपना उत्तर कहकर गवर्नमेंट में भेज दिया जिस पर पोलिटिकल डिपार्टमेंट इस संबंध में सदा के लिये चुप हो गया। वह उत्तर यह था—“महाराणा बारह सौ वर्ष से जिस शक्ति के बल द्वारा अपनी इस प्रजा पर राज्य करते आ रहे हैं वह शक्ति-बल अब भी वर्तमान है। गवर्नमेंट तो कल की आँखें

हुई है। हमें उसकी मदद की कोई आवश्यकता नहीं। यह मुक़ाबला किसी बाहरी शत्रु से नहीं है कि जिसमें सेनाबल का प्रयोग किया जाय। महाराणा अपनी प्रजा को मारकर शान्ति नहीं करना चाहते। प्रजा तो पुत्र के समान शान्ति से ही समझाई जा सकती है। यदि इस विलंब में गवर्नर के अपने इलाकों का डर है तो वह अपने घर का आप प्रवध करे। उसका उत्तरदायित्व इस राज्य पर कदापि नहीं।” यह उदाहरण है राजा-प्रजा के बीच ‘दाल-भात में मुसलचन्द’ देनेवाली तीसरी शक्ति को करण उत्तर मुना देने की शक्ति रखनेवाले राजनैतिक स्वाभिमान के।

(३) अंग्रेज़ जाति अपनी दूरदर्शिता से जिस कूटनीति को निर्धारित करती है उसका बीज प्रारम्भिक दशा में अति प्रच्छन्न-अज्ञेय स्थल पर रखती है और समयानुसार धीरे-धीरे रूपान्तर में उसका पोषण करती रहती है। प्रत्येक राज्य में प्रधान पदों पर अंग्रेज़ क़ायम करके राज्य की सर्व सत्ता पर अधिकार कर लेने की जो क्रिया आज ग़ुलामख़ुश व्यवहार में आ रही है उसके बीज आज से साठ वर्ष पहिले भी कुछ अंगुरूप में दिखाई पड़ने लगे थे। राजपूताना के एजेन्ट टु दि गवर्नर जनरल कर्नल बाल्टर ने महाराणा सज्जनसिंहजी को अपने आबू के अंग्रेज़ सैकिन्ड असिस्टेंट को राज्य में ले लेने का विनीत अनुरोध किया और उस असिस्टेंट की कार्यकुशलता को खूब ही प्रशंसा की। नीति! मर्मज्ञ महाराणा सज्जनसिंहजी भविष्य तक को ताड़ गये और उत्तर दिया कि मैं उसको यहां भी असिस्टेंट ही की जगह दे सकता हूँ। ए० जी० जी० ने कहा कि एक अंग्रेज़ किसी

देशी अफ़सर के नीचे कैसे रह सकता है!! महाराणा ने हँसते हुए उत्तर दिया कि मैं भी तो एक देशी ही हूँ तो क्या आप चाहते हैं कि वह मेरा भी अफ़सर बन कर आवे? मुझे अपने सब देशी अफ़सरो (राजकर्मचारियों) की योग्यता पर पूर्ण विश्वास है। अंग्रेज़ की कोई ज़रूरत भी नहीं, आप मेरे मित्र हैं अतः आपकी सिफ़ारिश के कारण मुझे उतना-सा भी स्वीकार करना पड़ा। आशा है, अब आप भी आवश्यकता नहीं समझेंगे। यह उदाहरण है दूरदर्शिता और अपने घर के स्वाभिमान का।

(४) एक छोट्टा-सा परन्तु अनूठा उदाहरण हम और देंगे। वह है बांसवाड़ा जैसी छोटी, सी रियासत के अति वयोवृद्ध सीसोदिया महारावल लक्ष्मणसिंहजी के स्वाभिमान का।

एक बार बांसवाड़ा के असिस्टेंट रेज़िडेन्ट मि० पिनही ने महारावल लक्ष्मणसिंहजी के नाम एक ख़ानगी चिट्ठी लिखी। उसके लिफ़ाफ़े पर लिखा था “प्राइवेट”। महारावल ने ‘प्राइवेट’ शब्द देखते ही उसे बाज़ाफ़्ता ख़रीते के साथ लौटा दी। ख़रीते में लिखा “कि मैं सोते, जागते, खाते, पीते, यहाँ तक कि शौचालय में होते हुए भी प्रत्येक क्षण राजा हूँ। मेरे जीवन में कोई ऐसा क्षण ही नहीं कि जिस समय मैं अपने आपको राजा न मानता होऊँ। ऐसी सूख में मेरे यहाँ ‘प्राइवेट’ का कोई स्थान नहीं। हाँ, तुम्हारे लिये प्राइवेट और ऑफिशियल का भेद हो सकता है क्योंकि तुम्हारी निजी हस्तियत कुछ और है और ओहदे का कुछ और। तुम यदि निजी हस्तियत से मुझे लिखना चाहते हो

‘टोका’ और ‘रीत’ के दुष्परिणाम

(ले० श्री मोतीसिंहजी रोहड़िया, बी० ए०, जोधपुर)

विवाह-सम्बन्ध मनुष्य जाति के लिये आवश्यक और महत्वपूर्ण है। आवश्यक इसलिये कि इसके बिना समाज में अव्यवस्था, अशान्ति और व्यभिचार फैल जायेंगे और महत्वपूर्ण इसलिये कि मनुष्य-जीवन को शान्त और सुखमय अथवा अशान्त और दुःखमय बनाना इसी पर निर्भर है, और जहाँ विवाह-विच्छेद की प्रथा प्रचलित नहीं है वहाँ तो इसका महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि एक बार जिसको जैसा साथी मिल गया उम्र भर उसी के साथ निर्वाह करना ही पड़ता है चाहे उनका मेल मिले या न मिले। तात्पर्य यह कि यदि यह कहा जाय कि घर के स्वर्ग या नर्क बनाना इसी सम्बन्ध पर निर्भर है तो इसमें अतिशयोक्ति न होगी।

प्रेमा महत्वपूर्ण सम्बन्ध बहुत विचार-वृत्त छानबीन के बाद होना चाहिये इसमें तो कोई इन्कार नहीं करेगा। हमेशा के व्यवहार की वस्तुहं भी जब हम काफी छानबीन के बाद लेते हैं तब समूचे जीवन के एक साथी

को चुनने में, जिसके साथ सारी जिन्दगी बितानी है और जो हमारे मानसिक सुख व शान्ति का कारण है बहुत विचार से काम लेना चाहिये इसमें दो राय कैसे हो सकती है?

विवाह-सम्बन्ध को स्थिर करने के दो तरीके हैं। पहिला वह जिसमें युवक-युवतियों के माता-पिता द्वारा सम्बन्ध स्थिर किया जाता है और दूसरा वह जिसमें युवक-युवती अपना साथ आपसी चुनते हैं। हमारे भारतवर्ष में पहिला तरीका ही प्रचलित है। पश्चिम के संसर्ग में आने से कहीं-कहीं दूसरा तरीका भी अख्तियार कर लिया जाता है, पर ऐसे मामले इतने कम होते हैं कि यदि उनकी अवहेलना कर दी जाय तो कोई अन्याय न होगा। इन दोनों तरीकों में से कौन-सा अच्छा है यह बताना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। एक-दूसरे की श्रेष्ठता के विषय में दोनों की तरफ से बहुत-सी झटोलें दी जा सकती हैं। पर इतना तो कहना ही होगा कि यदि पहिला तरीका (युवक-युवतियों का स्वयं अपनी मायी चुनना)

सालहों आने टीक होता तो पश्चिम के देशों में जो तलाक़नामों की धूम मची रहती है वह न होती। दूसरे हमारे यहाँ आमतौर पर युवक-युवतियों की शादी क्रमशः १८ व १९ वर्षों की उम्र में हो जाती है और इस उम्र में यदि उनका अपनी मरजी से ही अपना साथी चुनने का खुला छोड़ दिया जावे तो वे इसका सदुपयोग कर सकेंगे इसमें सन्देह है। युवक सौंदर्य के उपासक होते हैं इसलिये भय है कि कदा सुन्दरता के पीछे वे अन्य आवश्यक गुणों की अवहेलना न कर बैठे। अतः वर्तमान परिस्थिति में हमारे समाज के लिये पहिला तरीका ही उचित मालूम पड़ता है। हाँ, जब शिक्षा का प्रचार हो जाय और शादी की उम्र बढ़ा दी जाय तो बात और है, पर अभी तो हमारी जाति में वैसा वातावरण पैदा होने में बहुत समय लगेगा।

यह मान लेने पर कि माता-पिता द्वारा सम्बन्ध स्थिर करना ही क्षेयस्कार है, यह प्रश्न सामने आता है कि सम्बन्ध करने में हमारी जाति में जो 'टीका' व 'रीत' की प्रथाएँ काम में ली जाती हैं उनका लेना-देना कदा तक उचित है।

हमारे समाज में जितने भी सामाजिक सुधार करने का प्रयत्न किया जाता है उनके विरोधियों का प्रथम व जयदस्त विरोध धर्म के नाम होता है। सुधार की चर्चा शुरू हुई। विरोधी लोग 'धर्म स्वतरे में है' व 'दीका' 'रीत' के पक्ष में कोई धर्म की दुहाई नहीं देता, पर यह दिखाने के लिये। दूसरे सुधारों के समय धर्मकी अं लेनेवाले अपने स्वार्थ के मामलों में ध की ओर किस प्रकार आँखें मूँद ले हैं—इन प्रथाओं को धर्म की कसौ पर कसना आवश्यक प्रतीत होता है।

हिन्दू-शास्त्रों में आठ प्रकार विवाह माने गये हैं—(१) ब्राह्म, (२) देव, (३) आर्ष, (४) प्राजापत्य, (५) आसुर, (६) गान्धर्व, (७) राक्षस, (८) पैशाच। इनमें से प्रथम दो प्रकार के विवाह उत्तम एवं और शेष छ मध्यम और वर्जित हैं। यह देखने के लिये कि 'टीका' और 'रीत' लोक विवाह करना किस प्रकार का विवाह होगा—आठों प्रकार के विवाहों की परिभाषा नीचे दी जाती है—

(१) ब्राह्म—विद्यायुक्त, शीलवान् घर का बुलाकर वस्त्र व भूषणादि

पहनाकर वेद-मन्त्रों द्वारा कन्यादान करना।

(२) देव-यज्ञ में भले प्रकार यज्ञ करानेवाले ऋत्विज घरको भूषण पहनाकर कन्यादान कर देना।

(३) आर्ष-जो घर के पिता से कुछ धन लेकर किया जाता है।

(४) प्राजापत्य-जो वेद-मन्त्रहीन केवल वाणी से ही कन्यादान कर दिया जाता है।

५) आसुर-घर के माता-पिता को उनकी इच्छानुसार धन देकर कन्यादान करना।

(६) गान्धर्व-अपनी इच्छा से कन्या और घर का विवाह होना।

(७) राक्षस-कन्या या उसके माता-पिता के मारपीट कर कन्या ले जाना।

(८) पेशाव-सातो हुई और नशा की हुई प्रमादिनी कन्या को जहाँ मनुष्य न हो वहाँ होसे प्राप्ति करना।

ऋषि की परिभाषा को देखने पर मालूम हो जायगा कि 'रीति' लेकर

विवाह करना 'आर्ष' विवाह' है। और 'टीका' लेकर करना 'आसुर विवाह' है। यह माना कि प्राचीन जमाने में-जब यह धर्मशास्त्र बने थे, निन्दित विवाह होते थे पर इससे यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि 'टीका' और 'रीति' लेनेवाले तो धर्मशास्त्रों के भी विरुद्ध आचरण कर रहे हैं।

यह कहा जा सकता है। कि कोई भी धर्मशास्त्र हमेशा के लिये नहीं है। संसार परिवर्तनशील है और समाज के नियम, रीति रिवाज भी बदलते रहते हैं तब हमें व्यावहारिक हानि-लाभ का आश्रय लेना पड़ता है। अतः अब हमको इस बात पर विचार करना है कि व्यवहार एवं लोकमत की दृष्टि से 'टीका' व 'रीति' का क्या हानि-लाभ होता है।

यह हमें मानना ही होगा कि विवाह का मुख्य ध्येय समाज की सुव्यवस्था, गृहस्थी का सुचारु रूप से चलाना व सन्तानोत्पत्ति है। यदि इनको द्रव्योपाजन का एक साधन बना लिया जाय तो इसका महत्व ही मारा जाता है।

परन्तु 'टीका' व 'रीत' लेने से यात इससे विपरीत होनी रहे। लड़के-लड़की के अभिभावक पहिले यह देखते हैं कि अमुक जगह सम्बन्ध स्थिर करने में उनको कितना धन मिलेगा। लड़के-लड़की के चुनने का सवाल गौण हो जाता है और धन-प्राप्ति का मुख्य। ऐसी हालत में कितनी ही कोशिश क्यों न की जाय, सम्बन्ध सोलहों आने टीका हो नहीं सकता। जहाँ माता-पिता लड़के-लड़की के हित का छोड़ अपने स्वार्थ को प्रधानता देते हैं, वहाँ ऐसा हो भी कैसे सकता है। कई 'टीका' लेनेवाले कहा करते हैं कि हम लड़की की छानबीन भी पूरी करते हैं और फिर धन भी लेते हैं, इनमें कौनसी हानि हुई। पर ऐसा क्या सभी विवाहों में हो सकता है? उदाहरणार्थ दो लड़कियाँ हैं जिनमें एक बहुत सुन्दर, सुशील व समझदार है। दूसरी भी पहिली के गुण मौजूद है पर कुछ कम मात्रा में पहिली का पिता (५००) दे सकता है जब कि दूसरा (१०००) की बोली लगा देता है। ऐसी हालत में लड़के का पिता पहिले का छोड़ दूसरे को लड़की के साथ सम्बन्ध स्थिर करेगा और यह कह देगा कि

दोनों लड़कियों में कोई विशेष अन्तर नहीं, तिस पर तुर्श यह कि (५००) ज्यादा मिल रहे हैं। सारांश कि यदि 'टीका' की प्रथा न होती तो इस विशेष अन्तर, की आवश्यकता न रहती और पहिली लड़की ही के साथ शादी होती।

अन्य खराबियाँ 'टीका' की यह हैं कि इस नीलाम की बोली के कारण कम पैसेवाले व्यक्तियों की लड़की के लिये योग्य घर मिलना मुश्किल हो जाता है, अतः कई जगह लड़कियाँ काफी घबस्क हो जाने तक बर्बारी ही रहती हैं और बाद में उनसे कम उम्रके लड़के के साथ उनका विवाह करना पड़ता है जो सर्वथा अनुचित है। कहीं-कहीं तो इस भय से कि हमें बाद में लड़का न मिलेगा लड़की वाले छोटी उम्र में ही लड़के-लड़की का विवाह कर देते हैं जो लड़के की शिक्षा में बाधक होते हैं और कभी-कभी उसको परिणाम बहुत भयकर होता है। कहीं तो ऐसा भी होता है कि ससुरालवाले लड़की को इसलिये तकलीफ देते हैं कि उसको पिताने उनको इच्छा के मुताबिक दिया नहीं। यह अमानुषिक व्यवहार कुछ मामलों में यहाँ तक बढ़ जाता है

कि लड़की को जान से हाथ धोना पड़ता है। और यह बात तो केवल हमारी जाति तक ही सीमित नहीं है। 'दीका' के ही अनुरूप 'दहेज-प्रथा' की बालघेदी पर भारत की कितनी ही निर्दोष युवतियाँ प्रतिवर्ष अपना बलिदान चढ़ाती हैं।

'रीत' का परिणाम भी कम भयंकर नहीं है। प्रथम तो चारण जाति की आर्थिक दशा इतनी गिरी हुई है कि बंधुता के पास 'रीत' देने को पैसे नहीं होते और इसी वजह से बहुत-से युवक अविवाहित रह जाते हैं; और जो भर पच कर कुछ पैसे इकट्ठे करते हैं। उनके 'रीत' देने के बाद अपनी भावी पत्नी और भावी सन्तान के पेट पालने की फिक्र पहले से ही लग जाती है। वृद्धविवाह भी इसी प्रथा का परिणाम है जहाँ माता-पिता अपनी गरीबी के कारण या धन के लोभ से ज्यादा उम्र के घर के साथ अपनी लड़की का विवाह कर देते हैं। मारवादी भाषा में एक कहावत है कि घरहण देणी पण घरहाण नहीं देणी। पर 'रीत' लेकर ज्यादा उम्र के घर साथ अपनी लड़की का विवाह करने वाले माता-पिता दोनों

हानि करते हैं। 'घरहण' तो घरको ज्यादा उम्र होने से है 'ही और घर के पास जो कुछ धन है उस को 'रीत' के रूप में लेकर 'घरहण' भी कर देते हैं।

इन कुरीतियों का सारा दोष वृद्ध जनों को ही देना उचित नहीं। युवक-युवतियों का भी इस में कुछ हिस्सा अवश्य है क्योंकि वे इसका प्रतिवाद करना जानते ही नहीं। अशिक्षित और पर्दे की चहारदीवारी में बन्ध युवतियों से तो कुछ आशा रखना दुराशा कहना मात्र है पर युवकों में तो शिक्षित भी हैं, और जमाने को पहचानने वाले भी हैं पर वे भी मूक पशु की तरह जहाँ उनके बाँधा जाता है दब जाते हैं। इससे मेरा मतलब माता-पिता के खिलाफ बिश्रोह फैलाने का नहीं है, पर जहाँ युवकों का मालूम हो जाय कि उनके माता-पिता उनके सच्चे हित को प्रधानता न देकर केवल स्वार्थ को प्रधानता दे रहे हैं वहा नव्रता युवक प्रतिवाद करना हर एक युवक का अधिकार है परन्तु आमतौर पर ऐसा न करने पर उनमें नैतिक माहसस के अभाव का परिचाय मिलता है। यह केवल दियने की बात नहीं मेरा

आँखों देखो हुई बात है। मेरे एक परिचित शिक्षित सजातीय युवक को अपनी मरजी खिलाफ अपने माता-पिता की आज्ञा पालने के लिये विवाह करना पड़ाया, पर उसका साहस न हुआ कि वह प्रतिवाद वाद करे। मुझे पता नहीं की उसका अब क्या हाल है। सारांश कि यदि भाग्यवश पाशा टिक पड़ गया तो तो अच्छा, नहीं तो वास्तव में बड़ी दयनीय दशा है। कुछ इने-गिने युवक ऐसे भी मिलेंगे जो माता-पिता

को तबह धन के लाभ में अपने पैसे आप ही कुल्हाड़ी मारते हैं। वे और भी अधिक दौपी हैं क्योंकि दूसरे के धनसे धनी होता चाहते हैं अपनी उन्नती में स्वालम्बन का सहारांना लेकर विवाह द्वारा धनी बनने का प्रयत्न करते हैं। और जब तक विवाह में धन प्राप्त हो प्रधानता दी जाती रहेगी चाहे वह माता-पिता से हो अथवा युवकों से तब तक 'रीका' व 'रीत' की प्रथा का बन्ध होना असम्भव है।

• चारण-वाणी

ओपाजी आढा के गीत

(गताङ्क से आगे)

(८६)

[निम्नोक्त गीतों की कुछ पंक्तियाँ रेखाङ्कित की गई हैं, इसका तात्पर्य यह है कि, या तो वे पंक्तियाँ संदिग्ध-सी हैं या उनके छिराने का क्रम नहीं रहा। —सम्पादक]

दिये, व्याज-वृणा लिये न मांगे दोकड़ो, रोकड़ो देखियां घणो रोजीं ।
आगले घरे तेड़ावियो आंघळा, पाछला घरां री मं कर पाजी ॥ १ ॥

लाभियो पराया खेत संदके लिये, ठबावे आंकडा भरे ढाला ।
आंगणे बैठ दरवार रा आदमी, कसी घरवार री आस काला ॥ २ ॥

पटीडे जो ने गहूँ वेये परा, भाटके रुपिया करे भेळा ।
राम रा हाय रे दूत लाये रुको, घायळा ! जोयणी कितिक वेळा ॥ ३ ॥

न पावे राय मोठा कदै न जीमे, न पैरे लूंगडा कदै नीका ।
डाकि जमराण आ प्रसण हेला दिये, कसी पर आयसी नींद काला ॥ ४ ॥

कळह री मूळ कड़यो घणी कुटुम्ब सु, नारायण नाम मन मांय नांण ।
ओठ रा दूत खोटी हुये आंगणी, जेत ओ अठा री आस जाणी ॥ ५ ॥

युद्ध की भयानकता से कालिका को भयभीत देख कर वीरांगना कहती है कि हे फाली ! तू व्यर्थ ही क्यों डरती है ? तू तो अपने व्यवसाय-रक्षण के लाभ को मत खो। जिसकी वजह से पृथ्वीपति होते हैं उससे युद्ध तो अपने होता ही है।

काली करे बधावणों, सतियां आये साथ ।
हथल्लेवै जुडिगौ जिकौ, हमै न छूटे हाथ ॥ ३१ ॥

(सतियों का समूह युद्धभूमि में आया देखकर कालिका इन उत्साहवर्धक शब्दों से उनका अभिनंदन करती है कि पाणिग्रहण के अवसर पर जो हाथ जिस हाथ से जुड़ गया है वह भला अब छूटेगा थोड़े ही !

धोरा धोरा ठाकुरां, जमी न भागी जाय ।
घाण्णीयां पग लूंबी धरा, अखखी ही घर आय ॥ ३२ ॥

किरी वार के मुकामिले के लिये जानेवालों से कहा गया है कि ठहरो, ठाकुरो ! जरा ठहरो। जमीन कहीं भागी चली नहीं जा रही है। याद रखना, जिन मालिकों के पैरों से उनकी जमीन बँधी हुई है वह आपके घर मुकिल ही आवेगी अर्थात् जिनका जीवन उनकी पृथ्वी के साथ है वह पृथ्वी ले लेगा सहज नहीं है।

भूल न दीजै ठाकुरां, पावक माथै पाव ।
राख रहीजै दाक्षियां, तियां धरीजै चाव ॥ ३३ ॥

शक्ती को उक्ति है कि हे सरदारो ! भूल कर भी आप लोग आप पर पैर न रखना। जिसके स्पर्श से राख ही बाँधी रहती है, उसमें स्नान करने की उमंग तो हम त्रियों ही रख सकती हैं।

भोला की हठ ठाकुरां, रोळा हेक न राह ।
गेह रहीजै रोयणा, देह सहोजै दाह ॥ ३४ ॥

ये भोले सरदारो ! वह भी कोई हठ है ? ये उत्पात एक भी ठीक नहीं। इनसे आपके शरीर को सन्ताप होगा और आपके घर में रोना ही रोना रह जायगा।

खता नाहर सारखा, साळं न छोड़े खर ।
कंत विणठ्ठा काच-सा, दो ही विलखां दूर ॥ ३५ ॥

आप तो सिंह के गर्मान निःशंक तो रहे हैं पर उधर वीर आक्रमणकारी भी मकान को नहीं छोड़ते हैं; दग परिस्थिति में विनष्ट बौंच के गर्मान हे कन्त ! हम दोनों दूर ही दूर विलख रहे हैं।

कंत न छेड़ौ ठाकुरां, काळौ जाण करंड ।

इण भोगी रा जहर थी, वूजौ की जमदंड ॥ ३६ ॥

ऐ अकुरो! इस खयाल से कि यह छन्दे में पड़ा हुआ काल विपश्चर है, मेरे पति को तुम मत छेड़ो। जानते नहीं हो इस भोगी (कले साँप) के जहर (क्रोध) से बढ़कर और बन्द-दण्ड कौन सा है?

नो दाणौ गिण टेकद्वौ, पुछौ, न छेड़ौ पीच ।

प्राय पुजावौ पावही, चूडौ घण चिरजीव ॥ ३७ ॥

जा

इन प्रणवीर को सेवे हुए समस्त कर तुम लोग भाग जाओ और इन्हें मत छेड़ो। तुम्हारे चले जाने से तुम्हारी स्त्रियों का चूड़ा चिरजीवी होकर पूजा प्राप्त करेगा।

भोळ्हा जाणौ भूलिया, घरसां आठां बाळ ।

पय घरागँ सी हगी, कंवर जणौ सो फाळ ॥ ३८ ॥

छो।जे

ऐ भोले लोगो! तुम क्या इस भ्रम में हो कि यह बच्चा आठ ही वर्ष का तो है? अरे भाई! इस घराने में तो सिहिनी-वीरांगना जिस कुमार को जन्म देती है वह कालरूप ही होता है।

बाळ चाल म चीसरे, मो घण जहर समाण ।

रीत मरन्तां, ढील की, ऊठ थियो घमसाण ॥ ३९ ॥

ऐ बन्स! अपनी चाल को मत मूल। मेरे स्तन में जहर समाया हुआ है। युद्ध में प्राणहस्य करने की तो अपनी परम्परा ही है। फिर अब देर क्यों? उठ, घमासान युद्ध हो रहा है।

नागणजाया चीटला, सीहणजाया साव ।

राणीजाया नहँ रुकै, सो कुळवाट सुभाव ॥ ४० ॥

नागिनी से उत्पन्न सर्पशिशु, सिहिनी से प्रसूत शाक्य और रानियों से पैदा हुए राजकुमारों का तो यह स्वभाव ही होता है कि वे अपने कुलमार्ग में कभी रुकते नहीं।

असिधाघण तो पीच पर, घारी घार अनेक ।

रण साटकतां कंत रै, लगै न साटकर्ण एक ॥ ४१ ॥

७

ऐ शिकलमरनी! मैं तेरे खाबंद पर अनेक बार बलिहारी हूँ कि उसने तलाश की थीर शतनी तीक्ष्ण कर दी है कि उसे युद्ध में चलाते समय मेरे पति के एक भी झटका नहीं लगना।

लोहारो तो पीव रा, चले न पूजू हत्य ।

फूलतां रण कन्त रै, कड़ी समाणी मत्य ॥ ४२ ॥

ऐ लुहारिन ! तेरे पति के हाथों की अब मैं कभी पूजा नहीं करूंगी—मेरे प्राणाधार जब युद्ध में फूले अंग नहीं समाये तो दोष-वस्त्र की कड़ी उनके चिर में घुस गई ! उसे इतना भी अंदाज नहीं !

सूतों देवर सैज-रण, प्रसव अठी मो पूत ।

ये घर भाभी बांट थर्ज, पांछों उभय प्रसूत ॥ ४३ ॥

भावज ! आपके देवर रण-शय्या पर सो गये हैं और इधर मेरे पुत्र-प्रसव हुआ है । अब उचित यही है कि आप घर के दोनों बच्चों को अपना एक २ स्तन बांट कर मालन करें मैं सती होऊंगी ।

सायण ढोल सुहावणों, देणों मो सहदाह ।

१/ उरसां खेती बीज रर; रजवट उलटी राह ॥ ४४ ॥

ऐ सखि ! मेरे सती होने के समय बड़ा सुहावना ढोल बजवाना । तू तो क्षात्रधर्म के इस उलटे रास्ते को जानती ही है कि बीज तो इस पृथ्वी पर बोया जाता है और उसकी खेती फलती है आकाश—स्वर्ग में ।

ढोलण ढोली खं कहै, पछां उतावळ मांह ।

भीडै वाह दुवाह चर, भीडै नाह सनाह ॥ ४५ ॥

अभी जल्दी २ में ढोलिन ढोली से कहती है कि साईस घोड़ों पर सामान कस और मालिक वस्त्र धारण कर रहे हैं—तुम भी तय्यार हो जाओ ।

काळो फील कडाह ले, की खप्पर तो हत्य ।

५/ हेके साथ घपाडही, मोवे दळ गजमत्य ॥ ४६ ॥

कालिके ! तूने भी क्या हाथ में खप्पर ले रक्ता है ? तू तो थिदाळ कडाह हाथ में ले लेने जिनमें गजमस्तक जल २ कर मेरे पति तुझे एकदम तुल कर दंगे ।

नाग द्रमका की पडै, नागण धर मचकाय ।

गणहार/ १/ इण, मेप्रहणार जे, आज भिडुणा सुाय ॥ ४७ ॥

शेषनाग से नागिनी पूछती है कि आज ये धमाके क्या पड़ रहे हैं ? नागिनी ! क्या तु नहीं जानती कि पृथ्वी आज इसलिये डबके खा रही है कि उसके उपभोगकर्ता परस्पर मिड गये हैं ।

निधडक, सूती केदरी, तो भी विमुहो पांव ।

गज गंडा धीरे न धरे, बस पड़े बधवाव ॥ ४८ ॥

केसरी निधडक से रहा है तो भी हाथी और गंडे आदि धैर्य धारण नहीं कर सकते । वे उलटे पांव लौट रहे हैं । उन्हें व्याघ्र गंध क्या आती है मानो उन पर बज्रप्रहार हो रहा है ।

झंडा औछाड़े गयण, वसुधा पाडे वाह ।

तो भी तोरण बीद तिम, धीरे २ नाह ॥ ४९ ॥

युद्धारंभ में आकाश शब्दों से ढँक गया और धोड़े बढने की त्वरा में पृथ्वी को खोद रहे हैं । प्राणनाथ तो तोरण पर जाते हुए ढूँढ़े के समान बिना किसी प्रकार के उद्देश्य के धीरे २ बढ़ रहे हैं ।

आज घरे साख कहे, हरख अचानक काय ।

बह बळेबा हलसे, पूत मरेबा जाय ॥ ५० ॥

सास कहती है कि आज घर में यह अकस्मात हर्ष क्या है ? ओह ! अब उन्हें मान्य हुआ कि पुत्र धारातीर्थ में स्नान करने जा रहा है और पुत्रवधु सती होने की हुलस रही है ।

—कमला:

काव्य-कुंज

(१) क्षत्रिय वही है

—कवित

सदा ही सताये जात दीन बलवान हाथ,
अबलों में बात कटु-गोली गिट जाने की।

परजान-कर्म ही में धर्म-मर्म पौरुषव !
जानते न साहस के पुंज सिट जाने की

आरत का हाथनाद, सुन सकते न वीर,
गाजि उठें दशा देखि दीन पिट जानें की।
क्षत्रिय वही है जिसे स्याभिमान स्वत्य पूर,
बिना दुषिधा के चाह मर मिट जाने की ॥ १ ॥

(२) चारण वही है

कवित

चारण वही है जो स्वतंत्रता उपासक हो,
घाणी का वरद पुत्र जाने सत्य तत्व को।

अभय-अडोल अयलम्ब निज शक्ति पर,
क्षत्रियों का देता पाठ व्यापक समत्व को

साहस को ज्वाला फुंकि मुरदे जगाय देत,
नाशवान देह दे खरीदे अमरत्व को।

वीररस-निशेर बहाय-बिथुराय स्थय,
गहाय के दिन्नाय देत मरन-महत्व को ॥ २ ॥

८३) रजपूतानी

तब और

देहा

धध भागां धुधकारती, रजघट कुळ हिय रक्खि ।

(अब) सौड घुसाई सोहडी, 'अरे बाहरे' अक्खि ॥ १ ॥

पहिले रजपूतानी अपने कुलभिमान के धारण कर, युद्ध से भाग आनेवाले पति को सुरी तरह फटकारा करती थी और अब ऐसे अवसरों पर अरे बाहरे कहकर उसे अपनी घगल में घुसा लेती है ।

मंगळ मरण मनावती, रणचण्डी रच रास ।

(अब) जीव बच्यां जलसा जुई, रजपूतां-रणयास ॥ २ ॥

रणचण्डीका रास रचकर जहां मरण-महोत्सव मनाया जाता था वहां अब प्राण बच जाने पर राजपूतों के रनिवातों (अन्तःपुरों) में जलसे किये जाते हैं ।

राग सिन्धुवां रीझती, छत धचडातां सोय ।

(अब) लैला-मजनू नाटकां, हरख जागरण होय ॥ ३ ॥

पुत्र को स्तनपान कराते समय जो सिंधु (युद्धकालीन) राग से आनन्दित हुआ करती थी वही अब लैला-मजनू के नाटक देखने में जागरण कर प्रसन्न होता है ।

ले खागां ललकारती, धक फळसे धाड़ाह ।

(अब) कंफे पडदे कामणी, लज भय लंगाडौह ॥ ४ ॥

कृपाण लेकर जो दरबार से आगे बढ़ डाकुओं को ललकारा करती थी वह अब पर्दे में बैठी हुई नी गुंडों से लाज बचाने के डर से थर थर कांपती है ।

चळती नहँ कुळवाल थी, जळती जौहर झाळ ।

(अब) 'हाय' करे चळती रहै, भोजन खरचां भाळ ॥ ५ ॥

जो कुलप्रार्थना से विचलित नहीं होती थी और जौहर की ज्वाला में जल जाया करती थी, वह अब घर में होनेवाले रेटी-खर्च के लिये 'हाय' करती हुई हृदय में जला करती है ।

ऊठे नित देती अरघ, कधे न लज्जे कूख ।

(अब) नाम सुणन्तां मरण रो, धुयकारे भर थंक ॥ ६ ॥

जो हमेशा उठकर भगवान्, भास्कर को इस प्रार्थना के साथ अर्घ्य देती थी कि हे सविता ! मेरी बुद्धि को कभी न लजाना; वही अब संतान के लिये मृत्यु का नाम सुनते ही मुँह में धूँक भरकर धुधकी डालती है !

चढती काठां चूड़लै, धव धर पर दळियांह ॥ ७ ॥
(अव) खरच बँधावण ताखडी, लंबी कांचळियांह ॥ ७ ॥

पति के धराशायी होने पर पर जो सौभाग्यवती चित्तरोहण किया करती थी वह अब अपने वैधव्य के जीवन-निर्वाह के लिये प्रबंध को आरु है ।

धरतां पग धर धूजती, दाकलतां दिगपाळ ।
(तव) जणती रजपूतानियां, यण थी झाळवंबाळ ॥ ८ ॥

पहिले रजपूतानियां अपने स्तनों से ऐसे आग के टुकड़ों को पैदा करतीं कि दिगपालों को ललकारकर जिनके पैर बढ़ते ही पृथ्वी धूज उठती थी ।

(अव) पोळ कढयां पग लडखडै, घर वारं घिघियाय ।
पडै पूरी पदमण्यां, जोधा किण विध जाय ॥ ९ ॥

उथोड़ी से निकलते ही जिनके पैर लड़खड़ाने लगते हैं और घर से झट्टिर होने पर जो घिघिया उठती हैं, वे यहाँ में दूँसी हुई कोमलांगियां योद्धाओं को कैसे जन्म दें ?

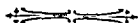
रळगी रजपूतानियां, खूटी रतनां खाण ।
पूयळियां अव प्रेम री, प्रसव रही पाखाण ॥ १० ॥

अब रजपूतानियां डुल गई, रत्नों की वह खानि निःशेष हो चली; अब तो प्रेम-पुत्तलिकाएँ केकड़-फंथर निकाल रही हैं ।

हे सिंघनियां आज लग, निरधीजां धर नांह ।
वंस-उजाळक वाहुडी, मिले झुपडां मांह ॥ ११ ॥

इतने पर भी निर्धन भूमि कह न होय इन उक्त के अनुसार आज भी सिंहिनियाँ हैं, किन्तु वे कुल को उज्जल करनेवाली वे रजपूतानियां मिलेंगी सिर्फ झोपडियाँ में ।

—राजस्थान-केसरी देशभक्त कवियर डा० श्री केसरीसिंहजी सौदा, कोटा



बाघा कोटडिया

(लेखक—स्व० कुंवर श्री आईदानजी बारहट, बी० ए०, पल-पल० बी०, मथानिया)

बाघा

कोटडियो बाघा कटे, आसा ढाभी आज ।

गवरीज जस-गीतडाँ, गया भोतडाँ भाज ॥

—कविराजा बाँकीदासजी आशिया

जोधपुर के राजमहलों में

रिमझिम-रिमझिम बूँदें पड़ रही थीं। भादों की घनी अंधियारी रात्रि में चारों ओर प्रगाढ़ अंधकार छाया हुआ था। आकाश मेघों से घिरा हुआ था। जोधपुर के मदनमत्त नरेश राव मालदेव राजमहलों में बैठे हुए झरोखे के बाहर मुँह किए पावसप्रसू का आनंद ले रहे थे कि विद्युत के प्रकाश में उन्होंने एक पहरेदार को हाथमें नंगी तलवार लिए हुए टहलते देखा और आवाज़ दी—“कौन हैं पहरे पर ?

पहरेदारने नम्रभाव से प्रत्युत्तर दिया—

“अन्नदाता, बाघा कोटडियो” ।

“जुग इधर आना ।”

पहरेदार तुरंत अपने हाथ में तलवार लिए राजा के महल की ओर बढ़ा। महल में पैर रखते ही एक नवयुवती को देख वह चौंकर बाहर निकलने लगा। राव ने कहा—ले डरो मत; आ जाओ, यह तो भारमली है।”

भंड प्रकाश के साथ दीपक जल रहा था। बाघजीने राव को झुककर सलाम किया। राव शराव में मस्त होकर एक पलंग पर बैठे हुए थे और एक कोने में लावण्य की प्रतिमा स्वरूप एक बीबन-सुंदरी खड़ी थी।

राव ने कहा—

“बाघजी ! अभी इसी दम बड़िया से बड़िया ऊंट पर सवार कर, इस भारमली को तुन अपने गाँव कोटड़े ले जाओ और जब तक मैं न बुलाऊँ, वहीं रहो ।”

“जो हुबम अन्नदाता,” कहते हुए बाघजी सलाम कर अपने साथ भारमली को ले नाला और दोनों उसी समय ऊंट पर सवार होकर कोटड़े की ओर रवाना हो गए।

कोटड़े की करामात

भारमली राव मालदेव की रानी उमादे भटियानी के दहेज में आई हुई एक परम लावण्यमयी दासी थी। अपनी ही भूल के कारण अपने पति राव मालदेव के साथ उसका अनुचित संबंध हो जाने का संदेह कर उमादे उसके साथ-साथ अपने पति से भी हट हो गई। इस संदेह से निपटारा पाने के लिये राव महादेवने भारमली को चाचा कोटडिंगा के साथ सदा के लिये उसके गाँव कोटड़े भिजवा दी।

कोटड़े पहुँचकर बाघजी ने भारमली को अपने घर में रक्खा। जोधपुर से आए आज कल करते आठ-दस दिन हो गए थे, परंतु दोनों ने एक-दूसरे को भर नज़र देखा नहीं था।

पावसेकृतु थी। सलसलाती हुई बिजली भी अपने प्रियतम मेघ से लिपट-लिपटकर आनंद मना रही थी। पृथ्वी अपने प्रियतम का संदेश पाकर हरित हो रही थी। उमड़ी हुई सरिताएं मद्यन्मत होकर समुद्र से मिलने को द्रुतगति से वहीं जा रही थीं। चारों ओर संयोग ही संयोग दिखाई दे रहा था तो नवयुवा प्राणियों के बिज ऐसे समय में किस तरह तटस्थ रह सकते हैं? जैसे बाघजी गौरवर्ग-लंबा-पूरा खूबसूरत जवान था वैसे ही सौंदर्य और सुकुमारता की प्रतिमा भारमली भी कुछ कम न थी। दोनों में एक दूसरे को भर नज़र देखते ही प्रेम हो गया। बस, फिर तो “मो मन लागे ते मना, तो मन मो मन लग्य।” हीन्दी दशा में “दिनड़ा जाय ताळी ज्यू देता।” सबसुच,

“पनरा घरसां कांमणी, मगर पचीसां कंत।

वे दिन वलै न आवसी, जोवन रा भहामंत ॥”

इसके पाँच वर्ष बाद

दरबार में राव मालदेव बैठे हुए थे। आसपास मुत्सद्दी, अमीर-उमरा, कवि-शंडित और अन्य दरबारी बैठे हुए थे। राव का चित्त कुछ उदास सा था। थोड़ा देर के बाद उन्होंने सबको लंकापिन करने हुए कहा—

“अच्छा, अब सब जाइए मुझे ब्राह्मणी आनाजी से कुछ बात करनी हैं।” और आनाजी को इशारा करके अपने पास बुलाया।

आनाजी की उम्र पचास वर्ष के लगभग थी। लंबी अर्द्धश्वेत दाढ़ी थी। वह से गंभीरता और अनुभव ललाग्ध था। दाव के पास ज. वे सड़े रहे।

रावने कहा—

“ब्राह्मणी, कोटड़े जाकर बाघजी और भारमली अगर आने में राजे हो तो उन्हें लिखा लइए।”

“जो हुक्म अन्नदाता,” कहकर बारहठजी खाना द्या गए।

आराजी के आने का संवाद सुनकर बाघजी दौड़ता हुआ अपने गैब की सीमापर उनके स्वागतार्थ खाने गंधा और जाते ही उनके पैरों को धूलि अपने मस्तक पर लगाकर कहा—“आज मेरा धन्य भाग्य है, जो आप मेरे घर पधारे।

बारहठजी का नाम सुना तो भारमली को भीअपार आनंद हुआ।

दोनों रात-दिन बारहठजी की उदह-बंदगी में रहने लगे। यज्ञ तक कि बाघजी बारहठजी के वस्त्र धोता और बहुत मना करने पर कहता कि “मेरा अन्नोभग्य है कि, मुझे इस तरह आपकी सेवा का लाभ मिल रहा है।”

एक दिन संध्या को भारमली बारहठजी के लिये भोजन-सामग्री बाल में सजाकर ले आई। स्वयं बाघजी हाथ में हाथ-मुँह पोंछने का अँगोछा लिए खड़ा था। भारमली भोजन परोसने लगी। बारहठजी के जी में इन दोनों के प्रेम को देख एक अद्भुत भाव पैदा हुआ। उन्होंने सोचा कि ऐसी युगल जोड़ी का वियोग किस तरह किया जा सके। है? खज्जी चाहें जो कहे, मैं तो इनके बीच में वियोग की नदी नहीं बहा सकता। इतना ही नहीं, उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—

“तरुवर ज्युं त्युं मारियो, ज्युं सरवर त्युं हंस।

बाघो ज्युं ही भारमलि, दारु ज्युं ही मंस ॥”

“भाई बाघजी! मैं तो भारमली को लेने आया था, परंतु मैं तुम्हारे आनंदपूर्ण जीवन में बाधा-स्वरूप होता नहीं चाहता। अब तो मैं भी नहीं रहूँगा।”

बाघजी ने कहा—

“मेरा धन्य भाग्य है जो आप मेरे यहाँ रहेंगे। मेरा छोटा-सा घर आपके रहने से बड़े-बड़े महलों की बराबरी कर सकेगा।”

इसने दिन तक इन प्रणियों का केंद्र केवल दो जीव-धारियों तक ही सीमित था। परंतु अब तीसरे प्राणी बारहठजी के आ जाने से उन्हें बहुत आनंद हुआ। बाघजी इस बात की कोशिश करता कि जितना अच्छे से अच्छा भोजन हो बारहठजी को खिलाऊँ, अच्छे से अच्छे कपड़े उन्हें पहिनाऊँ और जैसे भी बने हर तरह से उन्हें संतुष्ट रखूँ। रात-दिन सोते-पैठते वह बारहठजी की सेवा किया करता। एक पुत्र पिता की और छोटाभाई बड़ेभाई की सेवा एवं स्तुति इससे अधिक क्या कर सकता है। किसी भी वस्तु के लिये बाघजी यह नहीं कहता कि यह मेरी है और आपकी नहीं।

शान्ति के साथ यह जीवन-स्रोत बह रहा था। तीनों जीवधारियों का परस्पर का प्रेम रासार में दुःख क्या वस्तु है इस बात को भूल चुका था। रात-दिन कितनी तेजी से व्यतीत

होते यह किसी को खबर न थी। अकस्मात् उस रात आनन्द-सात म एक प्रबल बहाव आ गया और सामने एक महान् स्कावट पैदा हुई जिसने उसके बहाव को फेर दिया।

बाघजी दो दिन बीमार रहकर इस संसार से सदा के लिये चले गये।

भारमर्जी के प्रेम का केंद्र, उसके जीवन का उल्लास, उसकी एकमात्र निधि सदा के लिये लुप्त हो गई। वह फूट-फूटकर रैन लगी। उधर एक तो बाघजी सदैव परम मित्र का वियोग और दूसरी भारमर्जी की तजज्ज्व कण दशा, इन दोनों ने मिलकर बारहठजी के जी को भी ज़बरदस्त धक्का पहुँचाया। बारहठजी पागल हो गए और रात-दिन “बाघा! बाघा!” कहकर इधर-उधर भटकने लगे। बाघजी के रहते जो चीजे उन्हें सुखदायी थीं वे आज उनके लिये दुखदाई हो गईं। दिन के प्रकाश में—रात्रि के गहन अंधकार में बाघा की याद उन्हें सताते लगी। मजन् का पागलपन तो एक सुंदरी के पीछे था, परंतु बारहठजी की चित्त उद्ध्विग्नता एक सच्चे मित्र का देहांत हो जाने पर थी। दिन को चैन नहीं, रात्रि में नींद नहीं, इधर-उधर वे बस भटका ही करते।

एक दिन बाघजी का एक धनुष्य खड़ी पर टंगा हुआ बारहठजी ने देखा कि बाघजी की याद प्रबल हो उठी। निश्वास डालते हुए उनके मुँह से तत्काल यह दोहा निकल गया—

“बाघाजी रे कोटड़े, टंगी लाल कवाँण।
साजनियो सालै नहीं, सालै आई ठाँण ॥”

(बाघजी के कोटड़े में उनकी लाल कमान टंगी हुई है। मित्र का वियोग इतना नहीं सताता जितना कि उसकी वस्तुएं देखकर दुःख होता है।)

उदयपुर का आश्यासन

कई लोग आशाजी को देखकर हंसते कि, चारण दोग कर रहा है। कई सहृदय व्यक्ति उनकी अवस्था पर तरस खाते। कूपी-कृषिकाओं पर खड़ी सुंदरियाँ उनकी हालत देख, एक निश्वास डालकर रह जातीं। बाघजी के बिना आशाजी को जीवन भरूप हो गया। वे एक जगह से दूसरी जगह जाते, घर आते-बाहर जाते, कभी सोते-कभी जड़ते, परंतु ह्रदय कभी सदा उनकी सताती थी। चित्तभ्रम हुए-से फिरते-घूमते वे उदयपुर पहुँचे। सारवाङ्ग के एक राजपूत सरदार उन दिनों महाराणा को पास रहते थे। वे आशाजी के अच्छी तरह पहिचानते थे, अतः अपने यहाँ उन्हेने इनको ठहराया। परंतु यहाँ भी आशाजी पागल की नाई गली-गली “बाघा! बाघा!” का उच्चारण करते भटकते। कुछ दिन परवात किसी ने जाकर आशाजी को अर्ज कर दी कि “अनशक्त! एक आदमी आया है जो पागल की नाई “बाघा! बाघा!” कहता हुआ फिर घेरता है।” उस समय सारवाङ्ग के वे सरदार भी पड़ी उपस्थित थे। उन्होंने यह सब हाल विस्तारपूर्वक वर्णित किया और कहा कि, “हमने लाख उपाय किए, परंतु वे बाघजी के नाम को नहीं छोड़ते।”

यह सुनकर राणाजी ने कहा—“स्वयों का मोह ऐसा ज़बरदस्त होता है जो मुनियों का मन भी चलिता कर देता है। बारहठजी को एक लाखपसाव का कदा कि धन के लालच में वे बाघा को तो क्या, अपने-आपके भी भूल जायेंगे।”

राणाजी ने बारहठजी को बुलाया। बारहठजी के साथ में उनका लड़का था जो हरदम उनकी देखभाल रखा करता था। राणाजी ने बारहठजी का मत्कर किया और स्वयं खड़े होकर उनसे मिले। ऊपर-ऊपर की बातचीत होने के बाद राणाजी ने कहा—

“बारहठजी! मैंने सुना है कि आप बाघा, बाघा की रट लगाते हैं। यदि आप आज चार प्रहर तक बाघजी का नाम न लें, तो रात्रि के प्रत्येक प्रहर के हिमाच से आपको चार लाखपसाव देंगा।”

बारहठजी ने उत्तर दिया—

“अन्नदाता! बाघजी का नाम तो मेरे रोम-रोम में रम रहा है उसकी याद धास की गति के साथ चहती रहती है। उस मित्र को मैं कैसे भुला सकता हूँ?”

बारहठजी के पुत्र ने यह बात सुनकर उनसे बहुत अनुनय-विनय करके कहा कि—
“पिताजी! मेरी आर्थिक अवस्था को तो देखिए! एक रात भर आप ज्यों-ज्यों करके अपनेको रोकिए और बाघजी के नाम को न लीजिए।”

पुत्र के अत्यंत आग्रह से उन्होंने हृदय पर पत्थर रखकर इस बात की कोशिश रखने का प्रण किया।

राणाजी महल के झरोखे में घिराज गए और बारहठजी नीचे दरीखाने में। ज्यों ही एक प्रहर रात्रि बीतने को थी कि बारहठजी की बाघजी की याद हो आई। बढ़ते हुए हृदय का वेग शब्दों से ही फम होता है। हृदय का वेग रह-रहकर बढ़ता था। बाघजी का नाम मुँह तक आकर रुक जाता था। आखिर वे इस प्रबल वेग को रोकने में असमर्थ हुए। उनके मुँह से यह दोहा निकल गया—

“बाघा आय चलेह, धर कोटड़े व धणी।

जासी फूल झड़ेह, बास न जासी बाघजी!”

(हे कोटड़े का स्वामी बाघा! तू एक बार फिर आ। जैसे फूल झड़ जाते हैं, फिर भी उनमें सुगंधी बनी रहती है, वैसे तेरे इस लेक से चले जाने पर भी तेरी याद मुझसे भुलाई नहीं जाती।)

दोहा सुनकर झरोखे से राणाजी ने कहा—

“बारहठजी! अभी तो तीन प्रहर रात्रि बाकी है। मैं तीन प्रहर में चारों ही लाखपसाव दे दूंगा।”

मध्यरात्रि व्यतीत होने को थी। चारों ओर सुनसान था। अबतक आशाजी ने अपने जी को कड़ा रक्खा। परंतु ज्यों ही एक मुर्गे ने वाँग दी, बारहठजी के हृदय में ऐसा प्रतीत होने लगा मानों मुर्गा भी बाघजी के वियोग में व्याकुल हो रहा है। आखिर उनसे बाघजी का नाम लिए बिना न रहा गया। उन्होने यह दोहा कहा—

“क्यूं कुरलायो कूकड़ा, गळती मांसल जोग।
विहंग थनै ई चींटियो, बाघा तणे विजोग ॥”

(हे मुर्गे! इस अर्द्धरात्रि के समय तूने व्याकुल होकर क्यों कुरलाहट मचाई है क्या तुझे भी बाघजी के वियोग ने घेर लिया है, जो ऐसी दर्दभरी आवाज़ में चिल्ला रहा है?)

अब तो उनके पुत्र से रहा न गया। उसने कहा—

“बाबाजी! यह क्या करने जा रहे हो। दो लाखपसाव पर तो पानी फेर दिया। कुछ मेरी स्थिति का भी खयाल है या नहीं? अब दो प्रहर तक तो मन को कड़ा रक्खे?”

रात्रि का तीसरा प्रहर व्यतीत होने को था कि आशाजी को कोटड़े की याद हो आई। किस तरह वे दोनों मित्र सुखप्रद जीवन व्यतीत करते थे। अकस्मात् काल के शोक ने आकर अपने मित्र का जीवनदीप किस तरह बुझा दिया। अब बाघजी के वियोग में कोटड़ा उन्हें कैसा प्रतीत होता है, यह एक दोहे में बताया—

“बाघाजी बिन कोटड़ी, लागे मो अहड़ोह।
लांती घनै सिधाचियों, जाँणे मांडवडोह ॥”

(बाघजी के बिना कोटड़ा ग्राम मुझे इस तरह सुनसान प्रतीत होता है जैसे कि बारात के खाना हो जाने पर लग्न का मंडप-गृह।)

अब तो केवल एक प्रहर रात्रि शेष थी। बारहठजी को बाघजी की याद अधिकाधिक सताने लगी। एक तो सुनसान रात्रि, तिस पर वियोगाग्नि का हृदय के अंदर प्रज्वलित होना, इन दोनों ने मिलकर आशाजी के हृदय में तूफान मचा दिया। उधर राणाजी ने झरोखे से आवाज़ दी—

“आशाजी! अब तो केवल एक प्रहर रात्रि शेष है। यदि इसमें भी आप बाघजी का नाम न लें तो मैं आपको चारों ही प्रहर के चार लाखपसाव दे दूँ।”

यह कहना ही था कि बारहठजी बोल उठे—

“चीघण चाळधियांह, खह मांही खंखेरियां।
रांणा! राख थयांह, बीसरसें जद बाघने ॥”

(हे राणाजी ! अग्नि में प्रज्जलिज होकर राख बनने के बाद ही इस शरीर से वाघजी का नाम भुजया जायगा ।)

“यहै मसांण ययांह, आतम पूगों अलख पद ।

गंगा हाड गयांह, बीसरसों जद वाघने ॥”

(जब वाघजी के स्नान की जगह के पास मेरा स्नान करनेगा और आत्मा का संबंध परमात्मा से हो जायगा और मेरी हड्डियां गंगाजी की धारा में चलाई जायेंगी तभी वाघजी का नाम भुजया जायगा ।)

राणाजी झरोखे से तत्काल नीचे उतर आए और बारहठजी को गले लगाकर कहने लगे—

“बारहठजी ! आपका स्नेह धन्य है । मैंने तो आज तक कोई ऐसा उदाहरण नहीं देखा । सचमुच यही कारण है कि क्षत्रिय, चारणों को पवित्र और सच्चे पथ-प्रदर्शक मानते हैं । हमारी जाति और आपकी जाति का संबंध आजकल का नहीं वरन परंपरा से निःस्वार्थ चला आता है । अब मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि आप यहाँ पर रहें । मैं आपको चारों ही लाख-पसाव देता हूँ ।”

राणाजी ने कहा बारहठजी के पुत्र को चारों लाखपसाव दे दिए ।

राणाजी की यह भरसक कोशिश रहती कि किसी प्रकार मैं इस चारण के दुःख को दूर करूँ । खाने-पीने एवं पहनने-ओढ़ने में कोई कसर न रखती ।

एक दिन महाराणा हीज पर नहाने गए और अपने साथ बारहठजी को भी ले गए । दोनों ने पात-भात ही आने वस्त्र खेड़कर रखे । बारहठजी नहाकर पहले आ गए । उन्हें चित-भ्रम दशा में कुछ विशेष ध्यान तो था नहीं, उन्होंने महाराणा की पोशाक पहन ली । पाग में कोई नौकर भी न था जो उन्हें टोकता, क्योंकि नौकरों को अंदर आने की आज्ञा नहीं थी । पोशाक पहनकर बारहठजी एक ओर बैठ गए । पीछे से महाराणाने आकर बारहठजी को अपनी पोशाक पहने देखा तो कहा कि—

“बारहठजी ! आपने तो मेरी पोशाक पहन ली है !”

इतना सुनते ही बारहठजी को वाघजी की याद आई । अतीतस्मृति पुनः जाग्रत हुई । उनकी आँखों के सम्मुख वाघाण कपड़े पहने हुए वाघजी, महाराणा से बहुत उच्च स्थान पर दिखलाई दिए । एक निःस्वास छोड़कर उन्होंने कहा—

“की कह की कह की करों, कहा करों बखाण ।

यारो म्हारो नह क्रियो, ऐ बाघा अहनाण ॥”

(मैं अब क्या क्या कहूँ और वाघजी का क्या बखानूँ ? उसको तो पहिचान ही यह थी कि, वह किसी चीज़ को यह मेरी है और यह तुम्हारी है, ऐसा नहीं कहता था ।)

बस, तुरंत ही उन्होंने महाराणा के वस्त्र उतार दिए और अपने वस्त्र पहनकर वे यह कहते चलने लगे—

“चाल मना रे ! कोटड़े, पग दै पावडियांह ।

वाघा स्रं वातां . करेां, गळ दै बांहडियांह ॥”

(हे मन ! इस हौज़ की सीढियां पर पैर रखकर कोटड़े को चल । वहाँ पर वाघजी के गले में बाँहें डालकर वातें करेगे ।)

राणाजी ने उनकी रोकने के लिये बहुत कुछ अनुनय-विनय की, परंतु उन्होंने एक न सुनी और मारवाड़ की चल दिए ।

पुनः कोटड़ा को

एक स्थान से दूसरे स्थान भटकते-फिरते आशाजी कोटड़े की सीमा में पहुँचे । वहाँ से कोटड़ा गाँव एक मील की दूरी पर था । वसंतश्रुतु थी, चारों ओर वृक्ष हरेभरे दिखलाई दे रहे थे । बावली के किनारे पर खड़े अपने पूर्वपरिचित एक बरगद के वृक्ष के पास कि जहाँ उन्होंने वाघजी के साथ कई बार वसंतश्रुतु में महफिलें मनाई थीं, खड़े रहे । बरगद को नीचे से ऊपर तक उन्होंने देखा तो मालूम हुआ कि वह हराभरा है । वस, क्या था उनकी पूर्वस्मृति जाग पड़ी । वाघजी का चिरवियोग हो जाने पर भी यह बरगद हराभरा है, यह उनके वियोगाग्नि से जलते हुए हृदय को कब सह्य हो सकता था ? उन्होंने बरगद को लक्ष्य करके यह दोहा कहा—

“बड़ बावड़ी तणाह, नीमाणा नीलो थयो ।

बाघा बीछड़तांह, साख तणो सूखो नहीं ॥”

(हे बावली ऊपर के निर्लज्ज बरगद ! मुझे आश्चर्य है कि, वाघजी का चिरवियोग होने पर भी तू शाखाओं तक सूखा नहीं और हराभरा है !)

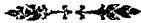
थोड़ी दूर चलकर वे एकदम नीचे बैठ गए और चारों ओर निराशापूर्ण दृष्टि से देखने लगे । उनकी आँखों के सामने चारों ओर अंधकार फैल रहा था । वे थके-मंदि वहाँ से रहे ।

उदयाचल की ओर से सूर्यदेव लालिमा लिए उदित हो रहे थे । समस्त संसार निद्रा से जाग उठा था परंतु एक आदमी आज सदा के लिये सो गया था । आज चिरकाल का वियोगी पक्षी पिंजड़े को छोड़ संयोग की ओर उड़ चुका था । जहाँ उसका जीवन-सखा वाघजी है वह मंजिल उसने प्राप्त कर ली थी । अब तो उस बरगद के पास पड़ा था सिर्फ़ बारहठजी का निर्जीव शरीर कि जिसकी घेरे आठ-दस आदमी खड़े थे । एक आदमी उनमें से बोल रहा है—

“गए बेचारे बारहठजी । परंतु वाघजी, क्षत्रियजाति और कोटड़े को तो वे सदा के लिये इतिहास में अमर बना गए ।”

आज इस बात को ४०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, परंतु मारवाड़ ही क्यों समस्त राजपूताना एवं गुजरात-काठियावाड़ में वाघजी और आशाजी का नाम लोगों की जिह्वा पर है । जगह-जगह उनकी बात कही जाती है । क्षत्रिय और चारण जाति के पारस्परिक सच्चे स्नेह का यह उदाहरण दिया जाता है । ऐसा विरला ही क्षत्रिय या चारण होगा जिसे वाघजी का एक भी दोहा याद न हो ।

सम्पादकीय टिप्पणियां



मेवाड़ के चारणग्राम

फाल्गुन कृष्ण १४ वि० सं० १९९५ के दीवान बहादुर यकुर पं० धर्मेनारायणजी सा० फक, एम० ए०, बार० एट० लॉ०, सी० आई० ई०, मुलाहिव आला-राज्य मेवाड़ की सेवा में मेवाड़-चारण-सभा की ओर से जिस डेपुटेशन के जाने का संवाद प्रकाशित हुआ है उसके द्वारा पेश किये गये आवेदनपत्र से मेवाड़ के चारणग्रामों की वर्तमान स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है, अतः पाठकों की जानकारी के लिये उसकी प्रतिलिपि नीचे दी जाती है—

“अपरच: अर्मी आपका पधारना श्रीमान श्री टी हुजूर के साथ जब जौधपुर हुआ था तब हां मारवाड़-चारण-सभा की ओर से एक डेपु-शन ने आपकी सेवा में उपस्थित होकर मेवाड़ चारणग्रामों की जन्ती की पार्रवाई के खिल-ले में आपसे जो अर्ज की और उसका जो अनुभूतिपूर्ण उत्तर आपने डेपुटेशन को दिया, की सूचना मारवाड़वालों ने वहां की है। के लिये हम लोग मारवाड़-चारण-सभा के आभारी हैं।

मेवाड़वालों की ओर से अब तक इस संबंध अर्ज माहज न करने-कराने का कारण संक्षेप में यह है कि, कितने ही दुःखभाव से हो, फल अपने सामाजिक कष्ट को मिटाने के लिये जानेवाले सामूहिक प्रयत्न को भी राज्य की से शक्ति की दृष्टि से देखे जाने की प्रवृत्ति है हम लोगों में से कुछ मुखिया लोगों के हैं। परंतु जब हम देख रहे हैं कि

जिस मुख्य हेतु से हम उक्त भय की इतना मानते हैं वही जब मिटाया जा रहा है तो अपने स्वार्थ व राज्य-हितचामना से भी अपनी दुःखगाथा राज्य के महामंत्रों-आप दयालु महोदय के सामने निवेदन कर देना हमारे लिये लाजमी हो गया है।

हम लोगों को जो माफियां हैं वे हमारे पूर्वजों की सेवाओं से प्रसन्न होकर राज्य की ओर से बड़ी २ धार्मिक प्रतिज्ञाओं के साथ दी हुई हैं, जिस प्रकार कि आजकल भी राजालेख प्रसन्न होते हैं उन्हें देते हैं।

इन माफियों के गांवों पर हम लोगों का सैकड़ों बरसों का कच्चा निरन्तर बल आ रहा है।

राज्य ने अब तक इनके तांबापत्र या पट्टे-परवानों के होने न होने का कभी सवाल नहीं उठाया और इन्हें बराबर बहाल रक्ता है।

किन्तु आजकल किसी भी सरकारी महकमे में माफियों के गांव का किसी भी शब्द का सम्बन्ध पेश होवे ही उसकी सनद तलब करने का आम उसूल, न मालूम क्यों, इस्तिस्नान किया गया है।

इस रवैये से चारणों के क्रीम बीत-बाईस गांवों पर कुर्की व जन्ती की पार्रवाई जारी है और कुछ के लिये तो जन्ती के हुकम भी हो गये हैं; जिससे हमारे बीसियों कुटुम्ब दाने २ के लिये मुहताज होने की हालत में आ गये हैं और उन्हें पूर्ववत् अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा कायम रखना असंभव हो रहा है।

सच अर्ज किया जाय तो आज मेवाड़ का प्रत्येक चारण राज्य के इस खैये से अत्यन्त दुःखी और व्रस्त है।

आप जानते हैं कि चारण जाति में अपनी जायदाद के अमूमन भाईभाग होने का रिवाज है। ऐसी दशा में सनद किसी भाई के पास रह जाने से और उसकी औलाद की नाबालगी, नादारी या आपसी ईर्ष्याद्वेष आदि के कारण उसका खो जाना, गिरवी रख देना या इधर-उधर ऐसे हो जाना कि फिर पता न लगे;—साधारण समझ में भी आ जाने लायक है। और यह न मान कर यह कहना तो कितना बेवुनियाद है कि वे गांव जिनकी सनदें न मिलें, चारणों के दबाये हुए हैं।

इस परिस्थिति में सिर्फ सनद न होने के कारण पीड़ियों से चले आते हुए कुब्जे को कि जिसको राज्य भी स्वयं अपने महकुमों के कामजे में स्वीकार करता आ रहा हो, उठा देना न्यायधर्म के सर्वथा विपरीत है।

आपको बन्गी मान्य है कि मारवाड़ में ऐसा शकाल उठने पर कुब्जे को ही महत्व दे कर सब माफिया बहाल रखी गई हैं और गाठ रात में पहिले की मारों के लिये सनद यद् देना लाजमी नहीं माना गया है। और राजपूताना के मुख्य राज्यों में चारणों पर ऐसा वज्रप्रहार कहीं नहीं हुआ है।

फिर, जिस राज्य की धर्मप्रियता, न्यायनिष्ठा एवं मर्यादापालन को दूसरे सब आदर्श मानने आ रहे हैं, उसमें हमारे साथ इस प्रकार का निर्दय व्यवहार,—और यह भी वर्तमान श्रीमान् कारभारीकुलमल-दिवाकर जैसे उदारगुण, प्रजा-प्रेमक, धर्मवीर नरेश्वर के शासनकाल एवं आप

जैसे न्यायप्रेमी सर्वोपरि अधिकारी के कार्यकाल में हो; यह हमारे लिये तो घोर दुर्भाग्य है ही, राज्य के लिये भी कहां तक शोभाप्रद है, इसके लिये हम क्या अर्ज करें !

हमारी विनम्र सादर प्रार्थना है कि जिन गांवों के लिये सनद पेश न होने से ही ज़म्ती व कुर्की के हुकम हुए हैं वे तुरन्त मन्सूफ़ फरमाने की कृपा की जाय और भविष्य में इस प्रकार सनद-तलबी के खैये को भी बंद किये जाने की आज्ञा प्रदान की जाय। ”

× × ×

इसके बाद की खबर है कि डेपुटेशन को दिये गये वचनानुसार श्री मुसाहिय आला साहिय ने श्रीमान् मेदपाटेश्वर को सेवा में अर्ज की तो श्रीमानों ने इस दिषय पर कृपापूर्वक विचार करने के लिये फरमाया।

इसके पश्चात् यह भी समाचार है कि जिन चारणप्रामों पर ऐसी कार्रवाई हो रही है उनकी फूहरिस्त महकमा रास से तलब फरमाई गई है और श्रीमान् मेदपाटेश्वर के यह दर्याफ्त फरमाने पर कि चारण क्या चाहते हैं, रोमपुर टा० सा० करनीदानजी ने कुछ लिख-लिखाकर पेश भी कर दिया है।

× × ×

इस अनुकूल परिस्थिति में भी मेवाड़ के जो चारण सरदार गपूती व गैरगपूती का दम भरते हैं, अपने प्रनाद, अहंकार व पारस्परिक ईर्ष्याद्वेष के कारण कुछ सफल प्रयत्न न कर सके तो क्या जातिहित के लिये कां गइं इस अशान्ति बेगारवादी का उन पर अमिट कंकड़ न रहेगा !

सम्मेलन का आगामी अधिवेशन

अ० भा० चारण-सम्मेलन के पाँचवें अधिवेशन के अवसर पर छठे अधिवेशन के लिये मेवाड़ की ओर से आमंत्रण दिया गया था किन्तु अब तक मेवाड़ में इसकी कोई चर्चा नहीं; क्यों ? इसका कुछ उत्तर नीचे के प्राप्त विवरण की पंक्तियाँ—जिन्हें हम बड़ी हिचकचाहट और हार्दिक दुःख के साथ कर्णव्य-विवश हो प्रकाशित करते हैं; देंगी।

“उदयपुर में पाँच-सात चारण सरदारों की हवेलियाँ हैं उनमें एक अरसे से दधिवाड़ियों और महियारियों का पारस्परिक द्वेष एक खुला मेद है। इनके इस द्वेष के कारण मेवाड़ों चारणों की तो अकथनीय हानि हुई और हो ही रही है, किन्तु अब उसका विपैदा असर समस्त जाति तक भी पहुँच जाना चाहता है और वह इस तरह कि मेवाड़ की ओर से सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन (जोधपुर) के अवसर पर ही कुछ उतसाही जाति-हितैषियों ने आगामी अधिवेशन को मेवाड़ में आमंत्रित करने के उद्देश्य से निमंत्रण लिखकर हस्ताक्षररूप में अनुमति प्राप्त करने के लिये 'अ० सा० कानीशानजी दधिवाड़िया के पास भी भेजा; परन्तु उपरोक्त जातिहितैषियों में महियारिया भी थे और ऐसे सत्कार्यों को टाल देने के लिये राजकीय भय का काल्पनिक भूत सदा ही उनके गिर पर सवार रहता है इसलिये वे हस्ताक्षर करने से इन्कार हो गये। फलतः दूसरे लोग भी ठिठक गये और निमंत्रण न दे सके; हालांकि जोधपुर सम्मेलन में पहिले किसी अधिवेशन में शरीक न हुए उतने मेवाड़ी प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे।

पंचम अधिवेशन का स्थान (राजकोट), मेवाड़ से बहुत दूर पड़ता था इसलिये मेवाड़ से

सिर्फ एक-दो व्यक्ति ही पहुँच पाये। जिनमें प्रतिनिधिरूप से तो 'अ० सा० प्रतापसिंहजी महियारिया ही थे। उन्होंने इस विश्वास पर कि ऐसे सामाजिक काम में राजकीय तो कोई बाधा हो ही नहीं सकती प्रत्युत राजकोट-नरेश के समान ही सम्मेलन को हर तरह की सहायता और परमदानी श्रीमान् हिन्दूमूर्ध से भी आशा ही है, और विरोधभाव रखनेवाले भी जब देखेंगे कि मेवाड़ के नाम पर निमंत्रण दे दिया गया है तो वे भी अपने रागद्वेष को छोड़ सहयोगी हो जायेंगे, जातिसेवा की भावना से निमंत्रण दे दिया।

इसी बीच में सम्मेलन के अध्यक्ष महोदय को जब यह शत हुआ कि मेवाड़ में सम्मेलन को न चाहनेवाले लोग श्रीमान् महाराणा साहिब के गाराज हो जाने का डर लोगों को दिखाते हैं, तो उन्होंने श्रीमन्मेदपाटेश्वर के प्राइवेट सैक्रेटरी महोदय प० रामगोपालजी सा० त्रिवेदी को इस संबंध में लिखा। उत्तर में सैक्रेटरी सा० ने अध्यक्ष महोदय को इस आशय से सूचित किया कि श्रीमान् श्री जी हुजूर का कभी ऐसा खयाल नहीं है, अतः यदि अर्ज करवाई जायगी तो सम्मेलन के लिये बखूबी आज्ञा हो जायगी।

परन्तु परिस्थितिवश विरोधियों की अनुकूलता प्राप्त होना सम्मेलन-प्रेमी भी आवश्यक समझते हैं और वह अभी तक अप्राप्य है, इसलिये अभी तक न तो श्रीमन्मेदपाटेश्वर की सेवा में अर्ज करवाई जा सकी है और न कोई अन्य प्रबंध सम्मेलन के अधिवेशन संबंधी हो रहा है।

क्या ही अच्छा हो, जिस प्रकार नई पीढ़ी के दधिवाड़िया (श्री कविराजा साहिब शक्ति-दानजी आदि, व महियारिया (अ० सा० प्रताप-

सिंहजी आदि) जातिहित के कार्यों में आपसी रंजिश को बीच में लाना पाप समझने लगे हैं उसी प्रकार इन दोनों खोंपों के वृद्धजन भी समझने लगे।”

ऊपर वर्णन की हुई परिस्थिति में उचित यही प्रतीत होता है कि सम्मेलन के प्रधान पदाधिकारी अपने प्रभावशाली प्रयत्न से मेवाड़ के सम्मेलन-प्रेमियों के अनुकूल, विरोधभाव रखनेवालों को बना दें या फिर स्वयं श्रीमन्मेदपाटेश्वर की सम्मेलन के अधिवेशन के लिये स्वीकृति प्राप्तकर मेवाड़ के सम्मेलन-प्रेमियों को सूचना दे दें। और यदि ऐसा करना ठीक न मालूम हो तो फिर सम्मेलन-पदाधिकारियों को अपने नियमानुसार मेवाड़ में या कहीं सम्मेलन का अधिवेशन करने की योजना करनी चाहिये, क्योंकि बिना सम्मेलन के प्रभाव के निकट भविष्य में मेवाड़ में सम्मेलन होने के आसार नज़र नहीं आते।

अंत में हम मेवाड़ के सम्मेलन एवं जाति-हित-विरोधियों से तो राष्ट्रभाषा के प्रमुख कविवरों के शब्दों में निवेदन करेंगे कि—

“सुन्दरता है व्यर्थ, व्यर्थ वह कुलीनता है।
जिन मूढ़ों में नहीं जाति की कुछ ममता है।

जिन में हठ, दुर्भाव भयङ्कर भरे हुए हैं।
जीते ही वे सभी पूर्णतः मरे हुए हैं॥

थिक् जिसका व्यवहार नहीं कुछ भी सच्चा है।
अब भी सोचा ज़रा स्वार्थजीवन कच्चा है॥

कहते हो कुछ और, हृदय में और भरा
करते हो कुछ और कौन यह परम्परा है ?

हुआ वही भूभार और जननी दुखदाता,
परोपकृति के लिये दुःख जो नहीं उग्रता।

रुपयों ही के लिये शास्त्र क्या पड़े-पड़ाये ?
सुकवि बने क्या खाक ! काव्य कर लिये किराये !

देख जाति-दुर्दशा पसीजी तनिक न छाती।
मुखिया फिर भी बने रहे, क्यों लाज न आती !

बिना हुए निःस्वार्थ काम क्या चल सकता
बिना गले क्या बीज कमी भी फल सकता है ?

बख्शीन ‘गृहीन तुम्हारे प्यारे भाई—
कल्प रहे हैं किन्तु तुम्हें हा ! दया न आइँ !”

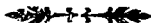
—श्री रामचरित उपाध्याय
(किंचित् शब्दपरिवर्तन के साथ)

“रहे न भूल के कभी मदान्ध तुच्छ चित्त में।
सनाथ जान आपको करो न गर्व चित्त में॥

अनाथ कौन है यहां त्रिलोकनाथ साथ हैं।
दयालु दीनवन्दु के बड़े विशाल हाथ हैं॥”

—श्री मैथिलीशरण गुप्त

शोक-सम्वाद



हा ! देशभक्त राव साहिब श्री गोपालसिंहजी राष्ट्रधर !!

गत १२ मार्च १९३९ को खरखा के राव सा० गोपालसिंहजी राष्ट्रधर का ६६ वर्ष के आयु में दुःखद स्वर्गवास हो गया। अजमेर जिले में रायगढ़ के कई ठिकाने हैं जिनके रक्षामी अमूमन

इस्तमरारदार कहलाते हैं। इन्हीं में से एक स्वर्गीय राव साहिब भी थे। परन्तु अपने अनेक सद्गुणों के कारण अपने जिले से बाहिर सारे राजपूताना के अलावा देश के अनेक भागों में वे सुविख्यात

थे। आजकल राजपूत सरदारों के रहन-सहन और आकृति-प्रकृति से प्रायः विलासिता ही परिलक्षित होती है किन्तु राव साहिब गोपाळसिंहजी के व्यक्तित्व में राजपूती काकापन और दौर्त्य मूर्तिमन्त दिखाई देता था। इतना होते हुए भी आप अक्रान्त नहीं थे बल्कि बड़े मिलनसार और सहृदय थे।

राव साहिब में अपने कुल और धर्म का बड़ा अभिमान था और था उच्चलन्त देशप्रेम। अपने धर्मप्रेम के कारण वे हिन्दू-महासभा के एक अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए थे और देशप्रेम के कारण पाँच वर्ष की नजरबंदी हो सदा के लिये ठिकाने के अधिकार से वंचित हुए थे। चारण जाति के साथ राव साहिब का सहज प्रेम

था और वे इसे बड़ी आदर की दृष्टि से देखते थे। उनके निधन से राजपूताना-मालवा का प्रत्येक परिचित चारण अपने को एक प्रकार से निर्जन हुआ-सा अनुभव करता है और राव साहिब के घनिष्ठ मित्र ठा० सा० केसरीसिंहजी बारहठ (कोटा) के शब्दों में दुःखी हो कहता है—

“परम उदार त्यागमूर्ति पुंज साहस को,
क्रांति को पुजारी दुख देश को सखी नहीं।
भारती-स्वतंत्र-वलिवेदी पै विहँसि चढ्यौ,
दासता विलासिता की धार में बधौ नहीं।
धीरज-धुरीण सहि संकट अटल रख्यौ,
ईश्वरभक्ति भिन्न अन्य आश्रय गह्यौ नहीं।
राष्ट्रवर राव श्री गोपाल के सिधाते स्वर्ग
आज राजपूती के नमूने हू रख्यौ नहीं :!!”

हा ! कुँवर श्री आईदानजी सा० बारहठ !!

अन्यत्र प्रकाशित संवाद से पाठकों को ज्ञात होगा कि मथाणिया (मारवाड़) निवासी कुँवर श्री आईदानजी सा० बारहठ, वी० ए०, एल्-एल्० वी०, का युवावस्था में ही गत २० मार्च को जोधपुर में अचानक दुःखद स्वर्गवास हो गया।

आईदानजी सा० से लेखक का प्रथम परिचय दि० १९९४ के फाल्गुन में जोधपुर हुआ था और तत्पश्चात् राजकोट-सम्मेलन के अवसर पर कुछ दिन साथ रहने और वहाँ से श्री द्वारिका तक की यात्रा सम्मेलन के अन्य राजस्थानी प्रतिनिधियों के साथ साथ करने का सुखद संयोग प्राप्त हुआ था। इस अल्प परिचय से भी उनके व्यक्तित्व एवं निःछल प्रेमपूर्ण व्यवहार और जातिहित-कामना की जो छाप हृदयपट पर अंकित हुई वह अमिट-सी है। उनके आकस्मिक परलोक-

गमन से ऐसा मालूम हो रहा है जैसे कोई घनिष्ठ मित्र धोखा देकर चला गया हो। हृदय में बड़ी वेदना होती है और निश्वास के साथ मुँह से रुकते २ शब्द निकलते हैं—

हँसमुख करता जातहित,
मन न रखे अभिमान।
कुण अव वो थां ज्यूं करै,
दिलसुध आईदान !!

आईदानजी सा० के सुयोग्य व्यक्तित्व से उनके परिवार की तो न मालूम क्या २ आशायें होंगी ही जाति की भी उनसे बड़ी आशा थी। जातिसेवा के लिये अपने समय का कुछ भाग वे प्रतिदिन देते रहते थे। सम्मेलन के इस सुलभ पत्र के लिये भी हर अंक में अपनी तरफ

से एक कहानी देने का उन्होंने वादा किया था और जहां दूसरे कई युवक विद्वान् “चारण” के लिये एक लाइन भी लिखकर नहीं भेज सके हैं, उन्होंने दो कहानियाँ “बाघा कोटड़िया” और “औसर” नामक लिखकर भेज भी दी थीं। खेद है, इनमें से एक भी वे प्रकाशित न देख सके! “औसर” शीर्षक कहानी में उन्होंने मृत व्यक्ति के पीछे किये जानेवाले भोजों के दुष्परिणाम का कारुणिक वर्णन किया है। पता नहीं, उनके पीछे इस क्रूरति का पालन किया गया या त्याग?

जगदम्बा से हम आईदानजी सा० की आत्मा के लिये सुख-शान्ति की प्रार्थना करते हैं और उनके सन्तत परिवार के साथ अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

खेद है कि, नोक (मारवाड़) निवासी डॉ० धनसिंहजी कविया—सब इन्स्पेक्टर पुलिस का देहांत हो गया।

ज़रा इस ओर ध्यान दें—



मि० डब्ल्यू० ब्रोम्ज़ ने नाथ-संप्रदाय एवं उसकी यौगिक प्रणालि के विषय में ‘गोरखनाथ एन्ड द कनफ़ेडरज़’ नामक अँगरेज़ी भाषा में एक संशोधनात्मक ग्रंथ लिखकर अभी प्रसिद्ध किया है। चारण जाति में भी उस संप्रदाय के चारह योगी हुए हैं, जिनमें महात्मा चर्पटनाथ तो उस संप्रदाय के प्रमुख आचार्यों में होने से परम प्रसिद्ध हैं। इतिहास लेकर एम० ए० होनेवाले सज्जतीय विद्यार्थियों भी क्या उनके विषय में एक ग्रंथ लिखेंगे!

प्रसिद्ध राजस्थानी विद्वान् सेठ श्री कन्हैयालालजी पोद्दार महाकवि श्री सूर्यमल्लजी मिश्रण, श्री स्वरूपदामजी एवं गोस्वामी गणेशपुरीजी की कविता के विषय में आलोचनात्मक लेख लिखने के लिये उनकी जीवनियाँ प्राप्त करना चाहते हैं।

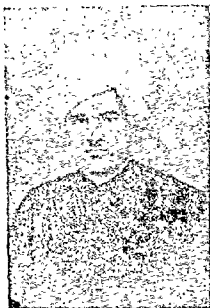
यह यतन की कोई आवश्यकता नहीं कि पोद्दारजी हिंदीभाषा के सुप्रसिद्ध कवि और बालकारनाथ के उद्भट विद्वान् तो हैं ही, अपने को महाकवि सूर्यमल्लजी की शिष्य-परंपरा में भी मानते हैं। हम आशा करते हैं कि, हमारे जो बंधु-इन कवियों की जीवनियों से परिचित हैं, वे फौरन ही उनके इस पते पर लिख भेजेंगे—सेठ श्री कन्हैयालालजी पोद्दार, पोद्दार-भवन, मथुरा



कुँवर श्री आईदानजी सा० वारहठ (मथाणिया) के असामयिक स्वर्गवास पर शोकसभा एवं श्रद्धांजलियाँ

अत्यंत दुःख की घण्टा है कि विगत सा० २१-३-१३९ फेब्रुअरी के पीने ग्यारह बजे कुँवर श्री आईदानजी सा० वारहठ, बी० ए०, एल० एल० बी० (मथाणिया-निवासी), प्रोवेंशनरी नायब हाकिम का जोधपुर में अचानक अगमय ही में देहांत हो गया।

आप महधरा के सुयोग्य, कर्मशील, लोकप्रिय एवं होनहार पुत्र थे और अपनी योग्यता एवं विद्वता के कारण जागीरदार-एसेसिएशन, जोधपुर राज्य; मारवाड़ प्रांतीय चारण-



सभा; श्री उम्मेद चारण-छात्रालय-प्रबंधसमिति एवं अखिल भारतीय चारण-संमेलन आदि सार्वजनिक संस्थाओं के मंत्री-उपमंत्री थे और उनका सुचारु रूप से संचालन कर रहे थे।

इस शोकसभा में निम्नोक्त प्रमुख नागरिक और राज्यकर्मचारियों ने भाग्य लिए थे—

श्री अनूपसिंहजी, बी० ए०, एल० एल० बी०, असिस्टेंट लीगल रिमिम्बरेंसर, जोधपुर; श्री द्वारिकादासजी एडी, बी० कॉम०, ज्वाइंट केतवाल नं० २, जोधपुर; श्री रंगरामजी, ऐड-वोकेट, जोधपुर; श्री रामगोपालजी, अवसर-प्राप्त कामदार-धोमती

मार्जी चौहानजी साहिब; श्री सूर्यराजजी व्यास, बी० ए०, विशारद, महकमाखास, जोधपुर; ठाकुर श्री दुर्जनसिंहजी सा०, दासपै; श्री हरलालजी दासपैस्ट, जोधपुर; श्री बदरीदासजी कपिया

“आज हम श्रीयुत् आइंदानजी बारहठ, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, के चिरवियोग पर शोक प्रगट करने के लिये एकत्र हुए हैं, जिनकी अल्पकालीन बीमारी के बाद ता० २१-३-३९ की रात्रि को असांनयिक मृत्यु हो जाने से उनके समस्त मिलनेवालों में गहन शोक एवं उदासी के कारण सन्नाटा छा गया है और उनके परिवार पर अन्यंत भयंकर आपत्ति आ पड़ी है।

मैं यहाँ संक्षेप में स्व० श्रीयुत् आइंदानजी की जीवनी और उनके द्वारा संपादित सत्कार्यों का वर्णन करता हूँ।

सन् १९१२ ई० में मथालिया गाँव के प्रतिष्ठित चारण-परिवार में जन्म लेकर उन्होंने उम्मेद-चारण-छात्रालय में रहते हुए श्री दरबार-हार्स्कूल, (जोधपुर) में दसवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त कर सन् १९३१ ई० में वे जसवंत-कॉलेज (जोधपुर) में प्रविष्ट हुए। वहाँ बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त कर सन् १९३५ ई० में काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए, जहाँ से वे एल्-एल्० बी० (प्रथम वर्ष) और एल्-एल्० बी० (द्वितीय वर्ष) —दोनों कक्षाओं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। शिक्षा समाप्त होनेपर सन् १९३८ ई० में उन्होंने बकालत शुरू की, परंतु थोड़े ही दिन बाद उसे छोड़ दिया और जोधपुर राज्य ने उन्हें प्रोवेदानसी हाकिम के पद पर नियुक्त किया। तबसे स्वर्गवास तक वे उक्त पद जोधपुर शहर की कोतवाली में कार्य करते रहे।

अपने संपूर्ण शिक्षा-काल एवं राजकीय कार्य-काल में वे बहुत ही लोकप्रिय सज्जन सिद्ध हुए। वे सामाजिक, साहित्यिक, एवं शिक्षा आदि सभी प्रभु के सत्कार्यों में भाग लेते थे। उनका मानसिक दृष्टिकोण अन्यंत विस्तृत और उनकी

सुरुचियों विभिन्न थीं। अपने सरल स्वभाव, चित्ताकर्षण शिष्टाचरण, शीतल प्रकृति, सुस्मित अवस्था, खरापन और हार्दिक सचाई आदि महान् सद्गुणों के कारण उन्होंने अपने इष्टमित्रों एवं परिचितों के हृदय में बहुत ही सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त किया था। वे अन्यंत सहनशील और उदारवृत्ति के व्यक्ति थे। अपने जीवनकाल में उन्होंने कभी किसी के साथ, जो उनसे मिला, मतभेद या गलतफहमी होने का मौका नहीं दिया। उनमें सबसे बड़ा सद्गुण था परोपकार से प्रेरित उनका जनसेवा-प्रेम। जिसका ज्वलंत प्रमाण यह है कि अपने अल्पकालीन जीवन में वे चार से भी अधिक संस्थाओं के मंत्रित्व का कार्य करने के लिये समय निकाल सके; यथा—मंत्री, मारवाड़-जागीरदार-ऐसोसिएशन; मारवाड़ प्रांतीय चारण-सभा; उम्मेद-चारण-छात्रालय-प्रबंध-समिति और सहायक मंत्री, अखिल भारतीय चारण-समेलन।

उनके निधन से हमारे देश ने एक उपयोगी नागरिक, जोधपुर राज्य ने एक होनहार पदाधिकारी, चारण जाति ने एक सुयोग्य होनहार नेता और उनके इष्टमित्र-समुदाय ने एक सच्चा एवं अंतरंग मित्र खो दिया। जीवन के यौवनकाल में इस महान् व्यक्ति का स्वर्गवास मुझे इस अंग्रेजी कदावत का स्मरण दिलाता है—“जिन्हें परमात्मा प्यार करते हैं, वे यौवनावस्था में ही मर जाते हैं।”

बारहठ आइंदानजी के आकरिमक, अंगामयिक एवं हृदयविदारक निधन से उनके परिवार की जो अभिष्ट हानि हुई है वह वर्णनीय है।

उनके परिवार की सब आशाएं और अभिलाषाएं, जो उन पर अवलंबित थीं सहसा खर-खर हो गईं। उनका परिवार जो अभी होरी के खोहार के अवसर पर सुरामा था, आज अर्धव

असहाय और दुःखग्रस्त हो गया। उनके वृद्ध पिता कि जिन्होंने उनकी उपाशिक्षा में बहुत कष्ट व्यक्त कर चुके थे, और धन का भारी बोझ उठाया, उन श्री जैतदानजी की दशा आज अपने पुत्ररत्न के अचानक छीन लिए जाने के कारण पागल मनुष्य की-सी हो रही है। स्वस्थ आईदानजी अपने पीछे एक असहाय विधवा एवं दो छोटे-छोटे बच्चे छोड़ गए हैं, जिनकी दुःख दशा अत्यंत करुणास्पद है।

मैं सभी उपस्थित राज्यों से निवेदन करता हूँ कि वे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से स्व-आईदानजी की आत्मा को चिरंशान्ति एवं सद्गति तथा उनके परिजनों को इस असीम दुःख को सहन करने की शक्ति देने के लिये प्रार्थना करें।

मैं उपस्थित महासभाओं से यह भी प्रार्थना करता हूँ कि वे स्व-आईदानजी के अत्यंत दुःखी परिवार के प्रति सहायभूति प्रदर्शित करें और जोधपुर राज्य से उनकी असहाय विधवा और छोटे निराधार बच्चों के भरण-पोषण के लिये आर्थिक सहायता प्राप्त करने में सहयोग दें *।

इस शोकसूक्ति में निम्नोक्त गण्यमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे—ठाकुर श्री देवीसिंहजी सा० (भाद्राजुन); ठाकुर श्री अमरसिंहजी सा० (जसाल), सेशान्य जज, जोधपुर; श्री बलदेव रामजी सा०, सिटी पुलिस सुपरिटेण्डेंट, जोधपुर; श्री प्रतापमलजी मेहता, ऐडवोकेट, जोधपुर; श्री हेमराजजी सा०, एम् ए०, प्रोफेसर, जसवंत-कॉलेज, जोधपुर; श्री दयामलदासजी उज्ज्वल, एम् ए०, इस्पेक्टर, कोओपरेटिव सोसाइटीज, मारवाड़; श्री अमृतराजजी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ऐडवोकेट, जोधपुर; श्री सरदारसिंहजी, बी० ए० पर्सनल असिस्टेंट सुपरिटेण्डेंट, क्वार्टर ऑफ़ वाइज जोधपुर; ठाकुर श्री जेरावरसिंहजी सा०, पाटौची श्री सी० जे० फरनेन्सडिस, अध्यक्ष, पञ्चसुधार-विभाग, जोधपुर; श्री टी० जी० वाली, बी० ए० हेडमास्टर, श्री सुमेरू-स्कूल, जोधपुर; श्री पञ्जालालजी बी० ए०, एल्-एल्० बी०, सुपरिटेण्डेंट, हेम सेकशन, महकमा खास, जोधपुर; श्री दीनदयालजी शर्मा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, क्लेम सुपर वाइजर, रेलवे-विभाग, जोधपुर; श्री कविराज

* श्री अनूपसिंहजी ने अजमेर से प्रकाशित होनेवाले “क्षात्रधर्म” मासिक के अप्रैल १९३९ के अंक में भी पृष्ठ ४१ पर श्री आईदानजी के स्वर्गवास का संवाद इस प्रकार प्रकाशित कराया है—

श्रीयुत आईदानजी वारहट का स्वर्गवास

गत २१ मार्च को मारवाड़ के सुयोग्य विद्वान् श्री आईदानजी वारहट बी० ए०, एल्-एल्० बी०, प्रोवेशनरी नायब हाकिम का आकस्मिक निधन हो गया। आप बड़े ही कर्मशील एवं लोकप्रिय व्यक्ति थे। कई संस्थाओं का संचालन-भार आप सुचारु रूप से वहन कर रहे थे। आपसे मारवाड़ के बहुत-सी आशाएं थीं, किंतु खेद है कि मारवाड़ को अब उनसे वंचित रहना पड़ेगा। हम मृत्यु के प्रति ईश्वर से प्रार्थना करते हुए उनके शोक-संतप्त परिवार के साथ समवेदना प्रकट करते हैं।

स्वर्गीय वारहटजी को भद्रांजलि अर्पण करने के लिये २३ मार्च को जोधपुर में रायबहादुर ठाकुर जयसिंहजी, ठिकाना—उम्मेदनगर के सभापतित्व में सभा हुई थी, जिसमें अनेक गण्यमान्य सज्जनों की उपस्थिति में शोक-सूचक प्रस्ताव भी पास हुआ था।

तेजदानजी, जोधपुर; श्री वैजदानजी वारहठ, ऐडवोकेट, जोधपुर; श्री ठाकुर मालूमसिंहजी सा० बड़गाँव; रावराजा श्री इंदरसिंहजी सा०, जोधपुर; कुँवर श्री फतहसिंहजी, विसलपुर; श्री उत्सवलालजी ऐडवोकेट, जोधपुर; श्री लक्ष्मीदानजी साँढ, बी० ए०, जुडीशल सुपरिंटेंडेंट, फत्तेरी एवं श्री मंग-रूपमलजी भंडारी, बी० ए०, केतवाल, जोधपुर।

विविध वक्ताओं के भाषण के पश्चात् श्री अमृतराजजी महेता; बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ने अँग्रेजी में शोक-सूचक प्रस्ताव पेश किया, जिसका निम्नलिखित हिंदी अनुवाद श्री रंगरूपमलजी, ऐडवोकेट ने पढ़ा—

“यह सार्वजनिक सभा श्रीयु० आईदानजी वारहठ, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, प्रोवेशनरी नायब हाकिम; सैक्रेटरी, जागीरदार-एसेसिएशन; मंत्री, मारवाड़-चारण-सभा एवं उम्मेद-चारण-छात्रालय-प्रबंधसमिति और सहकारी मंत्री, अ० भा० चारण-संमेलन के असामयिक, आकस्मिक एवं दुःखद स्वर्गवास पर महान् शोक और उनके शोकाकुल परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रदर्शित करती है और सर्वशक्तिमान् ईश्वर से प्रार्थना करती है कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति एवं अक्षय शांति तथा उनके व्यथित परिजनों के इस असह्य हानि को सहन करने की शक्ति व धैर्य प्रदान करे।

इस बात के ध्यान में रखते हुए कि श्रीमान् आईदानजी जो महधरा के एक सुयोग्य, होनहार एवं सुशिक्षित नवयुवक थे, राजकीय सेवा में प्रविष्ट होते ही असहाय विधवा और दो छोटे बच्चों को चिना किसी भरण-पोषण के साधन के छोड़कर असमय में ही अचानक चल बसे, यह सार्वजनिक सभा श्रीमान् परम कृपालु हिज हाइनेस श्री महाराजा साहब बहादुर की गवर्नमेंट को, जिसकी दानशीलता, उदारता एवं दुःखप्रसन्न सहायता नौकरों के परिजनों को उनके आपत्तिकाल में सहायता देने की लगन सुविख्यात है, सादर प्रार्थना करती है कि कृपया वह मृत व्यक्ति के कुटुंब की हृदयद्रावक एवं दयनीय अवस्था पर पूर्ण सहानुभूति से विचार करे और उनकी विधवा के लिये आजीवन भरण-पोषण एवं छोटे बच्चों की शिक्षा के लिये खासतौर से समुचित मासिक आर्थिक प्रबंध करने की परवर्तिता फरमावे।”

इस प्रस्ताव को सभासदों ने अपने-अपने स्थान पर खड़े होकर स्वीकार किया और उसको एक नकल श्रीमान् हिज हाइनेस महाराजा साहब बहादुर की सेवा में भेजने की अपेक्ष महोदय को प्रार्थना करने के पश्चात् यह सभा विसर्जित हुई।

—सहकारी संपादक, हिंदी विभाग।

महान् आत्मा

(रचयिता-श्री गुलाबचंद्रजी चूड़ामणी, अध्यापक, सुमेरु-स्कूल, जोधपुर)

देहा

भलपण बहु सदगुण भयों, विसद हुतो विद्वान्।

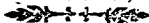
(हा!) क्यूँ की ओछी ईसवर, (थारी) ऊमर आईदान! ॥ १ ॥

जात-सुधारक हो जघर, प्रिय छात्रालय-प्राण।

(हा!) क्यूँ की ओछी ईसवर, (थारी) ऊमर आईदान! ॥ २ ॥

सद्बिद्या अर सुजनता, मुख पर मृदु मुस्कान।

(हा!) क्यूँ की ओछी ईसवर, (थारी) ऊमर आईदान! ॥ ३ ॥



राजस्थान केसर



देशभक्त कविवर ठाकुर श्री केसरीसिंहजी सा० सौदा,

जन्मदाता—अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन

आयु ५९ वर्ष

देहा

फोटो सं० १९८८ वि०

मुख्य राजनैतिक रसिक, सुजस-सुगंध-समीर ।

'केसर' सम केसर जहाँ, कुल चारण कसमीर ॥

श्री दामोदरदास बाटी (कलाल) के वंशज से]

—श्री अध्यापिका रत्न (अलवर)

યા ય ના

ધાત્યક : આઘ શ્રી પુનાદે

રાગ-પ્રભાતી

ભણતીયું કાનજ કાળા ! મીઠી મારણિયુંવાળા ! ૨૬

પાંચસે' તો મોયે પોઠિયા દેજે, પાંચસે' ગુણાળા;
લાં મી આંધડેલીએ ચારણ દેજે, ગાયું આચાળા. ભણતીઃ

પાંચ તો મોયે પૂતર દેજે, પાંચ, છાગાળા;
છઠી તો મોયે ધીહુડી દેજે, આણું ચોગાળાં. ભણતીઃ

ડહી ને મોયે ડાયરા દેજે, અદીહુના આળા;
મે'માનુંની મોઢણું દેજે, પીનારા ભોળા. ભણતીઃ

કાળી ને વળી કુંઢિયું દેજે, ગાયુંના ટોળા;
વાંકે નેણે વૌવાર દેજે, હુમરડે આળા. ભણતીઃ

ગોમતી કાંઠે ગામ અમારાં ને, બરડા અમરો દેશ;
ચારણ્ય પુનાદે' એમ ભણે, મોસે લીલો રાખ્યે નેસ. ભણતીઃ

હામ-વાસ, મર્દપ્રત્નિનો પતિ અને તેઓજ ખડતલ પરિવાર, ગાય, મેંસનાં ટોળાં, ફૂલ-
 લીની છોળ્યો, દાતારી અને ચારણ જનનિના પ્રાચીન વ્યવસાય-વેપારી પોઠોની ભગતે પ્રભાતે
 શ્રીકૃષ્ણચંદ્ર પાસે યાચના કરી છે. એટલું જ નહિ પણ ' મોસે લીલો રાખ્યે નેસ ' એ
 પંકિતથી આજના ચારણ-માનસ માટે વિરલ પોતાના પાંચ પાડોશી બદલે સમસ્ત નેસ-
 વાસીઓને પણ મુખી વાંચ્છી હિંદુ ધર્મની 'પાડોશીધર્મ'ની ઉદાત્ત ભાવના વ્યક્ત કરી છે.
 જો કે તેમાં આજસુઓના ઉતારા સમાં 'ડેલીને ડાયરા' માટે 'અશીશુનાં ગોળાં' પણ માગ્યા છે,
 પરંતુ એ તો ગયા જમાનાની ગાંડી પરોણા-ચાકરી અને ઉદારતાની એક વિશિષ્ટતા લેખાતી.
 જતાંયે એટલો દોષ આદ કરીએ તો નેસવાસી ચારણોની સ્વાભાવિક ભાષામાં 'રચાયેલું' આ
 ગ્રીત ત્રણું અર્થયુક્ત અને સુંદર છે.

—સંપાદક : 'ગુજરાતી વિભાગ'

આજનું આપણું માનસ-ચિત્ર



લેખક:—શ્રી હવણલાલજી નાથાભાઈ વરસડા, ભાદરવા (મધ્ય ગુજરાત)

આમાં નથી કટાક્ષ કે પક્ષપાત, તેમ નથી સ્નેહ કે દ્રવ્ય; માત્ર સર્વ વ્યાપી વિશુદ્ધ પ્રેમની દિવાલ પર અંકિત થયેલું દેશ, કાળ અને સંસ્થાઓ પરત્વેનું આપણું-ચારણું હાલનું માનસચિત્ર-દર્શન છે.

આ ચિત્રની રેખાઓ દોરતાં કલમ અટકે છે, ફરજ અને જવાબદારી તેની સ્વતંત્રતા ખેંચી લે છે. પરંતુ સમભાવના દેમેરામાં તો એ ચિત્ર ક્યારનું ચે પ્રગટ થઈ જાય છે, અને તેથી જગતના અરીસામાં આજે તે દેખાય છે. એ ચિત્ર વ્યક્તિનું છે કે સમાજનું? માયાનું છે કે બ્રહ્મનું? કોણ જાણે! નરો વા કુંભરો વા !! લેખકે પણ સત્યનારાયણનો થોડોક દ્રોહ પોતાની અપૂર્ણતાને લીધે કરવો જ પડશે ને? આનંદ નામ માયા; ત્રિલોકને વશ કરનાર મહામાયા. લોકતા જનનારને પોતાના ખર્ચમાં ખપાવી દેનાર એ જોગમાયાના પુત્રો-

ચારણોને આ ચિત્રદર્શનની સમાલોચના જરૂર દિશાસૂચક છે, અને તેથી ખિચારી કલમ તેને ન છૂટકે અપૂર્ણ સ્વરૂપમાં એ પ્રગટ કરે છે; એમ સમજી વાચકો વિચારશે: સમજી પુરૂષો અસારમાંથી સાર શકણ કરશે: હંસવૃત્તિના વિચારકોનીરક્ષીર જુદાં કરશે: તો સમજશે શું? આજનું આપણું માનસ !

આપણું માનસ સમજવાને પ્રથમ આપણે કોણ છીએ, એ વિચરીએ તો જગતના મહાન અરીસામાં આપણે પોતે જ રજી કરેલા આપણા આ માનસ-ચિત્રનું દર્શન કરી શકીએ. એટલુંજ નહિ પણ ભૂતકાળ અને વર્તમાનની વચ્ચે ઉભી થયેલી આંટીઓનો જીકેલ લાવી ભાવિ નવસર્જનની ક્રિયામાં આપણા પોતાના ભાગ્યવિધાતા તરીકે આપણે ઉત્તમ ક્ષણો આપી શકીએ. બીજાના ભાગ્ય પર આપણો આધાર ન રાખતાં, એટલે કે પોતાનાં સ્વતંત્ર હોવન પાણીને મૂલ્યે

વેચી ન નાંખતાં આપણે આપણી કોમના અને સ્વદેશના ભાગ્યસદા બની શકીએ. સમાજની સેવા માટે સુંદર તૈયારી સાથે દેશ અને જાતિના સાચા સુપુત્રોને સ્વકર્તવ્યની નિઃસ્વાર્થ પ્રેરણા આપી, આપણે દેશ અને જાતિની સ્વતંત્રતા યુક્ત સાચી ઉત્તતિ સાધી શકીએ. આપણી સ્વતંત્રતાપ્રિય-સત્યપ્રિય-કર્મધીર દેવજાતિનો પુરાતન આદર્શ, જીવનમાં મૂકી ભારતવર્ષની જૂની જાહોજલાલી અને મુક્તિનાં સ્વપ્ન સિદ્ધ કરી શકીએ. દેશ અને સમાજની મુક્તિ માટે બલિદાન બનેલા રાષ્ટ્રવીરોને પ્રવિત્ર અંજલિ આપી ચારણુ તરીકેનું જીવન સફળ બનાવી શકીએ શુદ્ધ ક્ષાત્રતેજને અજવાળી શકીએ. શિષ્ટ સાહિત્યના સાચા પૂજારી બની દેવચારણોનો સજીવન અક્ષરો લખવાનો હક્ક હંમેશને માટે જાળવી શકીએ. કોઈ પણ જાતિને સખળ બનાવવા માટે આ નવયુગમાં આથી વધુ જાંચો આદર્શ શો હોઈ શકે ?

આપણે કોણ છીએ, કેટલા છીએ, શું કરીએ છીએ, એ પ્રશ્નો જો આપણે આપણા આત્માને પૂછીએ તો આપણાં સર્વ હુખોનો એક સામટો અંત આવી જાય.

પરંતુ એ પ્રશ્નો પૂછે કોણ ? જગત બધું જ્યારે સદીઓ જૂની નિદ્રા ખંખેરીને કર્તવ્યને પથે દોરાર્થ રહ્યું છે, ત્યારે આપણે તો હજી વધુ જાંધવું છે. ક્રાંતિનો નૂતનયુગ સમીપ આવતો દેખાય છે, અને તેનો પ્રવાહ વંશપરંપરાના જંઠાધારીઓના સહેલા હક્કોનો નાશ કરતો સૌ કોઈ જોઈ શકે છે. ત્યારે આપણે તો નિદ્રા સમાધિની સ્થિતિનો અનુભવ લઈ રહ્યા હોઈએ તેમ આંખો મીંચીને, ભાગતા યુગની ગર્જ રાત્રિનાં પુરાતન સ્વપ્નાં સેવીએ છીએ. આજે દુનિયામાં શું બની રહ્યું છે, આ કર્મભૂમિમાં આપણું સ્થાન કયાં છે; તે જાણવાને, જોવાને, વિચારવાને કે સાંભળવાને પણ આપણને નથી. પડી ત્યાં હક્કરક્ષા કે કર્તવ્યની પ્રેરણા તો સૂએ જ ક્યાંથી ?

કેટલા સંખેદાશ્ચર્યની વાત છે કે, જે દેવત્વનો આપણે દાવો કરીએ છીએ, તે અત્યારે કેટલી અધોગતિએ પહોંચ્યું છે; તેનો ખ્યાલ સરખો પણ આજે આપણે કરતા નથી ! ખરે, દેવ હોવાની વાત તો દૂર રહી, પરંતુ મનુષ્યનામને યોગ્ય શુભાની ખીલવણી કરવાને પણ આપણે આજે અશક્ત બન્યા છીએ ! એક વખત માની

લઈએ કે મનુષ્યજીવનથી દેવજીવન જરૂર
 ઘેંટ છે, પરંતુ આને આપણે જે પ્રકારનું
 જીવન જીવી રહ્યા છીએ, તેમાં દેવજીવન
 કે મનુષ્ય જીવનનો છાંટો સરખો થે છે ?
 'યતો વ્રજ્ઞ, તતો વ્રજ્ઞ' એવી જિંદગી
 પસાર કરવી એટલે કાંઈ જીવનનાં લેખાં છે !
 આપણે ચારણ તરીકે રાજાઓના આશ્રિત-
 અને વફાદાર હોવામાં 'ગર્વ લેઈએ છીએ'
 પરંતુ આપણા બાપદાદાઓ અને ચારણજા-
 તિના અનેક તરફતાએ ખરી અણીની વળતે
 જે રાજાઓની બોળાધરીઓમાં અને સમર-
 ભૂમિમાં હરોલે ઊભા રહી ખેતાના ભેળ
 અને ભુખના બળ વડે મુંઝકડીમાં પ્રાપ્ત
 કરેલા ગામ-ગિરાસો, એ રાજાઓના
 આજ્ઞના આપણા શુભેચ્છક ગણાતા
 મુકુટધારીઓએ-પ્રતાપી ક્ષત્રિયવંશના
 વારસોએ-આજ્ઞના મુધરેલા કહેવાતા
 આપણા બાપુઓએ દમનગ્રીતિ અને
 કુટિલતા વડે સામગ્રી જપ્ત કરી લીધા
 છે ! જામનગરના બારાંડીના વીરકૃતિના
 તુંબેલ ચારણોનાં બાર ગામ હાથ ધરીને
 ભિક્ષાવૃત્તિમાં નહિ, પણ મુંઝકડીમાં
 મેળવેલાં હતા. એ ગિરાસના તેઓ સાચા
 હક્કદારો હતા. પરંતુ સત્તાના મદમાં
 અંધ બની-પોતાનું પશુબળ દાખવી
 જેને આપણે 'જામનાં ઘર કે રામનાં

ઘર' કહીએ છીએ, એ પવિત્ર ઘરના
 મહુર્મ વિશ્વવિખ્યાત અધિપતિએ ચારણ
 જાતિના પુરાતન સંબંધને ઠોકરે મારી
 કંટે કલેજે હોઠમાં કરી લીધાં છે. વધુ
 હુમ્મયનો વિષય તો એ છે કે, એ વીર તું-
 બેલ ચારણોના બલિદાનોનો કોઈ ક્ષત્રિય
 જાયાએ પક્ષ પાળે' લીધો નથી. અને
 આપણે ખુદ ચારણો તો એ નૃપવરની
 રાજનીતિ અને ક્રિકેટકુશળતાનાં આજ
 સુધી સહસ્ત્રંશુએ વખાણ કરતા આવ્યા
 છીએ ! 'જામ-રામ' ના ઘરવાળા એ
 મહુર્મ નૃપતિએ એ વખાણ એકથી વધુ
 વખત સાંભળી બારગામ ગળી ગયાના
 સંતોષના ઓડકાર બાધા હતાં. તુંબેલ
 ચારણોના ગામ ગિરાસ જાય તેમાં પો-
 તાને વિશુદ્ધ ચારણ તરીકે માનતા,
 'પરજ' અને 'માર' વંશના સપૂતોને
 શું ? અને એ સ્થિતિમાં હાલમાં ખંભા-
 ઝિયાની આસપાસના ચારણોના ગિરાસ-
 પર એ ઘરના હાલના નૃપતિ તરફથી પણ
 કાંઈ આદરના ઓળા ઊતરે તો તેમાં
 નવાઈ જેવું શું ?

આવી તો ઠેર ઠેર હોંગી સંજોલી
 મોજૂદ હોવા છતાં, પણ આજના આપણા
 આગેવાન ગણાતા પૂજ્ય કવિરાજે સિંહની

પાસે બકરી આંખો મીંચીને બેસી જાય તેમ કાન બંધ કરીને જીવતે મૂવેલા બની શ્વાસ જેથી રહ્યા છે ! દેશી રાજ્યોના એવા કલંકિત ઇતિહાસનાં તાજાં ઉદાહરણો મોજૂદ હોવા છતાં પણ ક્ષત્રીવટના સ્થંભ ગણાતા આજના એ રાજવીઓને અમારા કવિરાજે એક શબ્દ પણ શિખામણનો કહેવાની હિંમત દાખવી શકતા નથી. ત્યાં ધરણી કે સત્યાગ્રહની તો વાત શી કરવી !

રાષ્ટ્રનું ચણતર ચણવામાં જે જાતિએ એક વખત નિઃસ્વાર્થવૃત્તિથી આગેવાની ભર્યો ભાગ લઈ દોઢશૂરાનું બિરુદ પ્રાપ્ત કર્યું, જેના કુળમાં જોધપુર, ખીકાનેર, ભાવનગર જેવાં વિશાળ રાજ્યોના પાયા નાંખનાર કરણીજી, ખોડિયાર આદિ જગદંબાઓના જન્મ થયા, જેણે દેશને અમર કવિઓ, યોદ્ધાઓ, સત્યાગ્રહીઓ અને પ્રભુભક્તો આપ્યા, તે જાતિ આજે તેની કીર્તિનો આશ્રય તો સૂચક જોઈને પણ દિલગીર થતી નથી, બદલે પોતાની પડતી દશાનો તેને ખ્યાલ સરખો એ

નથી ! જેના નિવાસસ્થાને એક વખત આજાદીનો મુલકમશહૂર ધ્વજ ફરકતો હતો, જે સુડદામાં પણ ચેતનના મંત્ર કૂંદી ‘વણપઢિયો વાતું કરનાર’ હોય તો એ ‘ચોથો વેદ’ ગણાતો, તે ચારણને આજે જોઈએ છીએ, તો જોવા મળે છે, ગુલામી માનસ અને નિસ્તેજ ચહેરો !

આપણાં આજનાં કર્મોનો આપણે ભલે લંકપિછોડો કરીએ, પરંતુ કુદરત એને શું સાંખી લેશે ? એ તો દોકડા-બદામનો હિસાબ ગણીને તેનો બદલો આપશે; અને તેનો ભોગ આપણે તથા આપણી ભાવિ પ્રબળને પણ થવું પડશે.

આજે આપણું સમાજમાં શું સ્થાન છે, તેનો આપણે કોઈ દિવસ વિચાર સરખો એ કાર્યો છે ? શું આપણે અધઃપતનને કિનારે પહોંચ્યા નથી ? આપણી સામે આજે કયા કયા મુખ્ય આદરો છે ? આપણા શુભ-કર્મોનું આપણે કોઈ દિવસ આત્મ-નિરીક્ષણ કર્યું છે ?

બિલકુલ નહિ. આપણે તો તમો-શુભની ગાઢ નિદ્રામાં આસુરી સ્વપ્નાં

એવ્યા કર્યા છે. રાજદરબારી વ્યસનોના ચક્રમાં પડતાં 'હોલ્ડ દરાજ દોસ્તા દારણ' એ ઉક્તિને કવિ-કલ્પનાની વસ્તુ બનાવી આપણે આપણા આરોગ્યને અને ભાવિ પ્રવ્રવના શરીર-બંધારણને પારાવાર નુકસાન પહોંચાડ્યું છે.

ઉદ્યોગ અને વિદ્યાને અભાવે સંગઠન વિનાના આજનો ચારણ અને ભુતકાળના સ્વાર્થ-ત્યાગી-બલિદાનની આહુતિ બનનાર ચારણ વચ્ચે ઉત્તર અને દક્ષિણ કુવ જેટલું અંતર પડ્યું છે. 'હજારો કંઈ નિરાશામાં આજનો ચારણ એની' અમર આશા, શુભાવી બેઠો છે. એના સમાજ-જીવનનું નાવ આજે અધઃપતનના વમનમાં ડામાડોલ થઈ રહ્યું છે, એની જીવન-નૌકાનો સૂકાની આજે ખોવાઈ ગયો છે. એની પાસે આજે નથી પ્રાચીનજીવનકેનથી નવજીવન. લુગડાનો મેલ લુગડાને ખાય એવી અધમ પરિસ્થિતિ આજે તેની સમક્ષ ખંડી થઈ છે. ગમે તેમ કરી પાપી પેટનો ખાડો પૂરવો, પેટપાળુ બનીને પણ જીવન વીતાવવું, એ આજે એનો મુદ્રાવેળ બન્યો છે.

અને આવી જીવનમૃતક સ્થિતિમાં જે આપણે 'અજે ન હોડે સાવયો, મૂઠા તજો મરઈ' ની પેઠે આપણી કહેવાતી પ્રાચીન મહત્તાની ખંચાલી હુનિયામાં રાચતું આપણું માનસ જાદવી શક્તિ નથી, એ શું બોધા હુઝનો વિષય છે? આપણે એટલે આભમાંથી પડેલી કોઈ એકલવાયી દેવી વસ્તુ; આપણે એટલે કાયમની ફર્ડ કલાસની ટિકિટ કપાડી લાવેલા માનવત સુસાદર; આપણે એટલે સંપૂર્ણતા ને શ્રેષ્ઠતાની પ્રતિમા; આપણે એટલે અનાદિ કાળના દેવોના બાપકર્મી આગસુ દીકરાઓ તેથી આપણને અને જગતને કરોય સંબંધ નહિ; એમ પણ આપણે કહી લેવાનું નથી. આપણે એટલે ખુશામદિયા, આપણે એટલે હાજ હા, બાપુ કહેનારા કે સીકા જેર જેવા પણ નહિ. આપણે એટલે રાષ્ટ્રદ્રોહી-અતિદ્રોહી કે ભિક્ષુકોની હરાલ માં બિલા રહેનારા સ્વમાનહીણ પેટભરી પણ નહિ. અને જો આમાંનું થોડુંક પણ આસુરી ભાતું, આપણી પાસે હોય તો કુલીન કે દેવપણાનો, ક્ષત્રિયોના ઉપ-દેશકોનો, સમાજના સાચા પ્રચારકોનો, શિષ્ટ સાહિત્યના હિમાયતીપણાનો આપણો દાવો આપણે હિંદીમહાસાગર

માં, ડુખાવી આવેલો; તે આપણા તથા આપણી ભાવિ પ્રજા માટે આવકારદાયક લેખાશે. કેમકે પ્રકૃતિદેવીનો એક મહા નિયમ છે કે, આગળ વધો કે નાશ પામો.

હુનિયાની બીજી સંગઠિત જાતિઓ સૂકાને, દીકું બનાવવાના અને અશુદ્ધને શુદ્ધ બનાવવાના ભગીરથ પ્રયત્નો કરી રહી છે. ત્યારે આપણે દેવહૃદયવાળા દીલાને સૂકું અને શુદ્ધને અશુદ્ધ બનાવવામાં મજા માણીએ છીએ. યુગ-વિરોધી આ ક્રિયાની આપણને જે શિક્ષા થઈ છે, તેનાથી હવે વધુ કેમ નહિ થાય! આપણી સન્મુખ આપણા એક જાતિબંધુની યોગ્ય પ્રશંસા થતી હોય, અને તેના ઉપકાર તો આપણે દબાવેલા હોઈએ, તો એ આપણે તે સાંભળતાં જ માંદું ફેરવી લઈ પેલા ચોરના દીકરાની પેઠે કાનમાં આંગળીઓ કે દંતમાં પેલ જોડી સાંભળીએ છીએ. અને પૃથ્વીમાં પૂછાતા હોઈએ તો એ વાતને મંજામાંથી વાઢવાને કમર કસીએ છીએ. આનું નામ જ તેજો-દ્રેષ. આ ગુણ પણ દેવપણના વારસામાં આપણ-ચારણને ભાગે. વધારે આવેલો જોવામાં આવે છે. અને ત્યાં પછી ઉત્તતિની આશા હોય જ શેની!

એક પ્રશ્ન વિચારીએ: શું આપણે ક્ષત્રિયો પર ઉપકાર કરીને અધઃપતનને પાત્ર થયા છીએ? ના, તેમ નથી. એ માટે આપણે પોતે જ જવાબદાર છીએ. આપણા અને પશ્ચિમની પ્રજાના માનસનું પૃથકકરણ કરીશું તો સ્પષ્ટ જણાશે કે આપણે આપણા સમાજમાં વિભાગ વધારી સંગઠન શુભાચું. તેમણે સંપ અને ઐક્ય વડે આપણા જેવી લાઘવી પ્રજાઓ પર સ્વામીત્વ સ્થાપ્યું. આપણે હાય હાય! કરતા સંસારને વળગી રહેવા છતાં 'બ્રહ્મ સત્યં જગન્મિયા' એ સૂત્રના રટણમાં માર્યાને ખોટી માની, ત્યારે તેઓ તેને સાચી માની તેના ત્રિશુલ્લાત્મક ગુણદોષને તપાસી વળ્યા. આપણે આત્મા ને ઘટ-ઘટ વ્યાપક બ્રહ્મસ્વરૂપ માનવા છતાં એ શુદ્ધ તત્ત્વના અનેક વિભાગ પાડી તેને ચૂંથી નાંખ્યું, તેમણે અશુદ્ધ માંથી અસાર દૂર કરી હંસવૃત્તિથી સાર ગ્રહણ કર્યો. આપણે સંસાર-મંથનમાંથી દ્રેષ લઈ પરાધીન અને પતીત થયા, તેઓ પ્રેમ કેળવી સ્વતંત્ર બન્યા. કુદરત ગુપ્ત રીતે પણ પક્ષપાત રહિત દરેકને તેના કાર્યનો ભલો-ખૂરો બદલો આપ્યો જ નય છે. આપણને પણ આપણી વૃત્તિનો બદલો મળ્યો છે. અને વધુ વળત એ વૃત્તિ ચાહુ રાખીશું તો વ્યાજ સાથે વધુ મળશે!

ચારણ એ વખતનો અને આજનો



[સંવત ૧૯૬૩ ના આસો માસમાં ચારણ હિતવર્ધક સભાનું તૃતીય અધિવેશન સોરઠમાં વડિયા મુકામે ભરાયેલું; તે પ્રસંગે કાઠી-સુત્રિય સમાજના હિતાર્થે પ્રકટ થતા ' કાઠી રાજપૂત ' માસિકના સુયોગ્ય તંત્રી કાઠી રાજપુરોહિત શ્રીયુત ભગવાનજીભાઈ સાવરકરે એ પત્રના જન્યુઆરી સુતે ૧૯૩૮ ના અંકમાં ' શ્રી વડિયામાં ચારણ સંમેલન ' એ નામથી એક વિસ્તૃત અને મનનીય લેખ લખેલો. તેમાંના નીચેના ભાગ મહત્વનો હોવાથી અત્રે ઊતારીએ છીએ.

તંત્રી: ગુજરાતી વિભાગ]

".....ચારણ જાતિ ભારતવર્ષમાં એક દેવપ્રજિતની જાતિ ગણાય છે. એક ધંધાદારી માનવ જેમ પોતાનાં બાળકને પોતાનો ધંધો શીખવતો જાય છે, તેમ પૂર્વેના ચારણોએ પોતાના સંતાનોને સત્ય અને સદ્ધર્મના સિદ્ધાંતો શીખવ્યા હતા. કર્નલ જેમ્સ ટોડ અને અલેક્ઝાંડર કિન્લોક ફાર્પિસ મેવાડ અને ગુજરાતના ઇતિહાસ લખતા હતા, ત્યારે ભારતવર્ષના તેત્રીસ કરોડ માનવોમાંથી કોઈ પણ કોમના વિદ્વાનોની વાણી પર ભરોસો નહિ રાખતાં માત્ર ચારણ કોમના એ વખતના માત્ર દસ બાર કવિઓ પા ભરોસો રાખી તેમણે મહાન ગ્રંથો આલેખ્યા હતા. આજે ટોડ રાજસ્થાન અને રાસમાળા એ બે ગ્રંથો ઐતિહાસિક ગ્રંથોમાં અમૂલ્ય ગણાય છે. એ અમૂલ્ય ગ્રંથો ચારણી જોતજોતે સાચવી રાખેલી બીતાઓના આબાદ નમૂના છે.

પ્રાચીન જમાનામાં ચારણશક્તિ રાજદરબારે પૂજતી અને આજે પણ પૂજાય છે. ચારણ એટલે ખાનદાની અને ઈશ્વરી વાક્યોની ટંકશાળ: ચારણની એક જ જીભાને ફાંસીના માંચડા પર ચડેલા ખૂનીઓ અને રાજદ્રોહીઓ મુકત થતા: ચારણની એક જ જીભાને અગણિત બાળવિદોષાં ઘરોમાં પાંચળાં બંધાતાં: ચારણની એક જ જીભાને જૂનાગઢ જેવાં મહાન રાજતખતો પણ ઊધવી પડતાં.

જે વખતે ગાયકવાડી પેશ્વેશી ઊઘરાવાતી ત્યારે દરેક નાંદાર તાલુકદાર-ગિરાસદારના ચારણો હામી થતા. ચારણ જેનો હામી થાય એને સરકાર પણ ન બોલાવે ! આટલો બધો એ જમાનામાં ચારણ કોમ પર વિશ્વાસ હતો. આજનો ચારણ અને એ વખતનો ચારણ જમીન-આસમાન જેટલું અંતર ખતાવી રહ્યો છે.

ચારણોને ઘરે ગામ-ગિરાસ હતાં, અને છે. એ બધા ગિરાસો તેમણે ખતાવેલી ખાનદાનીના નમૂનાઓ છે. એ ગિરાસો ચારણના એકવચનીપણાની શાખ પૂરે છે: એ ગિરાસો ચારણની શાહુકારીના થાળરૂપ છે. ચારણસંસ્કૃતિનો અગ્રણ્ય માણસ બલે આ વાંતને ન માને, પણ ચારણસંતાન એ જૂના જમાનામાં ભારતનું જવાહીર ગણાતો; અને અત્યારે પણ કેટલાક ભાઈઓ ચારણોના ભૂયણરૂપ મોજૂદ છે, એ જાણી અમારું હૃદય ઠરીને હિમ થાય છે.

ચારણ રાજદરબારે અને ચોરે બેસી કાળ્યો લલકારતો તેમ નહિ, પરંતુ રણક્ષેત્રમાં પણ તેની હાજરી રહેતી. ભાલા, બરછી અને તલવારોનાં યુદ્ધ વચ્ચે ચારણસંતાન ઊભો રહેતો, અને દરેક ક્ષત્રિયમાં શૂરાતન રહેતો. રણક્ષેત્રમાંથી નાસી જનાર રણયોદ્ધાઓને પોતાની દિવ્યવાણી વડે પાછા રણક્ષેત્રમાં લાવી શકતો. જેના પક્ષે ચારણ હોય, તેનો વિજય જ થાય. ચારણ જે યુદ્ધમાં ન ગયો હોય તે યુદ્ધમાંથી સેંકડો યોદ્ધાઓ, મુજદદો અને સેનાપતિઓ ચારણની દિવ્યવાણીના અભાવે પરાજયની કાળી ટીલી લઈને પાછા આવતા.

ચારણીકાળ્યો એ ભારતભૂમિની અમૃતધારા છે. ચારણીકાળ્યોએ અનેક માનવોને મુગ્ધ બનાવ્યા છે. વાર્તાઓ, ગાથાઓ, પવાડાઓ, દોહાઓ, સમસ્યાઓ, ઇતિહાસો, આખ્યાનો, એ બધાં ચારણનાં કોઠાસંતાનો છે. ચારણીકાળ્ય આજ પણ બધાં કાળ્યો કરતાં અવલ નુંબરે પહોંચે છે. ચારણીકાળ્યોના અર્થ જેવાં તેવાં માણસોથી થઈ શકતા નથી, કારણ કે એ દેવીભાષા દેવીપુત્રોના મુખમાંથી જ નીકળેલી છે. માટે જ એનું એ મહત્ત્વ છે.

આજના આરણ્યે પોતાની સરસ્વતીને અવળે રસ્તે દોરી છે. દુર્વ્યસનો અને કંગાલિયતમાં ડૂબી જઈ પોતાના ચારણધર્મને ખત્તી કરી નાંખ્યો છે. અને એના પ્રતાપે ભારતની દીલી-વાડી સમુદાય ચારણકુળ ધરપારકર અને સહરાના રણ જેવું ભંગાનક જનતું બન્યું છે. લાપટ્ટી અને ચોખ્ખાના સ્વાદમાં આજ આરણ્યવિદ્યા ગિરવી મૂકાણી છે.

દરેક કોમ પર કુદરતી નિયમે પોતાની જાળ પાથરી છે, તેમ ચારણ ઉપર પણ કુદરતે પોતાનો ભરતીઓટનો અચળ નિયમ સ્થાપિત કર્યો છે. છતાં જે દેવીપુત્ર તો દેવીપુત્ર જ રહ્યો છે. સ્ત્રીજાતિને દેવીની ઉપમા અપાય છે, છતાં સ્ત્રીથી જન્મેલા બધા દેવીપુત્ર નથી કહેવાતા. એ સી ચારણને જ એ પ્રમાણુપત્ર મળ્યું છે.

ચારણમાં કાંચશક્તિનો વારસો એ જ દેવીપુત્રપણનો તાદૃશ પૂરાવો છે. લાંબો અને કરોડો માણસોમાં ચારણસંતાન કદી પણ છાનો ન રહે. ચારણ એની વાચાળશક્તિથી પોતાની ઝોળખાણુ આપે છે. વાચાળશક્તિ એ એને મળેલો વારસાહક્ક છે.

આજનો ચારણ પૂર્વના ચારણોને હિસાબે ઘણો જ લાસ્ટ નંબર ખતાવે છે. આજના ચારણોએ પોતાની કેટલીક વિદ્યા નોકરીમાં બેટી છે. કેટલાકે પોતાની સત્ય કહેવાની જૂની પ્રણાલિકાને અસત્યના રૂપમાં ઊઘાડી કરી છે. રામાયણ, મહાભારત અને ભાગવત જેવાં ધાર્મિક અને ઐતિહાસિક પુસ્તકો ચારણોના કોઠામાં રહેતાં, હાલ એમાંનો એક પણ શબ્દ ચારણીશબ્દકોશમાં નથી મળતો. આજ બટકુ રોટલા માટે ચારણોએ લોલિયાને લોન અને વિક્રમની શ્રેણીમાં મૂકી દીધો છે.

આજ તેમણે પરદેશીઓની કલમ નીચે ઇતિહાસોને ફેદ કરાવ્યા છે. મને ખીક લાગે છે કે, સાચા વીરનરોની રહી સહી કીર્તિગાથાઓ પણ પાંચ દિવસ પછી ચારણોના કોઠામાંથી વિદાયગીરી લેશે. આજના કેટલાક પેટમેટા ચારણોએ

કેટલુંક જગતને ચરણે ધરવા જેવું જ્ઞાન પોતાના કોઠામાં સાચવી રાખી લોંબ લીધા જેવું મુડદાલ કરી નાંખ્યું છે. આજનો ચારણ પૂર્વના સત્યવક્તા ચારણોને લોંબા પાડે છે. પૂર્વનો ચારણ મહાન દેવી પત્રકાર હતો. આજનાં પત્રો ને કામ કરી રહ્યાં છે, એ કાર્ય પૂર્વે ચારણોનું હતું. દાનવીરો, નરવીરો, સત્યવીરો અને ધર્મવીરોની કીર્તિ આજેની જ મારકુતે દેશપરદેશ પહોંચી જતી. ચારણ એટલે ક્ષત્રિયકુળનું ત્રાજવું; સમસ્ત ક્ષત્રિય વીરોના ગુણ-અવગુણના કાર્યવ્યવહારો ચારણની છાંયે જ તોળાતા. ચારણસંતાન અધર્મીઓને ડારતો. શૂરવીરોને શૌર્ય પાતો અને નંદ જેવા મહાવલંદા લોભીને પણ દાન દેવા પ્રેરતો.

મહાન નેપોલિયન બોનાપાર્ટે કહ્યું છે કે, જે કોઈ પ્રજાના ગૌરવનો નાશ કર્યો હોય, તેની બહોજલાલીવાળી વિદ્યા, કળા, હુન્નર અને ભવ્ય સંસ્કૃતિને સળગાવી દેવી હોય, તો એના ઇતિહાસનો નાશ કરો. એવી રીતે ભારતીય જનસમાજે જે ચારણો પર વિશ્વાસ રાખી પોતાનો સંસ્કૃતિશાળી ઇતિહાસ, સાચવી રાખ્યાની દ્રેઝરી સમાન ગણ્યા હતા; તે ચારણોએ ક્ષાત્રઇતિહાસને ભૂલી જઈ સમસ્ત ભારતની સંસ્કૃતિના વિશ્વસંકાર્યમાં સાથ આપ્યો છે. જે મોંઢામાં સરસ્વતીનો વાસ હતો, એ મોંઢામાંથી સરસ્વતીને તગડી મૂરી ઉભર્યોથી પોતાનું મોંઢું ગંધડી મૂક્યું છે.

હાલના ચારણો પોતાના પૂર્વજોને પગલે નદિ ચાલે તો ઇતિહાસના નાશના કારણરૂપ એમને માની હાલનો જનસમાજ અધોગતિ અને પાપમાલીનો બપો પોટલો એમને ચિર ઓઢાડી દેશે. જે જુદિએ આખા જગતને છક્ક કરી નાંખ્યું હતું, તેવી જુદિગાળા ઈસરદાસ, નરદરદાસ અને પ્રધાનંદ જેવા ચારણ મહાપુરુષોની દિદુસ્તાનને આજ ખોટ પડી છે.

બાપદાદાના વારસારૂપ કાળ્યો અને વાનાઓ પર આજે ચારણોનો દક્ક રહ્યો નથી. કાપદાએ એને મૈન્યસ્ત અપાવ્યું છે, કોર્ટ મુખી દાદ માગવામાં એને મારે ખંભાડી લાગી ગયાં છે, આજે એને જટલેશીલ લાગી ગયાં છે.

ખોવાઈ ગયેલી વસ્તુ કોઈને પણ હાથ આવે અને મૂળ માલિકને જાણ થાય તો ઘર લેણી કરી દીધા પછી પણ માલિકને પાછી સોંપવી પડે છે. ત્યારે ચારણીકાઓ હાલ નધણિયાતી મિલકત સમાં જની ગયાં છે; અને જેને કાવે તે તેને ખાપનાં કરવા લાગ્યા છે.

પુરાણી વાતો સાંભવી રાખવાની વિશ્વાસુ પેઢી સમાન આ ચારણકોઠાએ ભારતીય જનસમાજની થાપણ ઓળવવા માંડી છે; અને થોડા ટાઈમમાં તેના કપાળમાં ‘મારગેજ ઈન પ્લેશન’ તું જોડી લાગી જશે. જે જે વાતો હિંદની મિલકત સમી ચારણીકોઠામાં ‘બુલિયન એકસ ચેંઇઝ’ ની માફક સલામત હતી, તે હવે પરાયે હાથે વેંડકાવા લાગી છે. જે મિલકત સમસ્ત આર્થિકત્વને અજવાળતી, કિંમતી બનાવતી, શ્રીમંત ગણાવતી, તે મિલકત પર આજ સાચે હાથ નાંખવા માંડ્યો છે.

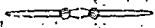
ચારણ એટલે ભારતનો કીર્તિસ્તંભ: ચારણ એટલે આર્યસંસ્કૃતિની લાયબ્રેરી: ચારણ એટલે નિરલિપ્તતાની, સત્યવચનની અને જેવી તેવી જાક્ષીસંતા સંતોષ માની જીવનભર અહેસાન માનનાર દૈવી વ્યક્તિ. આજનો ચારણ જે ચારણ બનવા ધારતો હોય તો તેણે તેના પૂર્વજના સદ્ગુણોનું સત્તર આહવાન કરવું ઘટે છે. નહિતર એ કટકા ભૂંડા બોલના સનેપાતિત્રામાં અને આજના ચારણમાં જરા યે તફાવત નથી.

આમાં એક ચારણોનો જ ક્યાં દોષ છે ? પુરાણી વાતોને અને ઇતિહાસોને જિજ્ઞાસે રાખનારની ભારતીય જનસમાજે કદર નહિ કરતાં એ નિખાલસ અને પરાપકારી આત્માની હાંસી કરી છે. એને શિક્ષક માની લઈ રાટલાના બટકા માં જ એ બધું કરતો હોય, એમ સમજી એની ઠેકકી કરી છે. એનો બદલો હવે મળવાની તક આવી પહોંચી છે. હજારો વિદેશીઓ ભારતીય ઇતિહાસને હાંસીરૂપ બનાવવા ખાઈપીને પાછળ પડ્યા છે. ઘણા અટકચાળાઓએ તો ભારતીય ઇતિહાસને હિઝરડા પણ કરવા માંડ્યા છે. અને એ ગુલાબના છોડને

ઊંખેડી નાંખવા માટે એમણે કુહાડા અને ધારિયાં સજવા માંડ્યાં છે. ભારતના એ તેજસ્વી કલેવરને વધારે ડાઘ લગાડવા કોલસા પાડવા શરૂ કર્યા છે. જગતમાં સર્વોપરિ ગણાતી સત્ય ઘટનાથી ભરેલી ગાથાના ગૌરવને સળગાવી દેવા એણે હાથમાં કુંભારણું લીધું છે. કરોડો ક્ષત્રિયોનો જેમાં ભવ્ય ભૂતકાળ ભર્યો છે, અને સમસ્ત ભારતીય જનસમાજની ઉન્નતિનાં જેમાં ખીજ રહેલાં છે; એવા પ્રાતઃસ્મરણીય ઇતિહાસને ગપાટા ગણવા માંડાની લગામ છૂટી મૂકી દીધી છે. નહિ ચેતે તો રહ્યું સહ્યું ગૌરવ નાશ પામશે.

કવિસ્વશક્તિ એ તો ચારણોની કોઠાવિધા છે, અને એથી જ દરેક ચારણને કવિનું બિરદ મળ્યું છે. ચારણ કવિઓએ ભારતને ચરણે જેવા કિંમતી અથો ધર્યાં છે, એવા અથો કોઈ પણ કોમે ધર્યાં નથી. નરહર કવિએ રામાયણ લખીને હાથ ધોઈ નાંખ્યા છે. પ્રવીણસાગર અથ લખવામાં રાજકોટનાં સદ્ગત ઠાકોર શ્રી મહેરામણજીને જસા લાંગાએ જ મુખ્ય મદદ કરી હતી. ઇસરદાસ જેવા અને પ્રદ્યાનંદ જેવા ચારણ કવિશક્તોએ પણ ભારતીય લક્ષ્મણસમાજમાં અનેરી છાપ પાડી છે. આ બધાં ચારણવંશવૃક્ષનાં અમૂલ્ય રત્નો છે. ”

નારણજાતિ: તેની પડતીનાં કારણો અને ઉપાયો.



લેખક: શ્રી નારણભાઈ મેકરણભાઈ રોહડિયા, બી. એ. સિંધાવદર.

—૨૦૪૫૬૦—

[ગતાંકથી ચાલુ]

આપંથી પડતીનું બીજું કારણ છે. આપણાંમાં ઘર કરી ગયેલી ગરદોષ જોવાની અને પારકાં દુષણો શોધવાની વૃત્તિ આ વૃત્તિ આપણને બીજાઓના સંસુણો જોતાં અને સારા સંસુણોનું અનુકરણ કરતાં અટકાવે છે. જગતમાં ચાલી રહેલ સમાજ ઉદ્ધાર કે દેશઉદ્ધારનાં બંને આપણને આ દોષવૃત્તિનાં પડંબોથી દેખાતાં નથી. માટે બીજું આપણે એ શીખવાનું છે કે, બીજાઓના દોષો જોવાનું બૂઝી જવું જોઈએ. કોઈપણ વ્યક્તિ પરિપૂર્ણ હોતી નથી. પરિપૂર્ણ તો એક પરબ્રહ્મ પરમાત્મા છે. કારણ કે તે આપણથી અગ્ર્ય અને અગોચર છે. દંડ્યમાન વસ્તુ એટલી બધીયમાં એક નહિ તો બીજી, જમે તેવો નણવો દોષ પણ જોતવા જોઈએ તો શોધી શકાય. જ્યાં સુધી માણસ એ માણસ જ રહેશે ત્યાં સુધી તેમાં એક અથવા બીજા પ્રકારની ત્રુટિઓ મળી આવવાની.

જ્યારે માનવી મધિરકોટિએ પહોંચશે, ત્યારે પછી આપણે તેને વિશે કંઈ પણ કહી શકીશું નહિ. બીજું જોવાનું આપણથી છોડી ન શકાય તે એટલું તો અવશ્ય કરવું કે મોતાના દોષો પહેલાં નિહાળી, પછી બીજાઓનાં દુષણો જોવાં. આવી તુલના કર્યા પછી દરેકના સમજવામાં આવશે કે આપણથી દરેક અન્ય વ્યક્તિ સારી હોય છે. દરેક જ્ઞાતિહિતેથી વ્યક્તિ આટલું કરવાની જરૂર કૃપા કરે.

આપણી દુર્દૃશાનું ત્રીજું કારણ અજ્ઞાનતા છે. આ અજ્ઞાનતાને દરેક ધર્મમાં દુર્ગુણોની જનની ગણવામાં આવેલ છે. આ અજ્ઞાનતાને અંગે આવતા વહેમો, વ્યસનો, પ્રમાદ અને ઓળસ જેવા બીજાં દુર્ગુણોથી આપણે સુકત નથી. આપણાંમાં આ દુર્ગુણો ઘર કરી રહેલ છે. સરસ્વતી

ના ગાળકોનું વિરૂદ્ધ પામેલ-ચારણજ્ઞાતિ
ના આપણે પનોતા પુત્રો અત્યારે અલણ
અને અજ્ઞાન દશામાં છીએ. દરેક સમજી,
લણેલ. અને જ્ઞાતિપ્રેમી વ્યક્તિની એકજ
કરજ છે કે, ચારણ જ્ઞાતિમાં વિદ્યાપ્રચાર
માટે પોતાનાથી બનતું અવશ્ય કરવું.

આજની શોચનીય દશાનું ચોથું
કારણ છે આપણી માગણવૃત્તિ, અને
તેને લીધે આવતી ખુશામતખોરીની
વૃત્તિ. ખોટી ખુશામત એ માગણવૃત્તિનું
મુખ્ય સાધન છે. માગણ અને
ખુશામતિયાઓને માનાપમાન જેવું કશું
હોતું નથી. આપણે કેટલી હદ સુધી
નીચે ગયા છીએ તે જોવું હોય તો
રાજ્યોમાં, તાલુકાઓમાં કે જાગીરદારોને
ત્યાંના વિવાહ પ્રસંગોએ એકઠા થતા
આપણા ભાઈઓ ને નિહાળવા. ટોળાબંધ
અહીં તહીં ભટકતા. ખાવાપીવાની અને
ઉતારાપાણીની સગવડ રહિત એ
ભાઈઓને બીજાઓને ત્યાં આથડતાને
રોટલા જેવી બાબતમાં બીજાઓની
ખુશામત કરતા, જ્યારે જોઈએ છીએ
ત્યારે આપણને શોચ થયા વિના રહેતો
નથી! લાખો રૂપિયાના અયોચ્ય દાનને
ઠાકરે મારનાર, એ પૂર્વજોના બાળકોને

અદ્ય રકમ માટે બીજા વ્યવસાયો છોડી
અપમાન સહન કરતા નિહાળી કયા જ્ઞાતિ-
પ્રેમીની આંખોમાં આંસુ નહિ આવે? અરે,
કોળી, વાઘરી જેવી સમાજમાં નીચી
ગણતી. કોમોની સ્ત્રીઓને પણ તેમના
વિવાહ પ્રસંગનાં લગ્નગીતોમાં “ચારે
ગવડાંએ ચારણુ ભાટ રે,” એવું ગાતી
સાંભળીએ છીએ ત્યારે તો આપણે
આપણી માગણવૃત્તિથી કેટલા અધમ
બની ગયા છીએ તેનું ભાન થતાં હૃદય
હાથ રહેતું નથી! એટલે કે દરેક ચારણ
ભાઈએ પોતાના સ્વમાનને લોભે, શિક્ષા-
વૃત્તિથી મળતા લાભને જતો કરવો
જોઈએ. જે માગણવૃત્તિથી ચારણોએ
સમાજમાં એક વંષત પ્રાપ્ત કરેલ અર્પ
સ્થાન ગુમાવ્યું છે તે માગણ વૃત્તિને
છોડી દેવી જોઈએ. અને મહેનત-
મજૂરીથી મેળવેલ ધનથી સંતોષ માનતા
શીળવું જોઈએ. પોતાને યોગ્ય
સન્માનથી ગોલાવવામાં આવે, દરેક
પ્રકારનું માન જળવાય તોજ ચારણોએ
રાજ્યોના વિવાહ, ગાદી કે જન્મ જેવા
પ્રસંગે જવું.

આપણી હાલની સ્થિતિ ઉપર વિચાર
કરવા બેઠીએ તો પાતાનાં પાતાં ભરાય
તેટલું લખી શકાય. આ દુઃખ લેખમાં

મને દેખાયું છે તેટલાં મુખ્ય કારણો
મેં દર્શાવેલ છે. દરેક ચારણ આ
સ્થિતિથી અનુભવ નથી. અને દરેક
ચારણની ફરજ આપણી સાતિનો ઉદ્ધાર
કેમ થાય, આપણે આપણું પૂર્વ સ્થાન
કેવી રીતે મેળવીએ, તે વિચારવાની
અને તે પ્રમાણે વર્તવાની છે.

આપણી પ્રાચીન અને અવસ્થિત
સ્થિતિ ઉપર વિચારનાં આપણા હિત
માટે બૃહદ ગુજરાત ખાતે પ્રયાસ કરી
રહેલ શ્રી ચારણ હિત-વર્ધક સલા વિશે
લખું તો તે અસ્થાને નહિ ગણાય.

છેલ્લાં ચાર વરસથી ચારણોની
હર્ષિતિ ભેદિતમાં પ્રવર્તી રહેલ આગસ,
અજ્ઞાનતા, વ્યસનો આદિ હર્ષિતિ દર
કરવા, અને સાતિની સામાજિક ઉત્તતિ
સાધવા માટે, શ્રી ચારણ હિત વર્ધક
સમાજની સ્થાપના થયેલ છે. ચાર ચાં
વર્ષથી આપણે સંમેલનો, ભરીએ છીએ,
લાપણાં કરીએ છીએ, રિપોર્ટો છપાવી
એ છીએ, અને બીબું નિહિતનું
કાર્ય વિચારીએ છીએ. ઉપર ઉપરથી
પણ આપણે ભેદિએ તો આપણને લાગ્યો,
કે દર વરસે આપણી ચાં હિં સલાના

સભ્યો વધતા નાંધ છે. દર વરસે
સંમેલનોમાં આગલા સંમેલનો કરતાં
વધારે માણસો હાજરી આપતા લેવામાં
આવશે. પરંતુ આપણે આપણી પ્રગતિના
ચાર વરસના સમગ્ર ઇતિહાસને
તપાસીશું તો જણાઈ આવશે કે
સામાજિક ક્ષેત્રમાં આપણી સંસ્થાએ
કંઈ કરેલ નથી. ચાર ચાર વરસો થયાં
હોવા છતાં આપણે આપણી સંસ્થાનો
પ્રચુર પ્રચાર કરી શક્યા નથી. (આ
વરસથી આ દિશામાં કંઈક પગલાં
લેવામાં આવેલ છે. શ્રી ચાં હિં સલા
પરકથી એક પ્રચારક લાઈને
ગીમવામાં આવેલ છે.)

આમ થવાનું કારણ આપણે સમજી
લેવાની જરૂર છે. મારી દૃષ્ટિએ અને
સંસ્થા સાથેના મારા શરૂઆતથી આજ
સુધીના સંબંધે, મને મુખ્ય કારણ એ
દેખાયું છે કે આપણી સંસ્થા પાસે
કાર્યકર્તાઓ અભાવ છે. આપણી પાસે
ફંડ નહિ જેવું જ છે, એટલે પ્રચારનાં
સાધનો જેવાં કે મુસાફરી, પત્રિકાઓ
વગેરે માટે આપણે ખર્ચ કરી શકીએ
તેમ નથી. બીબું કારણ ઘણું જ હુખ-
પૂર્ણ દેખાયું છે કે, ચારણોના ભલા

માટે પ્રયાસ કરતી, આ સંભાને ચારણોનો પૂરેપૂરો સાથ મળતો નથી. ચારણ ભાઈઓ પાસેથી જ્યારે જ્યારે કોઈ પણ હકીકત બહુવા માટે પ્રયાસ થયેલ છે ત્યારે ત્યારે દિલગીરી સાથે કંઠવું પડે છે કે, કોઈ પણ ભાઈએ માગેલી હકીકત મોકલવા તસ્દી લીધી નથી ત્રણ ત્રણ સંમેલનોમાં નીમવામાં આવેલ, પ્રાંતિક પ્રતિનિધિઓએ જરાપણ સાતિ-હિતનું કાર્ય કરેલ ન હોવાથી આ વખતના સંમેલનમાં તો પ્રાંતિક કમિટીઓને કાઢી નાખવામાં આવી છે. શ્રી ચારણ હિત વર્ધક સભા અને શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણવિદ્યાલયના કાળા ઉઘરાવનાર કાર્યકરોને અનુભવ થાય છે કે ઘણા ચારણભાઈઓ પોતાની સ્થિતિ સારી હોય અને સમજતા હોવા છતાંય મહામુશીબને કંઠમાં નળવી રહ્યાં છે એટલું જ નહિ પણ ઘણા ઘણા ગરાં ભાઈઓ તો, મદદ આપવી એક બાજુ રહી, પરંતુ કાર્યકરો, અને સંસ્થાને, વખોડવામાં પાછું વાળીને જોના નથી. આના કારણ માટે આપણી જાંતિની ગરીબાઈ અને સરથા તરફથી થયેલા બેઠતા પ્રચારનો અભાવ પણ સંભવી શકે. પરંતુ ઘણા દાખલાઓમાં મને

એક ત્રીજું જ કારણ દેખાયું છે. તે કારણ તે પૂર્વકથિત આપણામાં રહેલ પરદોષ જોવાની, અને બીજાના ગમે તેવા સારા કાર્યને નિંદવાની વૃત્તિ. કંઠ-કળો ઉઘરાવનાર ભાઈને બેઠાં જોઈને તેવી ક્ષેત્ર ન મળતી હોય તેનું ચોથું કારણ મને એ લાગે છે કે કાર્યકરને તો પ્રદેશના કે ગામના સ્થાનિક કાર્યકરના અભાવે ચારણોમાં થોડા સમયમાં છાપ પાડતાં થયું જ મુશ્કેલી પડે છે.

આપણી સંસ્થા સામાજિક ક્ષેત્રમાં કામ ન કરી શકતી હોય તેનું અન્ય મુખ્ય કારણ મને એ લાગે છે કે શ્રી ચારણ હિતવર્ધક સભાને આગ્રયે શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણવિદ્યાલય આવતું હોવાથી, આ બંને અંગ્રણ્ય નેતાઓ તેના કંઠ કાળા વજેરેના કાર્યમાં રોકાઈ રહે છે. અને તેથી સામાજિક પ્રવૃત્તિઓ માટે ખુબ જ મુશ્કેલી જોવામાં થાય છે. શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણવિદ્યાલય પાસે પણ ખુબ જ નાનું કંઠ કહી શકાય કે જે કંઠના વાર્ષિક વ્યાજમાંથી, માંડ ૧૭ નિવાર્થીઓ વિદ્યાર્થીઓ કરી શકે એટલે કે જેને આ બે આપણી પ્રવૃત્તિનું મુખ્ય અંગ માનેલ છે; તે શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણ

વિદ્યાલય પણ મહાગુરુશીખતથી ચાલી રહે તેમ છે. વિદ્યાલયને કાયમી જીવન આપવા માટે આપણા સુખ્ય નેતાઓ પ્રયાસ કરી રહેલા હોવાથી, જ્ઞાતિહિતની બીજી બાબતો ગોણુસ્વરૂપ પકડતી નથી છે.

એક બાબત આપણામાં ઘર કરી રહેલ દુર્ગુણોને કાઢવાની જરૂર છે, અને બીજી બાબત આપણી સંસ્થાની ઉપર સુજન્ય સ્થિતિ છે, તો તેમાંથી કેવી રીતે અને કેવો ભાગ કાઢવો તે સમાજવું સૌને અગત્યનું છે.

ચારણ જ્ઞાતિનો ઉદ્ધાર ઈચ્છવો અને તે માટે પ્રયાસ કરવો તે દરેક ચારણની ફરજ છે. આપણામાં રહેલ દુર્વ્યસનો આપણે દૂર કરવાં જોઈએ. દુર્વ્યસનોથી માણસ દુર્ગુણો તરફ સહેલાઈથી ધરાડ ઈ નથી, માટે દુર્વ્યસનો તજવાં જોઈએ. વળી આપણી જ્ઞાતિ ગહુ જ ગરીબ જ્ઞાતિ છે. તેથી આપણને દુર્વ્યસનોમાં પૈસા જીડાડવા પોતાય તેમ નથી. જે માગણ-વૃત્તિએ આપણને સમાજમાં હલકા પાડેલ છે, તે માગણવૃત્તિને તો પડેલી તકે છોડી દેવી જોઈએ. પોતાનાં બાળકોને યોગ્ય કેળવણી આપવાની દરેક ચારણ માગાપની અનિવાર્ય ફરજ છે. કેળવણીથી જ આપણે આપણામાં રહેલ એ દુર્ગુણોને કાઢી શકીશું.

બૃહદ સુજન્યતાના ચારણોના હિત માટે પ્રયાસ કરતી શ્રી ચારણ હિતવર્ધક સભાએ પણ આ દિશામાં પગલાં લેવા માટે ઉપાયો યોજવા જોઈએ. તેના કાર્યકરોએ, જુદા જુદા ઠેકાણે વસતા ચારણોના સહેવાસમાં આવવું જોઈએ. આ માટે ચારણોના વસવાટના પ્રાંતોને વિભાગવાર બંદી નાખવા જોઈએ. કાર્યવાહક કમિટીના દરેક સભ્યને એક એક વિભાગમાં પ્રચાર વર્ગેરે કાર્ય કરવાનું સોંપવું જોઈએ. વધુ મહિ તે વરસમાં એક વખત પણ દરેક સભ્યને માટે પોતાને સોંપેલ વિભાગમાં ફરવાનું ફરજિયાત હોવું જોઈએ. તે સભ્ય પોતાના વિભાગમાં આવેલ ચારણોના સહવાસમાં આવે, તેમનાં સુખ દુઃખ સમજે, અને ગામવાર કે પ્રાંતવાર સેવાભાવી ભાઈઓને તૈયાર કરી તાલીમ આપે. પ્રાંતોમાં આ પ્રમાણે તૈયાર કરેલ ભાઈઓ, જ્ઞાતિહિતને માટે પોતાના પ્રાંતમાં રહેલ ગામડાઓને બંદી નાખી અત્યાર નવાર પોતાને ભાગે આવેલ ગામડાંઓમાં જઈ ત્યાં વસતા ચારણોના સતત સહવાસમાં રહ્યા કરે. ઓછામાં ઓછું વર્ષમાં એક વખત બધા પ્રાંતિક કાર્યકરોનું સંમેલન યોજાવું જોઈએ. જેથી વરસ આગાના અનુભવો

ની આપ લે કરી શકાય, અને મળેલા અનુભવમાંથી ભવિષ્યના માર્ગો ચોણી શકાય.

મારી અદ્યપણુદ્ધિ પ્રમાણે આપણી સંસ્થાના પ્રચારનો અને તે રસ્તે જ્ઞાતિ-બંધુઓની સેવા કરવાનો મને આ ઉપાય દેખાય છે. હું ધારું છું કે જો આ પ્રમાણે પ્રવૃત્તિ કરવામાં આવે, તે થોડા વરસોમાં આપણે બૃહદ ગુજરાતના ગામે ગામ આપણી સંસ્થાના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરી શકીએ.

છેવટે મારે એક જ વાત લખવાની રહે છે કે, દરેક ચારણબંધુએ જ્ઞાતિ-હિત માટે પ્રયાસ કરતી શ્રી ચારણ હિત-વર્ધક સભાને અને તેને આશ્રયે ચાલતા શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણવિદ્યાલયને પોતાથી બનતી તન, મન, અને ધનની દરેક પ્રકારની મદદ કરવી જોઈએ. જેટલી આપણે આપણી સંસ્થાઓનો મદદ કરીશું, તે પ્રમાણે તે કાર્ય કરી શકશે, અને તેટલા પ્રમાણમાં આપણી જ્ઞાતિનો ઉદ્ધાર થશે. માટે દરેક જ્ઞાતિપ્રેમી ચારણ સ્ત્રી કે પુરૂષ જ્ઞાતિહિતના આ કાર્યમાં પોતાનો યોગ્ય ફાળો આપે એજ પ્રાર્થના.



મધ્યયુગનો છેલ્લો સંસ્કારમૂર્તિ ચારણ

‘સાસ્ત્ર મીન્સૂલ’ ગયો!

શ્રી પિંગળશીભાઈની પ્રતિભાને ગુજરાતે ગુમાવી છે!

મધ્યયુગી સાહિત્ય-સંસ્કારના, નૂતનવદના, ચારણ ગિરદાઈઓના અને ભક્તિરસના છેલ્લા અવશેષ, એકતા એક પ્રતિનિધિ કવિરાજ પિંગળશીભાઈ પાંતાભાઈ લાવનગર મુંકામે ફાગણ શુદ્ધ બારશની રાત્રિના સાડાબાર બજે પોતાનાં મકાનમાં દેવ થયા છે.

ભાતું બાંધીને એઠેલા

બ્યાશી વર્ષની એની અવસ્થા હતી. રાગ-દેમોથી મુક્ત દિલાવરી, માનવ-પ્રેમ અને ઈશ્વરભક્તિથી રંગાયેલું એનું જ્ઞાની હૃદય જીવનલીલા સંકેલવા માટે સંપૂર્ણ સુસજ્જ હતું. એક ઉત્તમ જોળિયામાં વસનારા ઉન્નત આત્માનો એ સ્વભાવિક વિકાસ હતો. આંખો સામે પુત્રો-પૌત્રોની લીલો વાડી હતી. વિશુદ્ધ જીવન જીવી ગયાનો સંતોષ હતો. ભાતું બાંધીને જ એઠેલા હતાં પિંગળશીભાઈ.

પંદર દિવસ પહેલાંની જ વાત

પંદર જ દિવસ પર આ લખનારને એમનો એક કલાકનો સમાગમ સાંપડેલો. મેરૂના શૃંગ સમા બેઠા હતા, એ જ સાવજી સુમા ચહેરા-મોંરાનો ઠાક હતો, એ જ પોરસવંતી વાતો કરી, પૂછેલા પ્રશ્નના જવાબમાં ભરપૂરે મેઘકંઠે તડાકાબંધ વાર્તાપ્રસંગો ને કાવ્યો લલકાર્યા હતાં. બાળક જેવા હાસ્યે ભર્યા ને પ્રકુલિત હતા, પુત્રો-પૌત્રો પાસે કાવ્યોના પાઠ કરાવ્યા હતા.

ફાગણ શુદ્ધ પના ચૌજ તો ચુવરાજના જન્મ પ્રસંગે નીલમગાગ મહેલમાં જઈ, મહારાજાને કાવ્યો સંભળાવ્યાં ને રૂબ લેતી વખતે કહ્યું:

‘હરિ! હરિ!’

“કશું બાકી નથી. તમારી કૃપાથી બધું જ છે.” પછી પોતાના ઈનામી ગામ શેઠાવદર જઈ આંબાવાડિયામાં વિદ્યુર્ચા ને ઠાકરના પુત્રરીને ગાય દાન દીધી. ને લાવનગરમાં અવસાનની રાત્રિએ સાડા દસ સુધી તો આનંદની વાતો

કરી આરામ લેવા હિંમતભર દાદર ચડી મેડીએ ગયા. રાત્રે સાડા બારે સહેજ છાતી દુઃખી ને 'હરિ! હરિ!' કરતે કરતે દસ જ મિનિટમાં દેહ છૂટ્યો.

બળવાની પહેલાં જન્મ

ઇ. સ. ૧૮૫૬માં (બળવાની અગાઉ એક વર્ષે!) વિક્રમ સં. ૧૯૧૨ના આસો શુદ્ધ ૧૧ના દિને પુરાતન ગોહિલ-પાટનગરી પહાડી શિહોરમાં જન્મ : પિતાજી ગોહિલ-કવિ પાતાભાઈ : માતાજી આઈબા. મોસાળ ગ્રામ શેવાળિયા. 'જસુ-વિલાસ' બિરદ-કાવ્યના કર્તા પાતાભાઈનો પુત્ર પિંગળશી કવિતાને તો ગળથુથીમાં જ પીવે, ને માતાનાં ધાવણમાં જ ધાવે એમાં શી નવાઈ!

પ્રતાપી પિતાનો વારસો

પ્રતાપી તાત નીચે એણે ચારણી, ગુજરાતી, હિંદી અને વ્રજભાષાની કાવ્ય-વાણી સાધી લીધી. અને કાવ્યરચનાનાં અસલી ડિંગળી મરોડ તેમજ વ્રજભાષાની લાક્ષણિક પ્રવાહિતા તો પિંગળશીભાઈના કંઠમાં આસાનીથી રમવા લાગ્યાં. એ કરતાં ચ વધુ ખૂબી તો હતી એની ભજન-વાણીની. શબ્દાડમ્બરી અને ભેશીલી ચારણી કવિતાના ઉપાસકોને અસલી સંતોની સરલ સ્વભાવિક નિરાડમ્બરી લોક-વાણી પર સહેજે હચોટી કે કાવટ નથી મળી જતી. પિંગળશીભાઈ એમાં અપવાદ નીવડ્યા. કારણ તો દેખીતું જ છે. પિંગળશીભાઈ કેવળ રાજકવિ ને રાજબિરદાઈ નહોતા, એ તો પ્રભુભક્ત હતા. મધ્યયુગી સંતોના માર્ગવિહારી હતા. વાણી તો એના આત્મસંસ્કારોને શોધતું આવતું સ્વરૂપ હતું.

સાચું જળ સીંચાયું

એના સંત-હૃદયને સાચું જળ તો સ્વં મહારાજ તખ્તસિંહજીએ સીંચ્યું. તખ્તસિંહજીનાં સખાવતી કામો સાથી પિંગળશીભાઈ હસ્તકે જ ચાલતાં. ગરીબોને દાણા, વસ્ત્રો ને ઉનાળે કેરીઓ વહેંચતાં, તળાવ તેમજ નદીકાંઠે શિયાળાની કડકડતી ટાઢમાં હુંઠવાતાં પહેલાં કંગાલોને ઓશોકે મહારાજની આજ્ઞાથી અસલી બનાતને એક એક ચક્રો એજ મૂકી આવે, ને પાંચ પચીસ રૂપિયાની પોટલી પણ મૂકી આવે. યાત્રાઓનાં બંધાં સ્થળોએ પણ મહારાજના એ સંગાથી. એટલે જ એનું હૃદય વધુ આર્દ્ર બન્યું ને એમાંથી અસલી સંત-વાણી પ્રગટ થઈ.

કવિતાની ઉપાસના

સવારના ચાર વાગે જાગના, દાંતણુપાણી કરી હાથમાં કલમ લેતા, ને આત્મસ્ફુરણા લખાવે તેમ લખતા. રાત્રિએ સૂવે ત્યાં સુધીમાં પણ સહેજ વખત મળે કે કવિતાને જ ઉપાસતા. એના પિંગળશીભાર્ગનાં પ્રભુવિહારનાં, આત્મજોધનાં ને રસોદ્રેકનાં પદો આજથી પાંત્રીસ આઢીશ વર્ષો પૂર્વે પણ કાઠિયાવાડને દૂર દૂરને ગામડે ગામડે એકતારાઓ પર ગવાતાં થયેલાં. આ લેખકે પોતાની દસેક વર્ષની ગયે ધારીગુંદાળી નામના ગામડામાં સાંભળેલું પદ સચોટપણે યાદ છે કે-

“કહે કવિ ‘પિંગળ’

મુરતી મહા મંગલ !

મારા રૂદિયામાં વસો તો

મારે શું છે બીજું કામ ?

ગોકળીયું નાનું ગામડિયું

શા માટે આવો શામ !”

ને ગાનારાઓ તો એમ જ માનતા કે ‘પિંગળ’ નામના કોઈક પુરાતન સંતની આ વાણી છે. હું પોતે જ એમ જ સમજતો.

ખડોળો રોટલો

સ્વ૦ પિંગળશીભાર્ગની વાણીમાં માનવતા પૂરતાર ખીજું તત્ત્વ પણ હતું. એની ડેલી મુલ્કમશહૂર કરનાર ખડોળો રોટલો. એ રોટલાએ આ રાજ-આરણ્યને સામાન્ય લોકો સાથેના હાર્દિક સમાગમ સદાય સજીવન રાખ્યો. એમની પહોળી પલાંડીદાર બેઠક દિવસભર અને અરધી રાત જસ ડેલીની ચોપાટમાં જ. એને બેસવાના આસનમાં ને અન્ય આવેતુઓને અપાતા આસનમાં ફરક નહિ. એની પાસે તો ડાયરો અવિરામ ચાલુ : સાધુઓ ને બાવાઓ આવે, લોટની તાંબડી ફેરવતા બ્રાહ્મણો આવીને બેસે, લાન્સરના લશ્કરીઓ ને પોલીસના સિપાહીઓ ત્યાં પહોરો ખાધ, કે દેશવિદેશથી, દૂર તેમજ નજીકથી પધારતા મહાન કવિરાજો પણ એના ડાયરામાં શામિલ થાય. સર્વ કોઇને માટે એક જ બેઠક, એક જ હોડો, એક જ આદરબોલ, એક જ પ્રકારનું વર્તન : ન કોઈથી દિલચોરી, કે ન કોઇને વિશિષ્ટ વિદેકની બનાવટ : ન કોઈની આધાપાછી કે ન

હલકા શબ્દને ત્યાં સ્થાન. બાળક આવીને બોલાવે તો બાળક જેવડા બનીને
તાનક મથાવે આ રાજકવિ. વિનોદ તો એના સ્વભાવનું સ્વાભાવિક પ્રદેશ હતું.

એ પૌરુષ-રૂપ નહિ વીસરાય

એ ડેલીની ચોપાટમાં ગેસતા સ્વં પિંગળશી બાપુના ડાયરાનો ચિતાર
તો મારી નજરમાં આણું ચે આણું અંકિત થઈ ગયો છે. સંપત્તરંગી
બાગંતુકોની વચ્ચે એકરંગીલા બનીને ગેસતા એ અડીખમ પુરુષનું પૌરુષ-રૂપ
નહિ વીસરાય. મધ્યયુગના મહાન ખંડિયેરને તળિયે ચગદાઈ ગયેલી સંસ્કૃતિના
પ્રદેશમાં સહેલા મર્મ-ઊકેલ માટે સ્વં પિંગળશીભાઈના આ ડેલીએ બેઠેલા
અકિતરૂપનું દર્શન ભારી સાધન હતું.

“એકરંગીલા”

એને દેખ્યા પછી મેં કદપી જોયા છે-મહારાજ વજ્રેસંગ, આતાભાઈ,
અને જાગીદાર ખુમાણ: એમને દીકા પછી મારી. મધ્યયુગમાં ભમવા જતી
કદપનાને વર્તમાનની ભૂલભૂલામણી નહી નથી. એને દીકા પછી મને જાણ કે
સામા મળતા ગયા છે પુરાતનતાના ધુમ્મસમય પ્રદેશમાં ભમતા ચોદાઓ,
ચોગીઓ, રાજપૂતાણીઓ ને જોગમાયા ચારણ્યો. પિંગળશીભાઈના પરિચય-
કર્તાઓને માટે ‘જૂનવટ’ અને ‘જૂનવાણી’ એ તિરસ્કારના શબ્દો નથી, ગેરસમજની
પણ બાળતો નથી.

પિંગળશીભાઈનો અવાજ પણ કેઈ દિવસ જરાય ઊંચો કે નીચો થયો
મેં જોયો નથી. એને માટે તો એક જ શબ્દ કહું: “એકરંગીલા.”

ડિંગળીના ઊકેલનાર

જર્જરિત જૂના ચોપડાઓમાંથી ડિંગળી ભાષાના બોડિયા અક્ષરો ઊકેલવાની
એની કાવટ ભારી હતી. ડિંગળી વાણીના ધુરંધર લેખે. એનો જાડીદાર આજે
જડવો દુર્લભ છે. (રહ્યા છે એ; એવા અવશેષ-દારણુભાઈ.) અને અસહી
પ્રાસાદિકતા પૂરેપૂરી સાંચવીને નવીન કવિતાના રચનાર પણ એ જ એક અન્નેડ
હતા. એમની રચનાના મરોડો અનેખા જ હતા.

એમનો કંઠ એને કહેતા

એ કરતાં પણ વિશેષ ખૂબીદાર તો એમનો કંઠ અને એમની કહેણી હતી. દૂલાભાઈને મેં જ્યારે કહ્યું કે વાર્તા કહેનારાઓ હુસ્ત થયા છે એવા આ જમાનામાં તમે જે જે ભાઈઓ અસલી પાતાળકૂટ કંઠ ધરાવે છે તેઓ તો એ કંગાને પાછી ખીલાવો ! ત્યારે દૂલાભાઈએ મનેકહ્યું, “વાર્તાકારની શી વાત કહું ! એ તો કહી જાયું માંધના પૂત એક પિંગળશીભાઈએ.” આહે તેવડા નાના અથવા મોટા ડાયરાની સમક્ષ નજરને બસ ધરતી તરફ જ સ્થિર કરી, જોડું કે આગળ પાછળ એવા વગર, શ્રોતાઓના મોં પર પડતી અસરોની કશી જ મદદ લીધા વગર, પોતે પણ જરીકે લાગણીવશ અથવા વિચલિત થયા વગર એક અવધૂત ની માફક જ્યારે વાગ્ધારા વહેતી મૂકતા, સમા સ્વરે કથ્યે જતા, ધોધમાર વર્ણન આલેખતાં ગીતો-કવિતો ટાંકતા જતા, વાર્તામાં રનૂ થતા એકેએક ભાવને છંદ, છપ્પય કે કાવ્યની અખૂટ ખાશુમાંથી વેરના જતા. ‘ગિરુદ શૃંગાર’ વગેરે કાવ્યોના અજોડ કથાકાર પિંગળશીભાઈના એ ગુજરી ગએલા સમયની, એમની એ પ્રૌઢાવસ્થાની તમને આજે કલ્પના જ નહિ આવે. વાર્તા કહેતા પિંગળશીભાઈ પણ માનવી પિંગળશીભાઈની જ પ્રતિકૃતિ હતા. એ જ સંયમ, એ જ ખામોશ, એ જ અવિચ્છિન્ન જીવનધારા સાહિત્યધારા ળની જતી. ને શ્રોતા-સમૂહ પ્રત્યેક ભાવમાં ઘસડાતો હોય ત્યારે કથાકાર એકલો આત્મસ્થ બેઠો હોય.

આ બધું જાણીએ છીએ ત્યારે આજે સાહિત્યકાર અને સાહિત્યકારના જીવનને લગતી જે બેઠ પક્ષે વાહિયાત વાતો ચાલી રહી છે. તેનાથી બુદ્ધિ એક સત્ય સ્પષ્ટ થાય છે. પિંગળશીભાઈ સાહિત્યના વિજ્ઞ તરીકે મોટા, કે જીવન જીવનાર તરીકે મોટા ? એ પ્રશ્ન જ અર્થહીન છે. એનામાં પોતાનું પોતાપણું-નિજત્વ, સ્વત્વ હતું, એટલું જ કહેવું બસ થશે.

કોઈએ સાચો લાલ ન બઠાવ્યો

એમની પ્રખર કાવ્ય-શક્તિ, તેમજ એમની સાહિત્ય-ઈતિહાસ વગેરે ની જાંડી સાન : એ બેઉનો સાચો લાલ નથી રાજ્યે લીધો, કે નથી લીધો ગુજરાતી પ્રજાએ. રાજ્યની ખરી ખાનદાની કે ત્રણ ત્રણ પેઢીઓએ, તેમજ ચોથી પેઢી એડમિનિસ્ટ્રેશને આ પુરૂષની અજળ રખાવટ કરી. ભાવનગરનું એાઢણું એાઢનારનાં ભાવનગરે સ્વમાન અને શીલ અણિશુદ્ધ સાચવ્યાં. ભાવન-

ગર રાજ્ય પાતાના કવિનો સ્વાધીન સંસ્કારી સંભાળ્યો, ને ઊઝળો કરી દેખાડ્યો. એક પણ અવસરે એની પાસેથી જૂઠી વાંછી નં ઉચ્ચરાવી. કવિના આત્મગૌરવની આવી સાચવણુ તો આજના લોકયુગમાં લોકસંસ્થાઓ ને લોકમાન્ય પુરૂષો પણ નથી કરી જાણતા.

સાહિત્યકારની સ્વતંત્રતાનો સ્ત્રીધી રીતે નહિ તો આડકતરી રીતે તેજેવધ ચાલતો જોવાય છે. એ દષ્ટિએ ભાવનગર રાજ્યને ધન્યવાદ છે.

સર્જનશક્તિનો પૂંજ

પરંતુ ૮૩ વર્ષનું ત્રિશાલ એ કવિજીવન જો વાહ્મયની દષ્ટિએ કોઈકે હાથમાં લીધું હોત ને, તો એ પુરૂષની સાથે જ સ્મશાને સૂતેલી અઢળક વિદ્વતાને મહાન નવી રચનાઓ નીપજવવા માટે જોતરી શકાઈ હોત.

એવી જોતરનાર શક્તિના વાંકે સ્વ૦ ની કાવ્યપ્રતિભા એની સાચી સમૃદ્ધિ વચ્ચે પણ બેકાર બની રહી હતી. ગુજરાત જેની પાસેથી હોમર, વાલ્મીકિ કે તુલસી શૈલીનાં મહાકાવ્યોનું સર્જન થોડાક જ પ્રોત્સાહને કરાવી શક્યું હોત, તેવો એ એક જ પુરૂષ હતો-મહાકવિનો કોઈ જોલવાયેલો જ્વાલામુખી જાણે!

એથી કરીને આજે એમની જે થોડીક રચનાઓ ઉપલબ્ધ છે, તેમાંથી એમની સાચી કાવ્યપ્રતિભાની કણિકાઓ ચમકતી હશે, પણ તેમની ભાવિ કાવ્ય-શક્યતાઓનો ખ્યાલ નહિ આપી શકે, એ ખ્યાલ તો એમનો પરિચય સાધનારાઓ જ પામી શકેલ છે.

એમની કૃતિઓ: ‘ભાવભૂપણ’ નામે ગોહિલ કુળની તવારીખનો બિરદાવંચ: “તખ્તપ્રકાશ” પણ એવો જ અંચ: ઇશ્વરદાસજી કૃત “હરિરસ”નું સંપાદન કાર્ય: દશમસ્કંધ પરથી ઊતારેલ “શ્રી કૃષ્ણ જાગલીલા કાવ્ય,” “ચિત્ત ચેતાવની” નામનો કવિતા-સંગ્રહ: વગેરે.

—શ્રી ઝવેરચંદ મેઘાણી

(‘કૃષ્ણજ’ તા. ૧૦-૩-૩૬ના અંકમાંથી ઉદ્ધૃત)



ચારણ્ય જાતિ-વૃત્તાંત.

એક નમ્ર નિવેદન



ચારણ્યજાતિ એ હિંદુસ્તાનની-આર્ય જાતિઓમાંની એક છે. તેની પ્રાચીનતા શ્રેષ્ઠતા તેમજ તેના અન્ય ગુણોનું વર્ણન હિંદુ ધર્મશાસ્ત્રો- જેવાં કે શ્રી વાલ્મીકિ રામાયણ, શ્રી મહાભારત, શ્રીમદ્ભાગવત, શિવપુરાણ, ગણેશપુરાણ, પદ્મપુરાણ, બ્રહ્મપુરાણ, વગેરે-માંથી જાણી શકાય છે. હિંદુસ્તાનનો મધ્યકાલીન ઇતિહાસ શું બતાવેદ મળતો નથી. છતાં પણ કોઈ કોઈ સાહિત્યકારોનાં પુસ્તકો જેવાકે- શાકુંતલાનાટક, હર્ષચરિત્ર, પ્રસન્નરાધવનાટક તેમજ રાજતરંગિણી વગેરે ઇતિહાસ ગ્રંથો અને જૈનધર્મનાં પુસ્તકોમાં ચારણ્યો વિષે સારા પ્રમાણમાં ઉત્તમ ઉલ્લેખો મળી શકે છે.

મુસલમાનોના આધિપત્ય કાળમાં પણ ચારણ્યો હિંદુ જાતિમાં મહત્વનું સ્થાન લોગવતા હોવાના અનેક ઉદાહરણો મળેછે. અને અંગ્રેજ ઇતિહાસકારોએ પણ પોતાનાં અનેક પુસ્તકોમાં ચારણ્યજાતિની પ્રસંશા કરી છે.

ક્ષત્રિય જાતિ સાથેના ચારણ્ય જાતિનો સંગઘ અત્યંત નિકટનો અને ઘનિષ્ઠ છે. ચારણ્યોએ ગુરુ, ઉપદેશક, કવિ, સલાહકાર, વિઠ્ઠિકાર અને વિશ્વાસપાત્ર મિત્રો બનીને ક્ષત્રિય જાતિની ઉત્કૃષ્ટ પ્રકારની સેવા કરી છે તથા તેના અર્થે તન, મન, ધન સર્વસ્વ અર્પણ કરેલછે. ચારણ્યોની આ સેવાનાં ગૃહલામાં ક્ષત્રિયોએ પણ કૃતજ્ઞભાવથી તેમને પોતાના પૂજ્ય ગણીને ગામ ગરાસ તેમજ માન અકરામની ભેટ ધરી છે. આ કથનની સાક્ષી સ્વરૂપ અનેક વૃત્તાંત ઇતિહાસોમાં મળી શકે છે.

વર્તમાન કાળના ચારણ્યોનાં રહેણી કંદણી, વ્યવસાય અને જીવન તંત્ર દૃષ્ટિ કરીએ તો રહેજળ આપણને જણાશે કે ચારણ્ય જાતિ એ એક શ્રેષ્ઠ જાતિ છે અને તેને મળેલ વારસો ભગ્ય હોવો જોઈએ.

હિંદુઓના સર્વ વર્ણોમાં દેવીપૂજા (દેવીભક્તિ) પ્રચલિત છે. દેવીઓમાં પણ બુદ્ધા બુદ્ધા નામવાળી અનેક દેવીઓ પૂજાય છે. આ દેવીઓમાંથી મોટા ભાગની દેવીઓએ ચારણ્યજાતિમાંજ જન્મ લીધો છે. તદુપરાંત ચારણ્ય જાતિમાં અનેક મહાન્ ભક્તો, શૂરવીરો, સાહિત્યકારો, કવિઓ, રાજનીતિસે, ઉપદેશકો, દેશભક્તો

અને સત્યાગ્રહી વીરોએ જન્મ લઈને ગૌરવમાં વૃદ્ધિ કરી છે.

આ બધું હોવા છતાં પણ ચારણજાતિના લગ્ય ઇતિહાસથી અજાણ એવી કેટલીક વ્યક્તિઓ તથા કેટલાક વિદ્વેષીઓ તરફથી ચારણ જાતિ સંબંધી કપોલ-કલ્પિત હકીકતો ફેલાવવામાં આવે છે. એમ માલૂમ પડ્યું છે. સાથે સાથે એ પણ સ્પષ્ટ છે કે, સ્વં પૂજ્ય પુરોહિત શ્રી ગૌરીશંકર ગોવિંદજી એ લખેલ એક નાનકડા પુસ્તક ‘ચારણધર્મ અને જાગૃતિ’ સિવાય ગુજરાતી ભાષામાં ચારણજાતિ વિષે પ્રમાણભૂત હકીકત આપતું એક પણ પુસ્તક લખાયેલું નથી. હિંદી ભાષામાં આ વિષયને લગતાં બે ત્રણ પુસ્તકો લખાયાં છે, તેમાં મુખ્ય નીચે મુજબ છે-૧ ‘ચારણ કુલ પ્રકાશ’-કર્તા સ્વં કવિરાજ શ્રી કૃષ્ણસિંહજી સોદા (શાહપુરા-મેવાડ), ૨ ‘ચારણોત્પત્તિમીમાંસામાર્ત’-કર્તા સ્વંકવિરાજ શ્રી લક્ષ્મીદાનજી વીઠૂ (ખીકાનેર). આ બે પુસ્તકોમાં ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ પહેલું પુસ્તક શ્રેષ્ઠ છે. બીજા પુસ્તકમાં ચારણ જાતિની ઉત્પત્તિની હકીકત વિસ્તારથી ચર્ચવામાં આવેલ છે. બન્ને પુસ્તકો શ્રેષ્ઠ પંક્તિનાં છે. આ સિવાય સ્વંકવિરાજ શ્રી મુરારિદાનજી આસિયા (જેધપુર) દ્વારા ‘ચારણ જ્યાતિ’ નામનું એક નાનકડું પુસ્તક પણ પ્રસિદ્ધ થયેલ છે, તેમજ ગુજરાતી અને હિંદી ભાષામાં ચારણ જાતિ સંબંધી ઘણા લેખો લખાયા છે, અને લખાણો થયાં છે તથા પુસ્તકોમાં પણ ઉલ્લેખો થયા છે.

ઉપર દર્શાવેલ નામવાળાં પુસ્તકોમાં ચારણ જાતિની ઉત્પત્તિ તથા ઇતિહાસ સારી રીતે સ્પષ્ટ કરવામાં આવેલું છે. પરંતુ તેની ભાષા હિંદી હોવાથી કચ્છ-કાઠિયાવાડ - ગુજરાતમાં તેનો પ્રચાર બહુ થયો નથી, એટલે ગુજરાતી ભાષા-ભાષી ચારણો તથા જનતાને ચારણ જાતિના ઇતિહાસની માહિતી ન મળી હોય એ સ્વાભાવિક છે. ઉપરાંત ઉપરોક્ત હિંદી પુસ્તકોમાં વિસ્તાર લયથી તેમજ અન્ય કારણો ને અંગે વર્ગી ધર્મશાસ્ત્રો સિવાય અન્ય પુસ્તકો, લેખો, લખાણો વગેરેનો તથા ચારણજાતિના રીતરિવાજો, સાહિત્ય, જીવન, અન્ય જાતિઓ સાથેનો સંબંધ, તેની વિશિષ્ટતાઓ અને અન્ય ઘણી બહુવા યોગ્ય હકીકતોનો સમાવેશ કરવામાં આવ્યો નથી; અને આ બધા ઉપરાંત ઘણા અણસમજુ માણસો તથા વિદ્વેષીઓ ચારણ જાતિ સંબંધી કપોલ-કલ્પિત હકીકતો ફેલાવતા માલૂમ પડ્યા છે; એટલે ગુજરાતી ભાષા-ભાષી જનતાને ચારણ જાતિના ઇતિહાસથી પરિચિત કરવાની તથા જનતા પાસે સત્ય વસ્તુ પહોંચીતે મૂકવાની આ દેશની શ્રી ચારણહિત-

વર્ધક સેલાની ફરજ છે. આ ફરજને અંગે તેની વાલી હું ચારણ જાતિના જૂના-કાળ અને વર્તમાનકાળ વિષે યોગ્ય વસ્તુ પ્રસિદ્ધ કરવા માણું છું.

ચારણ જાતિ વિષે હું જે કંઈ પણ લખીશ તે બધું કંઈ નવું નથી. એ બધું તો એક યા બીજા સ્વરૂપે ઉપર દર્શાવેલ નામવાળાં પુસ્તકો તથા લેખો, લાખણો વગેરેમાં ઠયારતું ચે કહેવાઈ ગયું છે. ફક્ત એક સંગ્રાહક તરિક્કે એ બધું તેમજ બીજું અન્ય જે કંઈ મળી શકે તે બધાને યોગ્ય રૂપમાં જોડવાનું મારું કામ છે. હું કોઈ મોટો વિદ્વાન છું નહિ, જે લખીશ તે બધું ઉપરોક્ત સામગ્રી માંથી જ અને તે પણ ફક્ત ગુજરાતીભાષા-ભાષી જનતાની જાણ મારે. મારા લખાણમાં કયાંય ભૂલચૂક જણાય તો કૃપાળુ પાઠકગણ મને મારી ભૂલનું ભાન કરાવે એમ પ્રાર્થના છે.

વિશેષમાં ખાસ વિનંતિ કરવાની કે, જે ભાઈઓ પાસે ચારણજાતિના ઇતિહાસ, ઉત્પત્તિ, કાર્યો, વ્યવસાય, ચારણજાતિમાં ઉત્પન્ન થયેલ ભકતો, દેવીઓ, શૂરવીરો, કવિઓ, રાજદારીઓ, ઉપદેશકો, અને અન્ય મહાન પુરૂષો, ચારણજાતિના રીતરિવાજ, ભાષા, રૂઢિ, પહેરવેશ, ગામગરાસ, સાહિત્ય, અને તેને લગતી અન્ય કંઈ પણ માહિતી જૂની અથવા નવી હોય તે તેમજે પિના વિલંબે મને મોકલવાની કૃપા કરવી. ચારણજાતિની શાખો, પાઠાઓ, લેદો વગેરે સંબંધી કંઈ પણ પ્રમાણબદ્ધ હકીકત કોઈ ભાઈની પાસે હોય તો તે પણ મોકલવાની વિનંતિ કરવામાં આવે છે.

ચારણજાતિને લગતી માહિતીના બધા પુરાવા, પુસ્તક, લેખ વગેરે યોગ્ય ઉપયોગ થયા પછી મૂળધણીને પાછાં મોકલવામાં આવશે. વિશેષમાં વિનંતિ કરવાની કે ચારણ અથવા ચારણોત્તર-અન્ય કોઈ પણ બંધુ તરફથી ચારણજાતિના લખવા ધારેલા આ ઇતિહાસ સંબંધી સૂચન-સલાહ મળશે તો મહદ્ ઉપકાર થશે.

ચારણજાતિના ઇતિહાસની આ હકીકત 'શ્રી અં ૭૦૦ ચારણ-સન્મેલન' ના મુળપત્ર 'ચારણ' પત્રમાં (સંપાદકોની અનુસાધી) ક્રમે ક્રમે પ્રગટ કરવાની મારી નમ્ર અભિલાષા છે. મારી શક્તિ એટલ છે, અને મને તેનું ભાન પણ છે, પરંતુ જાતિબંધુઓ તેમજ અન્ય કૃપાળુ સન્નજનોનો સહકાર મળશે એવી પૂર્ણ આશાથી આ કાર્ય કરવાને તત્પર થયો છું, આ ઐતિહાસિક હકીકત પૂર્ણ રીતે લખાઈ

રહેતાં એક પુસ્તકાકારે પ્રાસન્ન કરવાની ઇચ્છા છે. ભગવેતિ જગદંબાની પૂર્ણ કૃપાની આશા સાથે આ કાર્ય હાથમાં લીધું હોઈ એ દયાળુ મા ભારા આ નમ્ર મનોરથને પૂર્ણ કરે, એજ અભ્યર્થના.

ચારણ્યજાતિના લખવા ધારેલા આ ઇતિહાસમાં નીચેની તથા અન્ય જાળતો નો સમાવેશ થવાનો સંભવ છે.

ભૂતકાળ

૧ ચારણ શબ્દનો અર્થ, ૨ ચારણોની ઉત્પત્તિ, ૩ શાસ્ત્રોમાં ચારણોના ઉલ્લેખો અને તેનાથી નિષ્પન્ન થતું ચારણોનું નિવાસસ્થાન, વ્યવસાય, તે વળતના સમાજમાં સ્થાન વગેરે, ૪ મધ્યકાલીન ઉલ્લેખો, ૫ જૈનધર્મનાં પુસ્તકોમાંના ઉલ્લેખો. ૬ મુસલમાની આધિપત્ય વખતે ચારણોનું સ્થાન, ૭ ચારણો-અર્થેજ ઇતિહાસકારોની દૃષ્ટિએ, ૮ રાજપૂતો સાથેનો ચારણ્યજાતિનો સંબંધ, અને તેને અંગેની અન્ય વિશિષ્ટતાઓ, ૯ ચારણ ભક્તો, દેવીઓ, કવિઓ, રાજનીતિજ્ઞો અને, શૂરવીરોની હકીકત, ૧૦ ચારણ્યજાતિ વિષેનાં ઐતિહાસિક વિધાનોનું મનન કરતાં માનવ-ઇતિહાસમાં ચારણ્યજાતિનું સ્થાન, ૧૧ ચારણ્યજાતિનું ક્રમે ક્રમે થયેલું પતન તથા તેનાં કારણો.

વર્તમાન કાળ

- ૧ વર્તમાનકાલીન લેદો-સ્થાન, ભાષા, રીતરિવાજ, વ્યવસાય, પહેરવેશ વગેરેના.
- ૨ આપણી વર્તમાન દશા-વ્યસનો, અવિદ્યા, કુસંપ, વહેમો, તથા અન્ય દુર્ગુણો તેમજ સદ્ગુણો.
- ૩ અવનત દશામાંથી નીકળવા માટે ઐક્ય, ભગૃતિ, વિદ્યાવ્યાસંગ, ધર્મપાલન વગેરેની જરૂરિયાત.
- ૪ જ્ઞાતિની ઉન્નતિ અર્થે થયેલાં મંથનો, અને તેની હકીકત.
- ૫ હવે શું કરશું ?
- ૬ સાંપ્રત કાળનાં મહાન ચારણોનો પરિચય.

પાઠા તથા શાખાઓની વિગતનું પરિશિષ્ટ

- ૧ ચારણ્ય જાતિનાં ગોત્ર, શાખો, પાઠાઓ વગેરેની હકીકત
- ઉપર દર્શાવેલ જાળતો તેમજ આજી જ્ઞાતિને લગતી અન્ય હકીકતોનો સમાવેશ લખવા ધારેલા આ પુસ્તકમાં કરવા વિચાર છે. સર્વે બંધુઓ માગેલી સહાય તથા સલાહ-સચન આપી ઉપકૃત કરે, એમ ફરીથી પ્રાર્થના કરું છું

સેવક

પિંગલશી પરબતલ પાયક

મંત્રી-શ્રી ચારણ્યહિતવર્ધક સભા,

લાવનગર

તંત્રી-નોંધ

વડોદરા-નરેશને રાજયાલિપેક્—

૨૧૦ શ્રીમંત મહારાજ સર સયાજીરાવની પછી તેમના પૌત્ર શ્રીમંત મહારાજ શ્રી પ્રતાપસિંહ ગાયકવાડ ગયા એપ્રિલ માસમાં વડોદરાની ગાદીએ બેસતાં, તેના અડવાડિયા સુધી પૂર્ણ ઉમંગથી સમારંભ ઊજવયા. સાર્વભૌમ સત્તા સાથે સીધો ઝંખધ ધરાવતાં દિદનાં ચાર મોટાં રાજ્યો પૈકી વડોદરા એક હોવા ઉપરાંત મહુમ વિશ્વવિખ્યાત મહારાજ સાહેબના યશસ્વી સુદીર્ઘ રાજ્યમસને લીધે તેનું સ્થાન દેશી રાજ્યોમાં ધણું આગળ પડે છે. એટલુંજ નહિ પણ મહત્ત પ્રાથમિક શિક્ષણ, પુસ્તકાલય અને પ્રામોદાર આદિ બાબતોમાં તે તે બ્રિટીશ ભારતથી પણ આગળ બિમુ છે.

નવીન મહારાજને નિખ્યાત શિક્ષકોના હાથ નીચે ખ્યાનગી રીતે અને પ્રખ્યાત બાળકો સાથે જોડા કોલેજમાં ઇન્ટર આર્ટ્સ સુધીનું ઉચ્ચ શિક્ષણ લેવા ઉપરાંત તેમના મહુમ પિતામહની સીધી દેખરેખ નીચે વર્ષો સુધી વહીવટદારથી માંડીને નાવખ દ્વારાન સુધીના જગ્યાદારી ભરેલા બોલ્ડાએ કામ કર્યું છે. ગાદીએ બેસતા પહેલાં મહુમ મહારાજના સમારક રૂપે પોતાની ખ્યાનગી મિલકતમાંથી એક કરોડ રૂપિયા નેટલી બાલ્ડાહી રકમ તેમણે પ્રમુખ કાર્યો માટે કાઢી છે. અને રાજ્યરોહણની ખુશાલીમાં, ચારેક માસ પૂર્વે મહુમ મહારાજને પાંચ વર્ષ માટે એકનીસ-બનીસ લાખ રૂપિયા નેટલી મહેસૂલી ઘટાડો કરેલા તેને કાયમનો જહેર કરી, પ્રખ્યાત રાજકર્મમાં સક્રિય લાગ લેવી કરવા માટે પ્રાંત પંચાયતો, તથા અંતર્ગતી સુધારાઈઓને ચૂંટણીનો પ્રમુખ આપવા ઉપરાંત ધારાસભા-વિસ્તારની ચોળના પંજી અમલમાં મૂકી છે.

અને આ શુભ પ્રસંગે વડોદરા રાજ્યમાં વસતી ચારણ કામ તરફથી એજો નામ-દારને અગિનંદન અર્પી જણાવવા માંગીએ છીએ કે, સને ૧૯૩૧ની છેલ્લી વરતીચણની મુજબ વડોદરા રાજ્યમાં ચારણ જાતિની વસ્તી ૨૬૧૦ માણસોની છે. મહુમ મહારાજ સાહેબે જે રૂઝવણી-પણત કામોને શિક્ષિત જતાવવા માટે ઉમદા સવસતો આપેલી છે, તેમાં એક વખતની સરકારી પરંતુ અત્યારે ગરીબી અને અધિવાસ-અધિકારમાં ફોલો આ ચારણ કામનો પણ સમાવેશ થતો હોવા છતાં, બીજા કામોને મુકાબલે સંખ્યામાં નાની હોવાથી તેને એ સવસતોનો જહુ એજો લાભ મળ્યો છે.

કાઠિયાવાડના રાજ્ય મહારાજાઓની ઉદાર દેહોગીથી બે એક નર્મ પૂર્વે બુદ્ધિગુજરાતની ચારણ જાતિએ લાવનમરમાં એક બોર્ડિંગની સ્થાપના કરી છે, પરંતુ વડોદરા રાજ્ય અને અમદાવાદ, ખેડા આદિ બ્રિટીશ ગિરજાઓમાં વસતા ચારણોને એ સ્થળ અર્ચાળ અને જહુ દૂર પડતું હોવાથી કલેસ જેવા ગંધ સ્થળે એક બોર્ડિંગ સ્થાપવો માટે વડોદરા રાજ્યમાં વસતા કેટલાક ચારણો પ્રયાસ કરી રહ્યા છે. તે તે ખાતે શ્રીમંત મહારાજ સાહેબ સંગીન

મદદ આપી વડોદરા રાજ્યમાં વસતી ચારણુ જનિતે આભારી બનાવશે, એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

અંતમાં શ્રીમંત મહારાજ સાહેબે તેમના રાજ્યારોહણ-પ્રસંગે ચારણુ જાતિના ખેડી ખુશામદથી પર એવા એક સંસ્કારમૂર્તિ યુવાન શ્રી મેડલાને માનપૂર્વક નિમંત્રી ને નિવાજેશ કરી છે, તે બદલ સમસ્ત ચારણુ જાતિ એઓ નામદારને ધન્યવાદ અર્પે છે.

ગુજરાતી-વિભાગ અને તેનું તંત્રીપદ—

અં ૭૫૦ ચારણુ-સંમેલનના રાજકોટ મુકામે મળેલા વિગત અધિવેશનમાં તેના મુખપત્ર 'ચારણુ' ને ત્રૈમાસિક રૂપે પુનર્જીવિત કરવાનો સર્વાનુમતિથી નિર્ણય થતાં ચારણુ જાતિના વસવાટના બે મુખ્ય દેશો— રાજપૂતાના-માલવા—અને ગુજરાત-કાઠિયાવાડને એક-બીજાની વધુ નહક લાવવા માટે તેને હિંદી અને ગુજરાતી ભાષામાં કાઢવાનું નક્કી થયું હતું. પરંતુ ગુજરાતી-વિભાગની જવાબદારી જીપાડી લેવા માટે તે પ્રસંગે કોઈ તૈયાર ન થવાથી ચાં હિં ૦ સલાતા મંત્રીજી અને બીજા બે ચાર આગવાનોની આજ્ઞાથી અમે તે કામ કરવાનું કબૂલ કરેલું, અને તદનુસાર તેનો ભાર વહન કરતા આવ્યા છીએ.

પરંતુ અમારે દુઃખ સાથે જણાવવું પડે છે કે, અમે જે જે ઉચ્ચ કેળવણીપ્રાપ્ત બંધુઓ તરફથી જાતીય પ્રસંગોની વિવિધ દૃષ્ટિબિંદુથી છણાવટ રજૂ કરતી લેખ-સામગ્રી મળવાની આશાએ—અમારી પત્ર ચલાવવાની અયોગ્યતાનો અમને પૂરો ખ્યાલ હોવા છતાં—આ જવાબદારી લીધેલી, તેમના તરફથી બિલકુલ સહાય મળી નથી. એ ખાતે અમે વારંવાર કરેલી પ્રાર્થના નિષ્ફળ ગઈ છે. એટલુંજ નહિ પણ રાજકોટ અધિવેશનમાં અમુક સંખ્યા ગ્રાહકો બનાવી દેવાનું વચન આપનાર બંધુઓમાં પણ ભાગ્યે જ એક-બે બંધુઓએ એ ખાતે પ્રયાસ કર્યો છે. જાતીય અધિવેશનોમાં તીખાં-તમતમતાં લાપણો કરનાર એક વયોવૃદ્ધ બંધુએ તો અનિયમિત રીતે પત્ર ત્રીકણે તો-તેમણે બનાવેલા ગ્રાહકો તેમને હપકો આપે, તેથી પોતાનું વચન મોકુફ રાખવાનું જણાવ્યું; ત્યારે બીજા એક બંધુએ પૂંચે તો આપ્યું હતું, તેમણે કહેલા પચીસે ગ્રાહકોનું લવાજમ તેમના પર વીં ૦ પીં ૦ મોકલી વસૂલ કરવાનું; પરંતુ પ્રથમાંક પ્રસિદ્ધ થવાની તેમને ખંજર આપતાં ને તે બંધુઓ પર વીં ૦ પીં ૦ મોકલવાનો આદેશ કર્યો, પછી ભંડે ને તેઓ પરત વીં ૦ પીં ૦ વાળે. અને થયું પણ તેમજ. એટલે કે કોઈ પણ પત્રને ચિરંજીવી બનાવવા માટે જે બે મુખ્ય બાબતો જણાય છે, તે લેખ-સામગ્રી અને ગ્રાહક-સંખ્યાના વિષયમાં વર્ષ દરમિયાન નિરાશા જ અનુભવવી પડી છે.

બીજી જાતિઓને મુકાબલે આપણે કેળવણીમાં થણા પાછળ હોવા છતાં યે બૃહદ ગુજરાતમાં આપણામાં પાંચ-સાત ઐન્દુએટ અને પંદર-ત્રીસ મેટ્રિક થયેલા બંધુઓ છે. પરંતુ તેઓ પૈકી એક-પણ વ્યક્તિનું નામ આજના ગુજરાતી-સાહિત્યમાં ગોત્સું જડતું નથી. જાણે કે પ્રાચીન કાળમાં ચારણુ જાતિએ સાહિત્યિક છવન છૂરી ગાંધુ હોવાથી એ કાળની બિન સાહિત્યિક કોમોની આજની ઉચ્ચ શિક્ષાપ્રાપ્ત વ્યક્તિઓને એ ખાતે માર્ગ કરી

આપવા માટે સાહિત્ય-સેવા કરવામાં પાપ લેખતા હોય! જો કે આ સ્થિતિ એકલા ગુજરાત-કાઠિયાવાડની જ નથી, રાજપૂતાના-માળવાના યુવકોની પણ એ જ સ્થિતિ છે. પરંતુ જેમને શિક્ષિત બનાવવા માટે જેણે બોર્ડિંગો સ્થાપી છે, અને રથાણે જાય છે; જેમને પદવીય બનેલા જોઈને પોતાને ગૌરવશાળી માને છે;— એ યાત્રિકોના આ એક માત્ર મુખ્ય માટે પણ તેઓ બે સપ્ત ન લખી મોકલે, એ તો બહુ જ દુઃખદાયક વસ્તુ છે. અને જે સ્થિતિમાં બીજે વર્ષે ગુજરાતી-વિભાગના તંત્રીપદે આલુ રહી વધુ હાંસી ન કરાવવા મા રાજીનામું આપવું અને હિંચિત સમજાવે છીએ. સંમેલનની પ્રતિરૂપધી આં હિં સલા કે ગુજરાત-કાઠિયાવાડ અને કચ્છ ઉપર એક જ સંમેલન ધરાવે છે, તેને ગુજરાતી-વિભાગ અગત્ય જણાતી હોય તો તેણે સંમેલન સાથે સમજાવતી કરી—પરને સર્વોચ્ચ-સુંદર બનાવવા માટે અહીં અહીં નાણાંની મદદ આપવી કબૂલ કરી—પોતાના તરફથી કોઈ સેવાભાવી એન્ડ એટ-જેમની તેના તંત્રી તરીકે નિમણૂક કરાવી લેવી.

સમાચાર-સંગ્રહ

ભારતના લોકજીવનનાં ચિત્રો જિતારવા માટે લગભગ બે વર્ષથી હિંદમાં આવેલ દ.ગેરિયન ચિત્રલેખા માતાપુત્રી-મીસીસ સાસ જુનર અને મીસ પ્રસીડામેથ જુનરે, ભારત લોકસંગીત એકઠું કરવા માટે ઓક્સફર્ડ યુનિવર્સિટી તરફથી હિંદમાં આવેલાં હોલેંડવાસ બાંકે દંપતી સાથે, મયા ફેબ્રુઆરી માસમાં કાઠિયાવાડના પ્રવાસે આવતાં, ચારણ કોમ-પ્રસિદ્ધ વાતાંકાર શ્રી મેઘાણુંદલાઈ લીલાનું લાઠી ચુકાગે ચિત્ર દોરી તેમને અમર બનાવ્યાં.

ભાવનગર-સાહિત્ય-સભા તરફથી તા.૦૪-૪-૨૬ના રોજ ભાવનગરના દીવાન સાહેબ શ્રી અનંતરાય પટેલની પ્રમુખપદે સ્વ. કવિરાજ શ્રી પિંગળશીબાઈના અવસાન-નિમિત્તે જાહેર શોકસભા મળી હતી. તેમાં શ્રી કલા ભગન, પ્રોફેસર ડૉ. રમણલાલ પાણિક, શ્રી નરવરલા સુરની અને શ્રી ગંગાનન બહે પોત્ર વિવેચન સાથે મહુમને અંગ્લિઓ આપી હતી.

વડોદરાના નવીન મહારાજ શ્રી પ્રતાપસિંહ ગાયકવાડના રાજ્યારોહણ-પ્રસંગે શ્રી મેરુ લીલાને આમંત્રણ મળ્યું હતું; અને સારી કદર યદ્ય હતી; કહે છે.

બીજી ફેબ્રુઆરી-પંચાત કોમે માટે વડોદરા રાજ્યે બોર્ડિંગો સ્થાપી છે, તેમ વડોદરા રાજ્યમાં વસતી ચારણ કોમ માટે કલોલ જેવા મધ્યરથણે એક બોર્ડિંગ સ્થાપી આપવા શ્રી મેરુ લીલા તેમની વડોદરા રાજ્ય સાથેની લાગવડ અને વડોદરા-નરેસની મહેરબાની.

મદદ આપી વડોદરા રાજ્યમાં વસતી ચારણ જનિને આભારી જનાવશે, એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

અંતમાં શ્રીમંત મહારાજ સાહેબે તેમના રાજ્યારોહણ-પ્રસંગે ચારણ જાતિના ખોટી ખુશામદથી પર એવા એક સંસ્કારમૂર્તિ યુવાન શ્રી મેડલાને માનપૂર્વક નિમંત્રી ને નિવાજેશ કરી છે, તે બદલ સમસ્ત ચારણ જાતિ એઓ નામદારને ધન્યવાદ અર્પે છે.

શુજરાતી-વિભાગ અને તેનું તંત્રીપદ—

અં લાં ચારણ-સંમેલનના રાજકોટ મુકામે મળેલા-વિગત અધિવેશનમાં તેના મુખપત્ર 'ચારણ' ને ત્રૈમાસિક રૂપે પુનર્જીવિત કરવાનો સર્વાનુમતિથી નિર્ણય થતાં ચારણ જાતિના વસવાટના બે મુખ્ય દેશો— રાજપૂતાના-માલવા અને શુજરાત-કાઠિયાવાડને એક-ખીજાની વધુ નજીક લાવવા માટે તેને હિંદી અને શુજરાતી ભાષામાં કાઢવાનું નક્કી થયું હતું. પરંતુ શુજરાતી-વિભાગની જવાબદારી, હિપાડી લેવા માટે તે પ્રસંગે કોઈ તૈયાર ન થવાથી આં હિં. સલાના મંત્રીશ્રી અને ખીજા બે ચાર આગવાનોની આજ્ઞાથી અમે તે કામ કરવાનું કબૂલ કરેલું, અને તદનુસાર તેનો ભાર વહન કરતા આવ્યા છીએ.

પરંતુ અમારે દુઃખ સાથે જણાવવું પડે છે કે, અમે જે જે ઉચ્ચ કેળવણીપ્રાપ્ત બંધુઓ તરફથી જાતીય પ્રશ્નોની વિવિધ દૃષ્ટિબિંદુથી છણાવટ રજૂ કરતી લેખ-સામગ્રી મળવાની આશાએ-અમારી પત્ર ચલાવવાની અયોગ્યતાનો અમને પૂરો ખ્યાલ હોવા છતાં આ જવાબદારી લીધેલી, તેમના તરફથી ખિન્નકુલ સહાય મળી નથી. એ ખાતે અમે વારંવાર કરેલી પ્રાર્થના નિષ્ફળ ગઈ છે. એટલુંજ નહિ પણ રાજકોટ અધિવેશનમાં અમુક સંખ્યા ગ્રાહકો બનાવી દેવાનું વચન આપનાર બંધુઓમાં પણ સાચે જ એક-બે બંધુઓએ એ ખાતે પ્રયાસ કર્યો છે. જાતીય અધિવેશનોમાં નીખાં-તમતમતાં ભાષણો કરનાર એક વયોવૃદ્ધ બંધુએ તો અનિયમિત રીતે પત્ર નીકળે તો તેમણે જનાવેલા ગ્રાહકો તેમને કપકો આપે, તેથી પોતાનું વચન મોકલે રાખવાનું જણાયું, ત્યારે ખીજા એક બંધુએ વચન તો આપ્યું હતું, તેમણે કહેલા પચીસે ગ્રાહકોનું લવાજમ તેમના પર વીં. પીં મોકલે વચૂલ કરવાનું; પરંતુ પ્રથમાંક પ્રસિદ્ધ થવાની તેમને ખંખર આપતાં જે તે બંધુઓ પર વીં. પીં મોકલવાનો આદેશ કર્યો, પછી બંને ને તેઓ પરત વીં. પીં વાળે. અને થયું પણ તેમજ. એટલે કે કોઈ પણ પગને ચિરંજીવી બનાવવા માટે જે બે મુખ્ય બાબતો ગણાય છે, તે લેખ-સામગ્રી અને ગ્રાહક-સંખ્યાના વિષયમાં વર્ષ દરમિયાન નિરાશા જ અનુભવવી પડી છે.

ખીજા જાતિઓને મુકાબલે આપણે કેળવણીમાં ઘણા પાછળ હોવા છતાં જે બૃહદ શુજરાતમાં આપણામાં પાંચ-સાત એન્યુએટ અને પંદર-વીસ મેટ્રિક થયેલા બંધુઓ છે. પરંતુ તેઓ પૈકી એક પણ વ્યક્તિનું નામ આજના શુજરાતી-સાહિત્યમાં જોવા જડતું નથી. જાણે કે પ્રાચીન કાળમાં ચારણ જાતિએ સાહિત્યિક જીવન છતી જાણે હોવાથી એ કાળની ખિન સાહિત્યિક કોમોની આજની ઉચ્ચ શિક્ષાપ્રાપ્ત વ્યક્તિઓને એ ખાતે માર્ગ કરી

श्रीकिशोर-स्मारक-श्रद्धांजलि-ग्रंथ

अ० भा० चा० सम्मेलन के पंचमाधिवेशन (राजकोट) में सवानुमात से स्वीकृत किए गए प्रस्तावानुसार सम्मेलन पत्र राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी ने निश्चय किया है कि, सम्मिलित रूप से चारण जाति के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० सा० श्री किशोरसिंहजी वाईस्पत्य 'पागल' कवि की पुण्य-स्मृति में उनका एक स्मारक-ग्रंथ प्रकाशित किया जावे। उस ग्रंथ में उनके संस्मरण और विविध लेखों तथा कविताओं का संग्रह भी रहे।

इस विषय में उक्त डा० सा० के पुराने-परिचित मित्रों एवं प्रत्यक्ष नहीं परंतु उनके अक्षर-देह से परिचय रखनेवाले साहित्य-प्रेमी महानुभावों से प्रार्थना की जाती है कि, वे उनके संस्मरण एवं उनकी सामाजिक तथा साहित्यिक योग्यता संबंधी आलोचनात्मक लेख-शीघ्र ही निम्नोक्त किसी एक पते पर भेजने की कृपा करें। ता० १-२-३९

भवदीय

शुभकर्ण कविया

मंत्री-अ० भा० चा० सम्मेलन
रायपुर की हवेली, जोधपुर

रघुनाथप्रसाद सिद्धानिया

मंत्री-राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी
७३ ए, चाँसोबाग पाडा स्ट्रीट, कलकत्ता

“चारण” पर लोकमत

अजमेर से प्रकाशित होनेवाला क्षत्रिय जाति का एकमात्र सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्र ‘क्षेत्रधर्म’ अपने दिसंबर १९३८ के अंक में लिखता है—

“चारण-अ० भा० चारण-सम्मेलन का त्रैमासिक मुखपत्र। संपादक-ठाकुर ईश्वरदान आशिया, गुजराती विभाग के संपादक-श्री खेतसिंह नारायणजी मिश्रण। पृष्ठ-संख्या-हिंदी ३४ तथा गुजराती ३०, कुल ६४, कवर रंगीन। वार्षिक मूल्य २)। एक प्रति का मूल्य ॥१)।

चारण जाति सदा से ही क्षत्रियों को अपने उपदेशमय काव्य से ‘क्षेत्रधर्म’ की शिक्षा देती रही है और समय-समय पर कठिन अवसरों पर अपने कर्तव्यों का ज्ञान कराती रही है। उस जाति की ओर से इस प्रकार का पत्र निकलना स्वाभाविक और उसके अनुरूप ही है। आज भी वीरभूमि राजस्थान के अनमोल रत्न देशभक्त ठाकुर केसरीसिंहजी बारहठ (कोटा) इस जाति की शोभा बढ़ा रहे हैं। “चारण” पत्र का बंद हो जाना खटक रहा था। अब विजयादशमी के पुण्य अवसर पर इसका पुनर्जन्म होना वास्तव में शुभ लक्षण है। पत्र जाति के अनुरूप ही है। हम इसकी हृदय से उन्नति चाहते हैं और सफलता की शुभ कामना करते हैं कि क्षत्रिय जाति की इस संकटापन्न अवस्था में ‘चारण’ अपनी सेवाओं से समाज की सहायता कर सके।



ॐ

॥ श्री-जगदीश्वरी विजयते ॥

चारणा

अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन

का

त्रैमासिक मुखपत्र

वर्ष १]

रक्षाबंधन

[अंक ४]

विक्रम सम्वत् १९९६

सम्पादक :

डा. कुर ईश्वरदान आशिया

सहायरी सम्पादक :

भैरव शुभकर्ण कविया, M. A., LL. B.,

मुजरानी विमल सम्पादक :

खेतसिंह नारायणजी मिश्रण

प्रकाशक :

शंकरदान जेठीभाई देया, लीवडी

वार्षिक मूल्य (२)]

[एक अंक पं ॥]

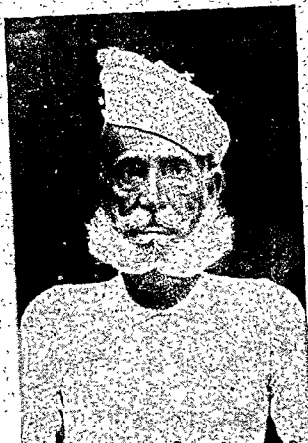


लेख-सूची

सं० विषय	पृष्ठ
चित्र—कविराजा श्री मुरारिदासजी सा० आशिया	...
१ प्रार्थना (कविता)—कवि श्री अक्षयसिंहजी रत्न	...
२ विदा—ठाकुर श्री केशरीसिंहजी सा० सौदा (काटा)	...
३ राजस्थानी कवियों का प्रकृति-प्रेम-भँवर श्री उदयसिंहजी दधियादिवा	...
४ मेयाडी चारण धंधुओं से—एक जातिप्रेमी	...
५ हा! आईदानजी! (कविता)—श्री इंदरीदानजी कविवा	...
६ चारण-वाणी (कविता-संग्रह)—	...
७ चारण जाति की कद्र पहिले क्यों थी!—ठा० श्री हेतुदानजी उज्जल	...
८ काव्य-कुंज—	...
९ चिट्ठी-पत्री—	...
१० सम्पादकीय टिप्पणियाँ—	...

चित्र—साध्वी देवी श्री आंजुभाई देवा	...
१ समय-मोक्ष (कविता): श्री अक्षेसिंह अणेव	...
२ आरण्य-साहित्यभां हुडानु स्थान: श्री जेतसिंह नारणल मिश्रण	...
३ देवाकुण्ड-उज्जल: साध्वी देवी श्री आंजुभाईना लवन-परिचय:	...
श्री पीतांबरदासल वारड	...
४ सेना अने संस्था: श्री जयमलदासल पायड	...
५ आरण्य ना सकार:	...
६ तन्त्री-मोक्ष:	...
७ सभाचार-संग्रह	...

चारण जाति के महान् नररत्न



महामहोपाध्याय कविराजा श्री मुरारिदानजी सा० आशिषा, जोधपुर

जन्म

मृत्यु

वि०सं० १८८९ माघ वदि २

वि०सं० १९७० आषाढ, शुदि ५

विवाह

देश निरोगो महधरा, रूप जसवंत उदार ।

सत्तम चारणे कुल जनम, भाग्य लक्ष्मी मुरार ॥

श्री जीवणलालजी सा० वरराई के वंशवृत्त्य से]

ॐ

श्री जगदीश्वरी विनयते

चारण

अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन

का

त्रैमासिक मुखपत्र

सत्य अभय स्वातंत्र्य उपासक, - सिखा मरण-जीवन का मर्म ।

क्षान्तधर्म-उद्घोषक 'चारण', - रहा सदा साधक युगधर्म ॥

वर्ष १]

रक्षाबंधन

[अंक ४]

विक्रम संम्वत् १९९६

करनी-स्तुति

(स्व० कविराजा श्री बांकीदासजी आश्रिया कृत)

गीत

ऊँडा पाणियां नदियां उत्तरतां; झड़ मंदियां सग-झाटां ।

सगती! कीजै रूहाय सेवगों; बहतां घाटां-चाटां ॥ १ ॥

मेघासां सांझल ठग मळियां; नाहर आयां नेड़ां ।

कुसळ आपरां राखै "करनी;" बैठों सापर बेड़ां ॥ २ ॥

वैरी विपधर सरब निवारै; बळती लाय बुझावै ।

लोबड़ियाळ तणा भुज लांया; आंच न दासां आवै ॥ ३ ॥

डाकण भूत कुवै पग डगतां; कड़की बीज अकासां ।

करतां याद मेहासुत "करनी;" देव ! उबेली दासां ॥ ४ ॥

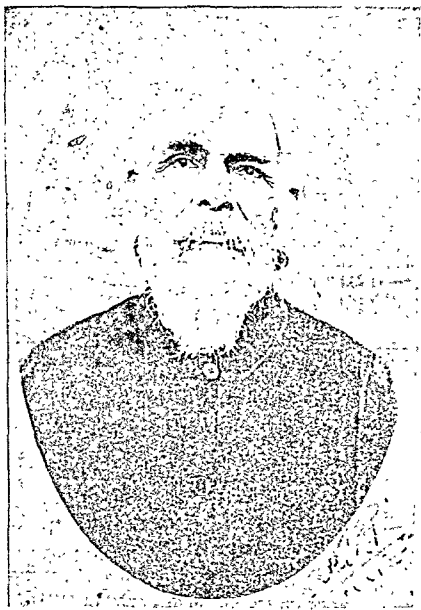
घटांघडी किनियाणी "बांका;" पोप पूजगां पाळै ।

देस-विदेस महीं डाढाळी; राजद्वार रुखाळ ॥ ५ ॥

—राह० सम्पादक

विदा

मुझे बचपन-
ही से अपने पूज्य
पितुःश्री के अति-
रिक्त, उदयपुर के
मुप्रसिद्ध प्रातःस्मर-
णीय स्वनामधन्य
महामहोपाध्याय
कविराजा श्री स्याम-
रदासजी से शिक्षा
और संस्कार प्राप्त
करने का सौभाग्य
मिला। वे महातुभाव
के मुखार
और अभ्युदय की
अपनी तीव्र इच्छा
को अपूर्ण ही संसार
में छोड़ गये। उनकी
उस जानिसेवाभावना
को मैंने अपने ऊपर
ऋण समझा, और
मेरा निज का सहज
कर्मव्य भी यही था;



अतः नम्रसेवक के नाते मैंने अपनी तुच्छ शक्ति
अनुसार जो कुछ बना किया, जिसका प्रारंभ आज
से ४७ वर्ष पूर्व हुआ था। फिर भी दुःख है कि
मैं अपने संतोष-योग्य परिणाम पर न पहुँच सका।
कारण ? कारणों को कहाँ तक गिनाऊँ ! राजसेवा,

विद्यालसेवाक्षेत्र की ओर संलग्नता और आहुति,
अभावमय विपन्नजीवन, जो समय मिल उधमें
भी "कुन्हाड़ा भेड़ा और धो चौकण" अर्थात्
मेरी शक्ति की अपेक्षा छेय कुसंस्कारों के आचरण
की मोटी और कठोर सतह आदि आदि।

अब शारीरिक अस्वास्थ्य एवं वृद्धावस्था-जन्य स्वाभाविक विरसुति का संचार और उपराम-भाव मुझे इस जातीय सेवाक्षेत्र से विरति-विश्राम पाने की प्रेरणा दे रहा था और इसके लिये मैं दो तीन वर्षों से सचेष्ट था।

अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन के गत राजकोट-अधिवेशन में मैंने अपने से अधिक साक्षर एवं नवशक्तिसम्पन्न, देशकलत्रप्रेमी स्वजातीय नवयुवक स्त्रियों पर स्वाति-सेवा का भार सौंपकर अपने आप को हलका किया। मेरे न चाहते हुए भी सम्मेलन ने फिर एक वर्ष के लिये मुझे अपने प्रथमाध्यक्ष के पद पर बैठा दिया और मैंने भी उस विशेष आग्रह के सामने तिर झुककर नानमात्र का संबंध स्वीकार किया। वह समय भी समाप्त हो चुका।

अब सम्मेलन का व्यावहारिक भार उपप्रधानाध्यक्ष श्री हेतुदानजी साहव उज्ज्वल, एम० ए०, एल० एल० बी० (मराठा) के सुयोग्य हाथों में सौंपकर सर्वतोभाव से अपने आरको निरुत्त

करता हूँ। अब मे जिस किस्ती को सम्मेलन संबंधी लिखावटी करना हो वे हेतुदानजी सा० सौजठ (मराठा) के पते से करें।

मैं इस अंतिम चिन्ता के साथ ही उस का स्वजातीय सज्जनों एवं संस्कार सा० हंगरिसिंह जैसे राजपूत महानुभावों का हृदय से आभोग्य मानता हूँ, जिनके उत्साहपूर्ण सहयोग से जातीय अनुपमस्वरूप अ० भा० चारण-सम्मेलन का प्रारंभ और परिचालन होता रहा। विशेषकर अ० सा० देशरदाजी आसिया (मराठा) का आभारी हूँ जिन्होंने सम्मेलन के प्रारंभ से गत वर्ष तक सम्मेलन के प्रधानमंत्री-पद पर अत्यंत और सतत जाग्रत परिश्रम करके एवं निजी स्वार्थ-हानिय उठाते हुए भी मुझे अनुपम सक्रिय सहयोग दिया है और जिनकी जातीय सेवा आदर्शरूप है आज भी "चारण" के सुचारु संप्रदान के प्रत्यक्ष हैं।

मनुष्य के काम सर्वथा निर्दिष्ट नहीं होते अतः कुछ भी भुटियां रही हों, उनके लिये नमस्तेवक के नाते, क्षमायाचना मेरा स्वाभाविक धर्म है।

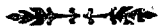
माणिक-भवन, कोटा
आगस्ट शुक्र ४ संवत् १९१६

स्वजाति का विनीत अकिंचन सेवक
केसरसिंह

(पृष्ठ ८ का जोप)

अत्युक्ति न होगी। लेख समाप्त करने के पहिले हम यह आशा प्रकट करते हैं कि यदि पाठकों का उत्साहपूर्ण सहयोग रहा हो राजस्थान-रिमर्च-सोसायटी-कलकत्ता एवं अखिल भारतवर्षीय चारण-सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन पर डिग्रेड-साहित्य की अप्रकाशित पुस्तकों की खोजकर प्रकाशित करने के अर्थ स्थापित कमेटी के सदस्यों के परिश्रम से राजस्थान के चारण एवं चारणेश्वर कवियों के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ, साहित्यप्रेमियों के सम्मुख उपस्थित होकर उन्हें प्रकृति-चित्रण आदि का रसास्वादन करावेंगे और उन प्रकृति-उपासक कवियों के प्रकृति अर्पित मुमूर्ति हुए भद्रा के पुष्प भी एक बार फिर से खिल उठेंगे और सारे संसार में अपनी सुगन्ध फैलावेंगे।

राजस्थानी कवियों का प्रकृति-प्रेम



(ले०-भैवर श्री उदयसिंहजी दधिवाड़िया, एम० ए०, पल्-पल् वी०
(द्वितीय वर्ष), हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी)

कवि स्वभाव से ही प्रकृति का उपासक होता है। एक साधारण मनुष्य तो प्रकृति में केवल मूकभावना का आभास मात्र पाता है, परन्तु कवि को प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में सजीवता दृष्टि-गोचर होती है। क्या वृक्ष के नीरव अवयवों में, क्या समुद्र की शांत लहरों में, क्या पत्तों की मर्मरध्वनि में, क्या मेघों की गंभीर गंजना में, क्या कुमुद की कौमुदी में और क्या वायु-कम्पित वनों में—इनमें ही कवि सदैव सजीवता की अनुभूति और प्रकृति के गूढ़ रहस्यों की उपलब्धि करता रहता है। पृथ्वी, पहाड़, नदी, पेड़, समुद्र, आकाश, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि समस्त प्राकृतिक वस्तुओं तक कवि की पहुँच है। उसकी अनुभूति प्रकृति के सब पदार्थों में परिष्कृत रूप में रहती है। उसे लता-पादपों की आन्तरिक वेदना तक का वास्तविक ज्ञान रहता है।

संसार के साहित्यिक इतिहास के पन्ने उलटने से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि प्रत्येक साहित्य में समय-समय पर ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने प्रकृति-चित्रण में अपनी अतुलनीय कुशलता प्रदर्शित की है। उदाहरणार्थ अंगरेजी साहित्य को ही लीजिये—वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शैली आदि प्रकृति-उपासक कवियों का नाम प्रत्येक अंगरेजी-साहित्यप्रेमी जानता है। संस्कृत में भी कालिदास, वाण इत्यादि का नाम किसी भी संस्कृत-ज्ञाता से छिपा नहीं है। हिन्दी के प्राचीन कवियों में जायसी, सूर तुलसी आदि कितने ही कवि हो गये हैं, जिन्होंने प्रकृति-वर्णन में ख्याति प्राप्त की है; और वर्तमान कवियों का तो कहना ही क्या—कविताक्षेत्र में पैर रखते ही उन्हें प्रकृतिदेवी की शरण में जाना ही पड़ता है। उर्दू के शायरों की प्रकृतिविषयक कविता तो हम रतदिन उर्दू भाषा-भाषियों के मुख से सुनते ही रहते हैं—

“इस शान से इठलाते हैं ये जवानाने चमन;

लेती है शवा गोद में तो जाते हैं मचल ॥”

यही हाल राजस्थानी साहित्य का भी है। प्राचीन चारण एवं चारणेश्वर कवियों ने प्रकृति-चित्रणकला में कुछ उद्यम नहीं रखा है।

चारण जाति के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में चारण लोग सुमेरु, हिन्दूकुश आदि पर्वतों की पार्वत्यभूमि पर निवास करते थे और आज तक भी प्रकृति-देवी के कब्रिस्तान प्रांतों में ही निवास करते आये हैं। अतः जो जाति प्रारंभकाल से ही प्रकृतिदेवी की गोदी में पलती आई है। उसके साधारण से साधारण पक्ष में भी प्राकृतिक

वस्तुओं के प्रति अपनी कवित्वशक्ति द्वारा श्रद्धा के दो-चार फूल अर्पण करने की शक्ति पा जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। फिर ऐसी परिस्थितियों में पले हुए चारण कवियों का तो कहना क्या? यह बात प्रायः देखने में आती है-कि जहाँ कवि अपनी अनुभवशक्ति से काम लेता वहाँ कल्पनाशक्ति से कार्य करनेवाले कवि को पीछे ही स्थान मिलता है; चाहे वह अविषयों में पहिले कवि से कितना ही गुरतर हो। अतः यदि हम यह कहने का साहस करें प्रकृतिदेवी के आश्रित चारण-कवि, हिन्दी तथा अन्य साहित्यों के कवियों की अपेक्षा कुछ अ में प्रकृति-चित्रण करने में अधिक सफल हुए हैं तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

यों तो चारण जाति में छेदे-बड़े अनेक कविरत्न उत्पन्न हुए हैं; जिन्होंने किसी-न-किसी प्रकार से-किसी ने अपने ग्रन्थों के किसी कोने में स्थान देकर और किसी ने चलते ही कोई तुमझुकर छेदे-से छेदे या सोरठे के रूप में अपनी श्रद्धांजली प्रकृतिदेवी के अर्पण की—जिनका यदि संग्रह किया जाय तो एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो सकता है। किन्तु प्रस्तुत लेख स्थानाभाव के कारण पाठकों के परिचय मात्र के लिये चारण एवं चारणतर कवियों प्रकृति-चित्रण के कुछ उदाहरणों को रखना ही पर्याप्त होगा—

सर्व प्रथम प्रकृति-चित्रण में वही कवि सफल समझा जाता है जो अपनी अनुभवशक्ति द्वारा मनुष्य के हृदय में उत्पन्न भावों का प्रकृति में उत्पन्न भावों के साथ सामन्व्यस्य दिखता है। इसमें प्रकृति का रसन एवं हास्य मनुष्य-हृदय के रसन और हास्य के साथ दिखाना जा है। यह बात राजस्थानी कवियों की कविता में खूब भरी पड़ी है। ये यह दिखाने में सफल हुए हैं कि किम प्रकार एक ही तरह की प्राकृतिक वस्तुएं, संयोगिनी को तो आनन्ददायक और विरहिणी को दुःखद प्रतीत होती हैं।

उदाहरणार्थ—वसंतऋतु के शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन के विषय में एक वियोगिनी और संयोगिनी में परस्पर वाद-विवाद हो रहा है कि—

गुण-गन्ध-प्रदित गिलि गरल उगलित, पवनवाद् ए उभय पल।

स्त्रीखंड सल संयोग संयोगिनि, मणि विरहणि भुयंग भल ॥

वियोगिनी तो कह रही है कि “यह पवन सर्प का भक्ष्य है अर्थात् सर्प-द्वारा निगल जाकर उगला हुआ विष है लेकिन संयोगिनी कहती है कि वह चन्दन वृक्षोंवाले पर्वत (मलयाचल) के संयोग से उसके गुणों को (शीतलता और गन्ध को) ग्रहण किये हुए है।

इसी प्रकार संयोगिनी तीज के त्यौहार पर अपने रसिक प्रेमी से कहती है कि—

भोर शिखर ऊँचा भिळे, नाचे हुआ निहाल।

पिक ठहकै शरणा पदै, हरिये इंगर हाल ॥

घनघोरां जोरां घटा, लोरां-वरपत लाय ।
 बीज न माये, बादळां, रसिया तीज रमाय ॥
 इन्द्र धनुस तणियो अजव, चातक धुन मन चाय ।
 बीज न माये बादळां, रसिया तीज रमाय ॥

दूसरी ओर वियोगिनी के हृदयोद्गार पर भी दृष्टिपात कीजिये —

बड़कत तड़कत बीजली, धड़कत तड़कत गाज ।
 कोप करे आवै घटा, आ-कुण ऊपर आज ॥
 गाज नगारो, स्वमक खग, वरसत बाणें तड़ाक ।
 घटा नहीं आ काम की, आवै फोज लडाक ॥
 मोर सौर कर कर मसत, तरघर बैठया जाय ।
 घण वूटै छूटै घटा, मो तन ऊठै हाय ॥
 तरत भरत छकत सरत, दादर मरत दुरंत ।
 प्रीतम घर नहिं पेखतां, घैरण बणी वसंत ॥

हिन्दी के प्राचीन कवियों में जायसी ने अपने प्रसिद्ध प्रबंधकाव्य “ पद्मावत ” के हृदयोद्गार भी इसी प्रकार से अंकित किये हैं तथा तुलसी ने भी सीता का विरह सुख अंश में इसी प्रकार का दिखाया है ।

द्वितीय प्रकार का प्रकृति-चित्रण वह है जिसमें प्रकृति आलंकारिक रूप में हमारे सामने आती है । इसमें प्रकृति के प्रति कवि का अनुराग प्रगट हो जाता है । इसके भी अनेकों उदाहरण पाये जाते हैं—

तरलता पल्लवित तृणे अंकुरित, नीलाणी नीलम्बर न्याई ।
 प्रथमी नदि में हार पहरिया, पहिरे दादुर नूपुर पाई ॥

लताएं और वृक्ष अब पल्लवित हो गये हैं, तृणों से अंकुर निकलने लग गये हैं, पृथ्वी, हरी साड़ी पहनी हुई —नायिक की भांति हरीभरी हो गई है । उसने नदी रूपी हार पहिन लिया है और पैरों में दादुर रूपी नूपुर पहिने हैं ।

हुवइ घटि नदी हेम हेमाळे, विमल शृंग लगा बधण ।
 जौयनागम कट कूस यावै जिम, यावै धूल नितंब थण ॥

नदियां घटने लगीं और हिमालय पर्वत पर बर्फ के गूंग घटने लगे जिस प्रकार कि रंग के आने पर किसी नायिका की कमर फनने तथा उरोज और निरुप स्थूल हो गये हों।

घनवन घरोघर तरवर सरवर, पुरुष नारि नासकपय ।

घसंत जनम री देण बधाई, रमे पास चढ़ि पवन रथ ॥

घसन्त के जन्म होने की बधाई देने के लिये मुग्ध रूपी बधाईदार पवन के रथ पर चढ़ घन-वन में, नगह-नगर में, घर-घर में, तर-तर में, सरोवर-सरोवर में और समस्त नर-नारिये नासिकपय में विचरण कर रहा है।

जति अम्य भीर तोरण अजु अजुज, कैली सुमंगल कळस कर ।

धधरमाळ बंधाणी चल्ली, तरवर पक बिये तर ॥

धनी अस्त्रमंजरी तो मानो तोरण हैं और जो कपल की कलियां हैं वे हों मानो मं कटका हैं और एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर लिपटी हुई लताएं मानो बंदनवार बांधी गई हैं।

आयो इळ घसंत बंधावण आई, पोयण-पत्र जळ पण पर ।

आणेंद बणे काच मे अंगण, मामण मोत्यां घाळ भर ॥

पृथ्वी पर वसंत आया है। नलिनी के पत्र पर जलकण इस प्रकार सुशोभित हो हैं जैसे काच के बने आंगन में आनंदित सुंदरियां मोतियों से थाल भर बधाने आई हों।

सबळ जळ सुभिन्न सुगंध भेट सजि, डिगमिग पांथ बाय क्रोध डर ।

हल्यौ मलयाचळ हंत हिमालय, कामदूत हर प्रसन्न कर ॥

जल से भीगा होकर सबल हुआ, रुद के डर से डगमगाते हुए पैरों बाला, मुग्ध भेंट सजाकर महादेव को प्रसन्न करने के लिये कामदेव का दूत शीतल-मंद-सुगंध बायु मलया से हिमालय की ओर चला।

तीसरे प्रकार का प्रकृति-वर्णन यह है जहां प्रकृति धार्मिक रूप में हमारे सामने आती इसमें प्रकृति द्वारा उपदेश देनेवाली वस्तुओं का सहारा लिया जाता है। महाकवि नरहरदा चारहठ ने अपने प्रसिद्ध काव्य “ अवतार चरित्र ” में जहां जहां आश्रमों का वर्णन किया वहां इसी प्रकार का प्रकृति-चित्रण मुख्य है। जैसे—

विविध सिंह मृग व्याहरत, घसत विचित्र विहंग ।
मत्त पुंज गुंजत मधुप, जहँ निशरनि तरंग ॥
तरुन प्रफुल्लित फलित तरु, पत्र हरित नित पाइ ।
सीतल मंद सुगंध सुख, सेवत वात सुभाइ ॥

अंतिम प्रकार से प्रकृति का चित्रण उस प्रकार से किया जाता है जहाँ प्रकृति चित्रपट के रूप में हमारे सामने रखी जाती है। इसके उदाहरण भी “अवतार-चरित्र” के कृष्णवतार अध्याय में बहुत मिलते हैं। जैसे—

फूले सरनि सरोरुह सोहत, मिलि मधुमत्त मधुप मन मोहत ।
अति सुख भास विहंगम अन अन, तांडव मत्त मयूर चित्रतन ।

सू० कविवर फतहकरणजी उज्ज्वल मेवाड़-निवासी रचित “पत्र-प्रभाकर” में कि जिसमें मेवाड़ आदि का वर्णन किया गया है, इसी प्रकार का प्रकृति-वर्णन विशेषतः मिलता है।

फुटकर कविताएँ भी अनेकों ऐसी मिलती हैं जिनमें प्राकृतिक दृश्यों के मनोमुग्धकारी एवं सजीव चित्र बड़ी सुन्दरता से अंकित हैं—जिनमें से एक-एक दोहा प्रत्येक चारण-साहित्य-प्रेमी की जिह्वा पर आज भी विद्यमान है। उदाहरणार्थ—

लूबां झड़ नदियां लहर, बकपंगत भर बाय ।
मोरां सौर ममेलिया, सावण लायो साथ ॥
कोयल करै टहकड़ा, पपिया करै पुकार ।
घन धुर • अंबर धुँमडियो, धर झर मेहां धार ॥
वागां बागां बावडियां, फुलवादां चहूँ फेर ।
कोयल करै टहकड़ा, अइ हो धर आमेर ॥
काळा बादल वरसिया, मोर हुआ महमत ।
सहरां सहरां संचरी, वादू वाद खिबंत ॥

अंत में हम निःसंकोच कह सकते हैं कि राजस्थानी कवि भी प्रकृति-चित्रणकला में अन्य कवियों से किसी अंश में कम नहीं रहे हैं। हिन्दी के अन्य कवियों ने तो कई स्थानों पर प्रकृति-चित्रण करते समय अनेक भूलें भी की हैं। जैसे, किसी ने कहीं तो केवल वृक्षों के नाम गिना दिये हैं, किसी ने केवल बाघ पक्ष को ही अपनाया है और जहाँ आंतरिक पक्ष चित्रण करने का अवसर आया भी है वहाँ उसे ठकरा दिया है। उन्होंने सब प्रकार के प्रकृति-चित्रण की ओर ध्यान दिया है और जैसा अवसर हाथ लगा उसे कमी नहीं जाने दिया। अतः यदि हम राजस्थानी कवियों के ग्रन्थों को प्रकृति-चित्रणकला का अमूल्य भंडार मानें तो कोई

कसी ने क्या कुछ किया है ? क्या फिर एक
भी दफा उसी तरह या व्यक्तिगत रूप से जा
कर याददिल्ली के लिये फिर किसी ने आपका
दुखड़ा रोया है ? किन्तु और कोई क्यों रोवे ?
जिनके गांव ज्वल हो गये हैं या जिनके गांवों
के लिये कार्रवाई शुरू है उन लोगों को भी
इस तरह कोशिश करने की नहीं सूझती कि जिससे
उनका लाभ हो जाय—उन पर हमलावाला जुल्म
मिट जाय, तो फिर और किमको दाय्य दिया
जाय ? क्या लोग आपको डराते हैं कि इस
तरह कोशिश करने से राज्य खफा हो जायगा ?
प्रथम तो राज्य इस तरह से कभी खफा नहीं
हुआ करता क्योंकि वह जानता है कि दुखी-
दरि और किसके पास जावें। और कदाचित्
स्वयं या अहंकारवश राज्य आपकी इस प्रकार
की शांत और उचित कार्यवाही से भी नाराज
होता है तो ऐसे राज्य से आपको फिर क्या आशा
हो सकती है जिसके कारण आप डरें। नाराज होने
से जिस भय की आपका आशंका हो सकती है
वह तो आपके घिर पर छा ही रहा है।

किन्तु इनने गहरे उत्तर ही क्यों जाय ?
वे सब भयों तो तब सोचने की थीं जब मेवाड़
पर कोई निर्दय जुल्मी राजा राज्य करता होता।
आपके हमारे सौभाग्य से मेवाड़ के सिंहासन
पर जो विराजमान हैं उनकी सरलहृदयता सर्व-
श्रुत है और सुना है उनके पवित्र हृदय में है
दया का स्रोत। वे नहीं चाहते कि किसी पर
जुल्म हो। ऐसे दयालु मालिक को पाकर भी
आप दुख भोगते हो तो इनका दाय्य किस के है ?
आपकी जीविकाये जावें और आप इतना भी न
कर सकें कि सब अपने मालिक की सेवा में

फिर आपके लिये कोई अच्छी उम्मीद नहीं
हो सकती।

जमीन के उपयोग और रक्षा के लिये, याद
है, स्व० महाकवि यदुन सूर्यमल्लजी मिश्रण
क्या कह गये हैं—

घोड़ा घर ढाला पटल,

भाला थंभ बनाय।

जे ठाकर भोगे जमी,

और कितो अपनाय ॥

भाले के थंभों और ढालों की छत से
घोड़ों पर ही घर बनाकर जो शूरवीर पृथ्वी का
उपभोग करते हैं उनसे उनकी जमीन कौन
ले सकता है ?

पहल मिळे धण पूछियौ,

किण कीधा किण हत्य।

बीजड़ साहे बोलियौ,

इण डाकण भू अत्य ॥

प्रथम मिलन में पत्नी ने अपने हृदयेश से
पूछा कि हाथ में ये आँटण (खुरदरापन)
किस कारण से है ? पति ने तलवार उठाकर
कहा कि भूमि के लिये इस डाकिनी ने ये
आँटण किये हैं।

खाली कुछ री खावणा,

नेपे घर घर नींद।

रसा कँवारी रावतां !

वरती को ही बींद ॥

हे कुलपार्जित भूमि के खोनेवाले ! तुम्हारे
यहाँ तो आजकल घर-र आउस्य और प्रमाद
ही तरकी पर है। बहादुरो ! यह रसा तो तुम्हा-
रिखा है जिसके तल्ले नैनकर उपभोग तो

परन्तु बन्धुओ! आपको तो इस समय इस तरह घोटों पर घर करने की भी तो जरूरत नहीं है और न अपना यह तरीका ही है और नहीं है जरूरत अपने परम्परागत शस्त्र "धरणे" को काम में लाने की। आपको तो अभी इतनी-सी जरूरत है कि जैसे सन्तान अपने मातापिता से अपनी इच्छापूर्ति के लिये अड़ जाता है वैसे ही अपने मातापिता-स्वरूप। दयालु स्वामी की सेवा में पहुँचकर अड़ जाओ और तब तक "आड़ा" करते रहो जब तक आपका दुःख दूर न हो। मुझे तो आता है इस तरह आपकी प्रथम प्रार्थना से ही आपकी दयनीय दशा पर आपके महान् स्वामी का हृदय द्रवित हो जायगा और आपका सब संकट दूर हो जायगा। आप लोग किसी के मुलावे में मत आओ और न किसी के डरावे डरो। भूपाल-सिंहजी जैसे स्वामी सब समय कहां मिलते हैं! सब मिलकर उनकी शरण में जाओ तो सही, वे आपके अवश्य अभयदान देकर अपने "शरणार्थी ताबार" चिह्न की रक्षा करेंगे।

इतना तो जाति के छोटे-बड़े सबसे निवेदन। अब दो शब्द उनसे जो मेवाड़ी चारण जाति में संपूत माने जाते हैं और कुछ हैसियतवाले और समझदार समझे जाते हैं। इनमें मुख्यतया कविराजा सा०, चारहटजी सा० प्रभृति उदयपुर की हवेलियेवाले और इनमें भी दधियादिया बंधुद्वय य० करनीदानजी, खेमराजजी; य० नाथसिंहजी महियारिया और बाहिर गाँवों के य० पेसरीसिंहजी चारहट, सैन्याणा; य० किवान-सिंहजी आशिचा, मंगटिया; य० चंड़ीदानजी कविया, दाया; य० वंशतावरसिंहजी गडग, भीमखंड; य० शूलीराजजी आशिचा; पर्वद; य०

सुमाणसिंहजी चारहट, चरवाड़ा; य० कावूसिंहजी जसकर्णजी खडिया, जैतपुर; य० सिंढायच, मंडा; य० रामलालजी सौदा, १५० और ऐसे ही दूसरे सब सज्जन जो इनकी में आते हों उनसे निवेदन है कि आप लोगों सारी उम्र अपने घर के लिये परिश्रम करने बिताई। कभी कुछ जातिहित का कार्य भी होगा तो धन्यवाद। परन्तु आप जानते हैं गहां कहावत है— "जीव जाज्यो पण जीवाई जाज्यो।" आज जाति की वह "जीवाई" जीविका जा रही है। आप जैसे संपूतों के हुए उसके लिये कुछ भी उपाय नहीं हो है इसको क्या आपको खज्जा नहीं है? आपको नहीं मालूम कि हुंगरपुर-बांसवाड़े चारणों पर जब ऐसी ही आपत्ति आई थी स्व० महामहोपाध्याय कविराजा मुरारिदानजी सा० आशिचा (जोषपुर) आदि ने उनसे हो उतनी मदद की थी और उनके उस उपयोग में यहां से भी करीब चार सहस्र रुपये उन्हें गये थे। जिनके हृदय में जाति के दुःख वर्द होता है वे इस प्रकार दूसरे राज्य के के पास जाकर भी कोशिश करते हैं और राज्य के चारणों से बंदा भी लाते हैं। आज न तो वे कविराजा हैं और न साहसी साधी—य० शंकरदानजी आद्या व मुरारिदानजी चारहट। आज काम आपसे है आपको तो उनके समान किसी दूसरे राज्य चारणों के लिये किसी दूसरे राजा से कुछ न कहना है। आपको तो अपने लिये, अपने मालिक से अपनी कटकथा निवेदन कर देना है क्या आप लोगों से यह भी नहीं होता? आप लोग भी किसी कल्पना से भयभीत हो हो? आश्चर्य!! या इतने स्वाधीन हो रहे

ह अपने २ घरों का कुछ काम कुछ दिनों या हीनों के लिये बिगड़ने के खयाल से जाति भर की मेवाली महान् क्षति को आप देख ही नहीं सकते? हा दैव ! !

महरवानो ! जरा सोचो । आप लोगों के मलकर धोड़ा उद्योग करने से जाति का भला जाने की संभावना है । अतः कालनिक डर न दूरकर और कुछ समय के लिये गृहकार्य न नुकसान वर्दाश्त कर आप मुखिया लोग ही मेवाड़-चारण-सभा के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं, आगे आओ और मिलकर श्री मालिकों की सेवा में अपनी दुःखगाथा पहुँचाओ । समय, अवसर निकल जाने पर केवल पश्चात्ताप ही शेष रह जायगा और आप लोगों के शिर पर जाति के इन संघटकात्त में भी त्वार्थ या प्रमादवश कुल भी

उद्योग न करने का, क्षमा करें, अमिट कलंक का टीका लग जायगा । अतः दीर्घसूत्रता में कालक्षेप मत कीजिये और जगदम्बा का नाम लेकर आगे बढ़िये ।

अन्त में, मैं, उदयपुर-निवासी सजातीय तीनों मारवाड़ी महामुभाव-उज्ज्वल बन्धुद्वय ठा० विजय-कर्णजी, शुभकर्णजी एवं ठा० जसकर्णजी रत्नू से सविनय प्रार्थना करता हूँ कि वे भी-उनसे हो सके उतना इस कार्य में तन-मन से सहयोग देने की कृपा करें । यह काम किसी एक का नहीं है । जिस किसी को जाति से कुछ भी प्रेम है वह इस सत्कार्य में सहयोग देकर यश एवं पुण्य का भागी हो सकता है । जय जगदम्ब ! मेवाड़ेश्वर की जय !

विनीत

आप में से ही-बक

हा ! आईदानजी !!

(रचयिता-श्री बदरीदानजी कविया (वासनी), वकील, चीफ़कॉर्ट, जोधपुर)
देहा

हा ! अनरय मोटो हुआ, जिको सद्यो नह जाय ।
क्यूँ 'आदल' ने कोसियो, हाय ! विधाता हाय ! ! ॥ १ ॥
कमल-फूल कुमलाय गे, खिलते ही पड़ली खास ।
'आदल' रे मरणो सुणे, हुय गा सरब हतास ॥ २ ॥
जैता री गत जायने, होय रुद्धा हैरान ।
क्यूँ ये बदलो काहियो, दिन इण आईदान ! ! ॥ ३ ॥
हुआ कुटुंबी हँ 'हमे', साराइ मृतक समान ।
मरने क्यूँ दीधो महा, दुःख ओ आईदान ! ! ॥ ४ ॥
जातिहितैपी हो जबर, हिमसंवर हुसियार ।
ब्रन चारण किम बीसरे, (येने) दिन-निस आईदान ! ! ॥ ५ ॥
इसी मौत नह च्ही अठे, इण वरसां मे और ।
बबराया सुणने घणा, जिण रे च्ही की जोर ! ! ॥ ६ ॥

चारण-वाणी

(१) हरिभक्त ओपाजी आढा के गीत

(गताङ्क से आगे)

९

क्यूं पड़पंच करै नर कूड़ा, बिलकुल दिल में धार विवेक ।
दाता जो बाघी लिख दीनो, आधो लिखणहार नहिं पक ॥ १ ॥
पर आता तज रे तज प्राणी, परमेस्वर भज रे भरपूर ।
सुख लिखियौ दुख नाँह सांपजे, दुख लिखियौ सुख होसी दूर ॥ २ ॥
काला जीव लेभ रै कारण, खाली मती जमारौ खोय ।
करता जो लिखिया कूंकू रा, काजळ तणा करै नहँ कोय ॥ ३ ॥
भज रे तरणतारण ने विषया ! वृजां री काजी मत देख ।
कौड़ प्रकार सँ नहँ किण सु, लिखिया जिके विधाता लेख ॥ ४ ॥

१०

नहचळ अत रहण कता ना रे ना, आगम कालनदी आ रे आ ।
खाट-म दाट कही क खा रे खा, गिर-जळ जिम दिहड़ा गा रे गा ॥ १ ॥
भरै खजाना धरती भेदे, चोर-कटक लेसी घर छेदे ।
बांट बांट कहियो इम वेदे, दीह भजाणा ताळी दे दे ॥ २ ॥
लोभी ! मनख जमारौ लाधौ, बे नजर्यां पाटौ किम बाधौ ।
ऊमर तणो भरोसो आधौ, खोळा री धन खाधौ खाधौ ॥ ३ ॥
बिसन समर लौ मीठी बाणी, बाघर लौ धन देह चिराणी ।
“ ओपा ” या ऊमर यूं जाणी, परबत हुंत चिहूटा घाणी ॥ ४ ॥

११

माटो री ठाम जात तिण माँहे, घण तिय फेरै घणै घरै ।
घुड़लौं कितीक बार घूमसो, फोड़णहारा लार फेरै ॥ १ ॥

गोरी मले भीत सह गावै, जतन रखावै जुवा जुवा ।
 केरू हवै किता घर फिरसी, हेरू लोचपलोच हुवा ॥ २ ॥
 अत जतने माथे ऊपाड़े, रंभा दोळी थकी रहै ।
 आस किछु राखीजै ईं री; वैरी छोरा पास बहै ॥ ३ ॥
 रतन तणी विध अतन राखतां, खड़ग तणौ घा खमियौ ।
 पौहर तणी हतो पामणौ, गावतझांइ ज गमियौ ॥ ४ ॥
 मटियौ तेज जेत मुरझाणी, पड़ियो कुंभ पियारौ ।
 अध खण मांहे हुचौ अचीतो, अजवाळै अँधियारौ ॥ ५ ॥
 यो घट धुड़लौ जाण "ओपला!" गोविंद काय न गावै ।
 खळ जमराण कोटियै खांडै, आतुर कीधा आवै ॥ ६ ॥
 मोटे प्रसण डांग लै मोटी, काळ घणा नर कूटै ।
 काचो कुंभ मनख री काया, फिरतां इ गिरतां फूटै ॥ ७ ॥



(२) महाकवि डा० सूर्यमल्लजी मिश्रण (बूंदी) रचित

वीरसतसई

(अपूर्ण)

(गताङ्क से आगे)

याळ बज्जतां हे सखी, दीठौ नैन फुलाय ।

बाजां रै सिर चेतणौ, भूणां कवण सिखाय ॥ ५१ ॥

नवजात शिशु की ओर संकेत करके माता अपनी सखि से कहती है कि प्रसूतिकाल के समय बजते हुए याळ के हसने आंखें फाड़-रकर देखा था । सखि ! बाजा सुनते ही उत्तेजित हो जाना इन बच्चों को गर्भ में ही-न जाने कौन सिखा देता है ?

धण आखै जागो धणी, हुंकळ कळळ हजार ।

विण नूँता रा पाहुणा, मिळण बुलावै चार ॥ ५२ ॥

पति कहती है कि पतिव्रत ! जागिये । हजारों लोगों का घोर शत्रुत्व हो रहा है और

देख सखी होली रमे, फौजां में धव एक।

सागर मंदर सारखी, होतै अनङ्ग अनेक ॥ ५३ ॥

सखि ! देख, शत्रुसेना में एकान्ति मेरे पति कैसी होली खेल रहे हैं। ऐसा मालूम हो रहा है, अनेक अनङ्गों को वे, समुद्र में मंदराचल के समान, विलोदित कर रहे हैं।

देख सहेली मो धणी, अजकै बाग उठाय।

मदप्यालां जिम एकलौ, फौजां पीयत जाय ॥ ५४ ॥

हे सखी ! देख, मेरे उदित पति घोड़े को बाग उठकर बकेले ही शत्रुसेनाओं का ऐसे शापण कर रहे हैं जैसे कोई मदपी मद्य के प्याले खाली करता जा रहा है।

पग पाछा छाती धड़क, फाळी पीळो दीह।

नेण मिचै साम्हौ सुणे, कथण हकालै सीह ॥ ५५ ॥

जिस सिंह की सामने मुनने से ही दिन लाल-शीला नज़र आने लगता है, आँखें मिच जाती हैं, छाती धड़कने लगती और पैर पीछे पड़ते हैं, उसे लटकारने का साहस तो भला कौन कर सकता है ?

धुर खती मरियो धपळ, सकट हचक्का खायी।

तिण रौ बाळो बाछडो, तंडै खंध लगाय ॥ ५६ ॥

बलवान् बेल के मर जाने से गाड़ी हचके खा रही है और उसकी धुरी जमीन पर पड़ गई। परन्तु धन्यवाद है प्रभु का कि उस बलवान् का वस्त्र धुरी के फंदा लगाकर बेध करने लग गया है।

तुंडां गज फेटां तुरी, दाढां भड औझाड।

एकण कोले घुंविया, फौजां पाथर पाड ॥ ५७ ॥

शूर शूकर ने फौजों में अकेले ही अपनी तुंड से हाथियों के, फेटों से घोड़ों के और दाढ़ों की मार से बहादुरों के बिछौने-से कर दिये और उन्हें रौंद डाला।

यंधी अंदर पांढियो, फाळो दवक काय।

पूंगी ऊपर पाधरौ, आवै भोग उठाय ॥ ५८ ॥

विल के अन्दर सोया हुआ फाला सांप पूंगी की आवाज़ सुनकर भी क्या दबका हुआ रहे सकता है ! वह तो फन उठकर सीधा उस पर आता

अजकौ गहली रौ कलस, बळती रौ नाळेर ।

एकल पृगौ टेकलौ, आस किखं धय केर ॥ ५९ ॥

वह चपल, वह हठी, वह पगली के कलश, वह सती के नारियल—मेरे पति अकेले ही स्थल में जा पहुँचे हैं; अब उनके जीवन की आशा ही क्या हो सकती है ।

घोड़ां घर भालां पटळ, भालां थंभ बणाय ।

जे ठाकुर भोगै जमी, और किस्तो अपणाय ॥ ६० ॥

जो भूपति ढालों की छत और भालों के खंभों से घोड़ों पर ही घर बनाकर पृथ्वी का भोग करते हैं उनसे उसे कोई दूसरा कैसे ले सकता है ?

नायण आज न मांड पग, काल सुणीजै जंग ।

धारां लागीजै धणी, तौ दीजै घण रंग ॥ ६१ ॥

नाइन ! आज तू मेरे पैरों को मुँहसी से चित्रित न कर । कल युद्ध सुना जाता है, उस-यदि पतिदेव धारातीर्थ नहायें तो फिर इन्हें तू खूब ही रँगना ।

बाभी देवर, नींदयस, बोलीजै न उताळ ।

चगतां घावां चौकसी, जे सुणसी बंवाळ ॥ ६२ ॥

युद्ध में जख्मी हुए पति की शुश्रूषा में लगी हुई वीरपत्नी कहती है कि भावज ! आपके वर थोड़े निद्रावश हुए हैं, शतः जरा घीरे बोलिये । यदि उन्होंने युद्ध का नकार सुन लिया । वे इन बहते हुए घावों में भी चौककर उठ खड़े होंगे ।

देराणी दृग गोध रा, जेठ श्रवण सँजोड़ ।

कोसां चा सुण ढोलड़ा, ऊठै नींद बिछोड़ ॥ ६३ ॥

हे देवरानी ! निद्रा की आँखों के समान तुम्हारे जेठ के कान इतने तीक्ष्ण हैं कि कितने कोसों की दूरी के ढोल के सुनकर वे निद्रा त्यागकरके उठ खड़े होते हैं ।

कन्त कहन्ता सहगमण, कीधां रहबौ साय ।

छोडौ अच्छर छेहड़ा, सो धण शालै हाय ॥ ६४ ॥

हे कंत ! आप तो कहते थे कि सती होओगी तो अपना साथ बना रहेंगे, और अब हाँ यह क्या दृश्य है ? अप्सरा का पल्लव छोड़िये ताकि आपकी पत्नी आपको पाणि-दण करे ।

फाली अच्छर छक मकर, सुना धव सपणाय ।

खर किसौ परखे सती, बोलौ सुरग वसाय ॥ ६५ ॥

स्नान में पहुँचने पर सती अपने पति को पहिचानकर कहती है कि हे बावली अप्सरा !
दूसरी किसी के पति को सुना समझकर अपना बनाकरके धमँड मत कर ।

गोध कलेजा चीलह उर, कंकां अंत बिलाय ।

तो भी सो धक कंत री, मूँछां घूँह मिलाय ॥ ६६ ॥

गोध कलेजा, चीलह हृदय और कंक धाँतों को बिलीन कर रहे हैं तो भी, अहा !
कंत का यह साहँम है कि मूँछे गौहों में मिळ रही हैं ।

नोगण पहली साथ पळ, करै उतावळ काय ।

भर खप्पर बालहैं रहिर, देसो कंत घपाय ॥ ६७ ॥

हे योगिनी ! पहिले ही मांस भक्षण करके इतनी जल्दी क्या कर रही है ? जरा ठहर,
मेरे पति तेरा खप्पर भर २ के तेरे शौक की चीज-सभिर से ही तुझे तृप्त कर दूँगे ।

ऊभी गोख अवेखियाँ, पेलां रौ दळ सेर ।

पड़ियाँ धव सुणियाँ नहीं, लीघो घण नाळेर ॥ ६८ ॥

झरोखे में खड़ी हुई पत्नी ने देखा कि शत्रुसेना प्रयत्न है । अतः पति के देहपात का
संवाद नहीं सुना तो भी पत्नी ने इसे अवश्यम्भावी मानकर 'सती' होने के लिये नारियल
हाथ में ले लिया ।

मूझ अचंभी है सखी, कंत बखाणूँ कीस ।

चिण मार्य दळ बादियाँ, आंख दियै कै स्तीस ॥ ६९ ॥

हे सखि ! मैं अपने इस-आश्रय का क्यों कर वर्णन करूँ ? कंत ने चिना शिर ही
सेना के काट डाली—उनके आँखें हृदय में हैं या शिर में थीं ?

मतवाळीं जोबन सदा, लस जमाई माय ।

पड़ियाँ घण पहली पढ़ै, बूढी घण न सुहाय ॥ ७० ॥

माया ! तुम्हारे जागता जीवन में सदा इतने मस्त हैं कि उन्हें बूढ़ा पत्नी नहीं सुझती ।
शायद इसी लिये तो वे प्रयत्न में रहते हैं कि अपनी प्रिया के पयोधर दीर्घ पड़ने से पूर्व
ही वे रणांगण में गिर पड़ें ।

क'काणी चंपै चरण, गीधाणी सिर गाह ।

मेा विण सुतो सेज री, रीत न छंडे नाह ॥७१॥

क'काणी उनके पैर दबा रही है, गिद्धिनी शिर खुजला रही है—शेख तो सही, रणदाय्या र मेरे बिना सो रहे हैं तो भी नाथ हमेशा का नियम नहीं छोड़ रहे हैं ।

नीला बलिहारी थई, हण टापां खळ-झुंड ।

पहली पड़ियों टुक बहे, खड़े धणी र रुड ॥ ७२ ॥

हे अश्व ! तुझ पर निछावर हूँ । तू शत्रुसमुदाय को अपनी टापी से हननकर तेरे स्वामी के छण्ड के खड़े रहते खुद टुकड़े र होकर पहिले ही गिर पड़ा ।

नीला ! मेा पहली पड़े, कीध उतावळ काय ।

बालहा कवलां पाळियों, पड़तौ मृश पुगाय ॥ ७३ ॥

हे अश्व ! मैंने तुझे बड़े प्रेम के आस लिखा र कर पाला था । मुझे पहुँचाकर तो गेरता । तूने मुझसे पहिले ही काम आकर इतनी जल्दी क्यों की ?

हूँ पाछे आगै हुबे, आणी नाह घरेह ।

जे बालही धण जीवहूँ, आगै मृश करेह ॥ ७४ ॥

विवाह-समय स्वामी मुझे पीछे रख और स्वयं आगे होकर घर लये थे परन्तु यदि शक्ति-निधन के बाद तक मैं जीवित रही तो उन्हें संती हेने के समय मुझे आगे करना पड़ेगा ।

कंत घरे किम आविया, तेगां रौ घण आस ।

लहंगे मृश लुकीजिये, बैरी रौ न बिसास ॥ ७५ ॥

वीरांगना कायर पति से कहती है कि पतिदेव ! घर कैसे पधार आये ? क्या तलवारों का बहुत डर लगा ? ठीक है, तो आइये, मेरे लहंगे में छिप जाइये । शत्रु का भला क्या भरोसा ? घर पर भी आ जाय !

—अ.म.शः



(३) मन का उपदेश.

(कर्ता-स्वभक्त-कवियत्री श्री सम्मानवादे कविका, सं० १८९०-१९४५ वि०)

रवैया

मन ! नीकी सिखावन देत हों मैं, गुनचोर है तू जो गनै न गनै ।
कन ओस को-सो है भरोसो कहा, तन को या चितुला तनै न तनै ।
परदेह के काज सरै न कह्यु, जननी नरदेह जनै न जनै ।
भजु साँस-उसाँस सियावर कौं, फिरि साँस को पेशो बनै न बनै ।

(४) इन्द्र का आह्वान

गीत

(कवि हमीरजी रतनू)

घणा घणायो घादळां रूप चौबडी रचायो घटा ।

छलायो तळायां, नदी हलावो अछेह ॥

पलायो पवन हमै प्रचला करायो पाणी ।

महाराजा इन्द्र आयो वरस्तायो मेह ॥ १ ॥

विराजै अंबरं गाज सेहरां बळके चीजां ।

खळके ताल रा सीस पालरां रा खाळ ॥

अन्नचरां जळचरां बळचरां थारो आस ।

सुरापती कीजै धरा, ऊपरै सुगाळ ॥ २ ॥

पखाळीजै गिरां गात्र हमाळीजै जळांपूर ।

घाळीजै घखस भली दिखाळीजै धार ॥

घिमाळीजै नहीं ताल निकाळीजै काळ बेगो ।

सँभाळीजै पृथीनाथ ! पाळीजै संसार ॥ ३ ॥

संजरमी हुए बात आदमी वरते सुखी ।

कमी रहै नहीं, मिटै हुकम्मी कलेश ॥

कंकाणी चंपै चरण, गीधाणो सिर गाह ।

मो विण खतो सेज री, रीत न छंडे नाह ॥ ७१ ॥

कंकाणी उनके पैर दया रही है, गिद्धिनी शिर खुजल रही है—देख तो सही, रणशय्या
मेरे बिना सो रहे हैं तो भी नाथ हमेशा का नियम नहीं छोड़ रहे हैं ।

नीला बल्लिहारी थई, हण दापो खल्ल-झुंड ।

पहली पड़ियों टूक व्हे, खडै धणी रै रुड ॥ ७२ ॥

हे अश्व ! तुझ पर निछावर हूँ । तू शत्रुसमुदाय को अपनी टापों से हननकर तेरे स्वामी
गुण्ड के खड़े रहते खुद टुकड़े २ होकर पहिले ही गिर पड़ा ।

नीला ! मो पहली पड़े, कीध उतावळ काय ।

बाल्हा कवलां पाल्लियो, पड़तौ मूझ पुगाय ॥ ७३ ॥

हे अश्व ! मैंने तुझे बड़े प्रेम के आस खिला २ कर पाला था । मुझे पहुँचाकर तो
मरता । तूने मुझसे पहिले ही काम आकर इतनी जल्दी क्यों की ?

हूँ पाछै आगै हुवे, आणी नाह घरेह ।

जे बाल्ही धण जीवहूँ, आगै मूझ करेह ॥ ७४ ॥

विवाह-समय स्वामी मुझे पीछे रख और स्वयं आगे होकर घर लाये थे परन्तु यदि
अति-निधन के बाद तक मैं जीवित रही तो उन्हें संती होने के समय मुझे आगे करना पड़ेगा ।

कंत घरे किम आविया, तेगां रौ धण आस ।

लहंगै मूझ लुकीजियै, वैरी रौ न बिस्तास ॥ ७५ ॥

वीरांगना कायर पति से कहती है कि पतिदेव ! घर कैसे पधार आये ? क्या तलवारों का
रुहून ठर लगा ? ठीक है, तो आइये, मेरे लहंगे में छिप जाइये । शत्रु का भला क्या भरोसा ?
मेरे पर भी आ जाय !

(५) चारणों की प्राचीन दशा का दिग्दर्शन

(रचयिता-स्व० कविहरप्रभु (श्री कैलाशचन्द्र श्री गो० पी० चारहट)

पद

भिलिन्द पादागमक मोजक छन्द

(मात्रा २२; यति १२+६+४ उल्लास २३ मात्रा)

नीपण कवि 'पागल' सुरसत्ती सिर नावे ।

गढव्यां री लुपियोडी कीरत-कथ गावै ॥

पूरयला पातां री पांगी रा खसरा ।

रूड़ा व्रत भोजक मे भाखू मधुरस्त रा ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजे चारणा रे ॥ १ ॥

निपुण (चारण) कवि ' पागल ' देवी सरस्वती को नमस्कार करके गढ़पतियों (चारणों) की लुप्तप्राय कीर्तिकथा का गान करता है । वह प्राचीन चारणों की तारीफ़ का खसरा मीठे रस वाले सुन्दर मोजक छंद में खींचता है । भारत के हितचिन्तक चारणों की बलिहारी, जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

भारत रा उद्धारण कारण सारण छा ।

छारण मदबहताड़ा चारण चारण छा ॥

कमळां नू सतियां रा श्रीफल सम कहता ।

गहली री जेपड़ ज्यूं जीवण निज गहता ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजे चारणा रे ॥ २ ॥

वे भारत के उद्धारकार्यों के करनेवाले थे, वे निष्ठा के चारण, मद बहते हुए हाथियों के समान थे, वे अपने शिरों के शक्तियों के नारियल के समान कहते थे और अपने जीवन के पगली के सिर पर रखे हुए मिट्टी के घड़े के समान समझते थे—उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

शैशव री छेळां में असमर री चोळां ।

जोवन में धांसाहरवाळी घमचेळां ॥

आंधोळण बाणासां हियड़ा उत्सस्ता ।

रीठां नूँ प्रसणां सिर कसतां रस लसता ॥

बलिहारी भारत-हित-चिंतक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै चारणा रे ॥ ३ ॥

जिनके वचन में युद्ध का ही हँसी-मज़ाक रहा करता था और यौवन में उसी युद्ध ही का खेल था, जिनके हृदय अतिधातु-जीर्ण में स्नान करने को फूला करते थे और जो शत्रुओं पर प्रहार करते हुए आनन्द का अनुभव करते थे—उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

धूँकळ रीं हूँकळ सुण खाया रण खडता ।

खंडां सुं लड़ता अर मुंडां हड़हड़ता ॥

मैंगळ मदमाटां पर बीजड़ यूँ बहती ।

ज्यूँ मेचक जळहर में चपळा लहलहती ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै चारणा रे ॥ ४ ॥

युद्ध का नाद सुनकर उसमें शामिल होने को जो आतुर रहते थे, जो अपने घड़ों से लड़ते और मुण्डों से युद्ध में अट्टहास किया करते थे, जिनकी तलवार मस्त हाथियों पर चखती हुई ऐसी प्रतीत होती थी जैसे श्याम जलधर में विजली चमकती हो—उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

जमडाढां हिंदवां रा भरियां उर जड़ता ।

आर्यां रा राजस हित रचदां आहुड़ता ॥

पीधा अरि-श्रोणित ज्यां पड़ियाळग पारी ।

वां वेढीगारां पर जाऊं बलिहारी ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै चारणा रे ॥ ५ ॥

जो हिन्दुओं के शत्रुओं की छातियों में कटारियाँ प्रविष्ट कर देते थे, आर्यों के राज्य के लिये जो शत्रुओं से भिड़ते रहते और जिनकी तलवारों ने तप्त होकर अग्नि-शोणित का पान किया था—उन महाशूराओं की बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलियाँ।

प्रभाटक राटक सुण अस्तिनाटक रचता ।

माह रणराह जमसाह सा जचता ॥

वीरारस मूरत री मूरत पर चारी ।

सगत्यां रा छूनां पर जाऊं बळिहारी ॥

बळिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै चारणा रे ॥ ६ ॥

रणमेरियों का शब्द सुनकर जो अस्तिनाटक रचा करते थे, जो रण के देव-पुरुषपुंगव यमराज के साहस-से मालूम होते थे—उन मूर्तिमन्त वीररस की मूरतों पर मैं न्यूँछावर, उन शक्ति के पुत्रों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणों पर बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलियाँ।

रजकुळ री महळां नू धी कर घर राखी ।

लुपियोढा रजबाड़ा राख्या निज साखी ॥

खागां नू खेली रण फागां हद खारी ।

भाणव भुरजाळां पर जाऊं बळिहारी ॥

बळिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै चारणा रे ॥ ७ ॥

जिन्होंने राजपूत रमणियों के पुत्रियों के समान अपने घरों में रक्खीं; जिन्होंने जोये हुए राज्यों के अपनी साड़ी मात्र से रक्त लिये, जिन्होंने युद्धभूमि में अति तीव्र तलवारों से फगो खेळी—उन मुद्दूद शूर चारणों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलियाँ।

छत्रियां नू मांहेमह लखता रण रचता ।

दुकयी वण संधी कज दुहुंघां दित बहता ॥

तिण "दूथी" "हेतव" अर "रैणव" पद धारी ।

अचरी रा केहड़ पर जाऊं बलिहारी ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे ॥ ८ ॥

जब कभी क्षत्रियों को आपस ही में लड़ते देखते तो उनकी संधि के लिये जो यत्नीय न कर दोनों का हित-साधन करते और इसी लिये "दूथी," "हेतव" और "रैणव" हलते हैं—उन अवरी के वंशधरों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

बाकां मे बाणी ब्रह्माणी बिलसंती ।

बाखर सा आखर जुत पंती उचरंती ॥

कायर उर बयणां रा कीधा छत कारी ।

बीदग बरियामां पर जाऊं बलिहारी ॥ ९ ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे ॥ १० ॥

अमृतोपम अक्षरों की पंक्तियों का उच्चारण करती हुई बाणी ब्रह्माणी का जिनके मुखों में बेलसा होता रहता था, जिन्होंने कायरों के हृदयों में अपने तीव्र वचनों से भयङ्कर घाव कर दिये—उन विदग्ध वीरों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

प्राणां रे सादस पिण कहता नहँ कूडी ।

कविराजा कविता मे रदता सच रूडी ॥

श्री राघव जूजसठळ हरियँद मगचारी ।

संतत सचबोलां पर जाऊं बलिहारी ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे ॥ १० ॥

प्राणों की बाजी लगने पर भी जो कभी झूठ नहीं कहते थे, जो कविराज अपने काव्यों में मदा सत्य वर्णन किया करते थे, जो श्री रामचन्द्र, युधिष्ठिर और हरिश्चन्द्र के पदानुवर्ती

थे—उन सतत सत्यवक्ताओं पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिंतक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

सम्पादक सांप्रत जो निज भूकज सारे ।

बहता छा चारण उण भारग तिण वारे ॥

भारत पर आसत निज सासत सह धारी ।

आर्याव्रत-भगतां पर जाऊं बलिहारी ॥

बलिहारी भारत-हित-चिंतक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै धारणा रे ॥ ११ ॥

वर्तमान समय में जो कार्य पत्र-सम्पादकगण अपनी मातृभूमि के लिये सर्वत्र करते हैं वह काम चारण पूर्वकाल में करते थे, भारतवर्ष पर उन्होंने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था—उन आर्यावर्त के के भक्तों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्ताक चारणों की बलिहारी जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

वैभय ब्रह्म दीनां चा द्वाळद चीहंडिया ।

कन हंदि काकणिये मुद भर पग मंडिया ॥

“लख-कोटी वरसण” री पदवी जग पाई ।

अज्जाचक अभिधा में ओठम अधिकाई ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै धारणा रे ॥ १२ ॥

अतुलित दान दे कर जिन लोगों ने शीनजनों का दारिद्र्य दूर कर दिया, जिन्होंने महादानी कर्ण के मार्ग पर प्रसन्न हो पैर रखे, जिन्होंने संसार में “लखों-कोटों” देनेवाले (लाखपरीस-फ्रीडमंस) की उपाधि (याचकों से) प्राप्त की, जिन्होंने अयाचकता में बढ़ाई और गौरव माना—उन भारत-हित-चिंतक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

कुळ चारण कीरत अय कादा मैझ कळगी ।

गोतां में गयती सो रिद्धी हा खळगी ॥

किरपा कर हसडी पिण ओजू फिनियाणी ।

“ पागल ” निधि प्रामें जिम पुरखानी ॥
बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जन्म-भूमि-भगतां रा लीजै चारणा रे ॥ १३ ॥

अब चाणक्य का कवि कांचड़ में कैम गई है, उसकी जो सिद्धि गीतों में गाई जाती थी वह आज न मान्य कहा चली गई, अतः “ पागले कवि ” प्रार्थना करता है, हे किनियार्थी-मा करनी ! त फिर पूरी इच्छा कर कि चारणजानि अपने पूर्वपुरुषों की उसी निधि को पुनः प्राप्त कर ले ।

भारत-हित-चिन्तक चारणां का बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलियां ।

[ऊपर की कविता रचयिता द्वारा प्रकाशित “ पागल-प्रमेद ” पुस्तिका से ली जाकर उसका भावार्थ लिखा गया है । —सम्पादक]



(६) वेदना

(स्वयंविग्रह टांतांथां कृष्णमिहजी सौदा बारहठ, शाहपुर)

बेहा

घणी खियां रा घर में; रचियोड़ा दिन रात ।
राजा मदमाता रहै; प्रजा महा दुख पात ॥
कौड़ी नहँ खर्च कद; पहु मेढण पर-पीर ।
दाकम राजी करण हित; धन धूपदै सधीर ॥
बढे राज ले, भूप घणः पाळण में रहे पूण ।
फागटण लीधां फिः गरदभयोली नूण ॥
की जाण गुण गी कथा; की जाण जेम्-काम ।
ओछी संगत उलझिया; निरगुज भूप निकाम ॥
ओछी संगत आदरी; ओछा कामां आग ।
कधि मृग विहान रो; न्दार्ग नष्ट न थाग ॥
नाजर तो दाजर नय; रहै हर रजपूत ।
रांहीचारां राज गी; मुथे किण विघ नूत ॥

छोटी ऊमर छोकरा; राजां तणी हजूर
 रहण लगा तो किम रहै; सुकव, सुभद, बुध, सूर ॥
 विधवां जिम खूणै बसै; राजां री तंज रीत ।
 ज्यां रो जस इण जगत में; फैलै किण विध फीत ॥
 जळ खू हड़क्या जीव जिम; किना तीर खू काक ।
 राजा यूं डरता रहै; धुध-कविलोकां वाक ॥

छप्पय

जेन केन रचि जाळ, धरा उदैकी लेखण धर ।
 पुनि पुनि फंद पसाय, निलज फांसै नित नित नर ॥
 बडकां धरम बिचार, करे सांसण दत कीधी ।
 केती जस रै काज, दान कर धरणी दीधी ॥
 सो, दीन जाण खोसै सरब, आप बणै जग ओगणौ ।
 जम-जाळ बीच जीवण जतन, भायो रौरव भागणौ ॥

[उपर्युक्त पद्य करीब पैंतीस वर्ष पूर्व लिखी हुई उक्त स्वर्गीय-कविवर की “कृष्णोपदेश” नामक अप्रकाशित पुस्तक से लिये गये हैं ।

चारण जाति की कद्र पहिले क्यों थी ?

(ले०-ठाकुर श्री हेतुदानजी सा० उज्ज्वल, पम्प०, पल्-पल्०यी०, ज्युडिशियल सुपरिन्टेन्डेन्ट, सोजत-मारवाड़; पत्र उपाध्यक्ष-अ०भा०धारण-सम्मेलन)

बारहवीं शताब्दी से, जब से कि मुसलमानों के धावे हिंदुस्तान पर शुरू हुए और अंगरेजों राज्य अच्छी तरह से कायम होने तक देश में बड़ी अशान्ति रही थी। राजपूताना गुजरात व काठियावाड़ में राजपूतों की रियासतें कायम हो चुकी थीं; किन्तु राजा के युद्ध के लिये हर समय तैयार पड़ता था। इन राजाओं की फौजों में बड़े राजपूत ही होते थे, इसलिए हर बड़ाई के लिये हर वयत तैयार रहना

था। राजपूतों के बादशाही व बाहर की दूसरी जातियों की फौजों में लड़कियों के अलावा अपिस में भी कई झण्डे-फिसाद होते रहते थे। राजपूतों के लिये मरना व मारना एक साधारण बात थी। कई राजपूत, नौजवान उम्र में ही लड़ मरते थे। अतः उनके लिये यह कहावत हो गई थी कि—

“मरदां मरणों हक्क है,

भगर-पचीसी मांय।”

धोतू मर्दा आदमी के पचीस साल की उम्र भरजवानी में ही लड़ मरना ठीक है।

इस प्रकार लड़ मरनेवाले वीर राजपूतों और तो कोई इच्छा नहीं होती थी, लेकिन तब वे जरूर चाहते थे कि जिस वीरता के साथ वे मर भिटे हों, उसकी बात जगत में प्रचल रह जावे या कम से कम उनके घरवालों व रिश्तेदारों को तो उनके मरने के हालात से पूरी राखर मिल जावे। इस काम का बीड़ा चारण जाति ने उठाया था और इस काम को इतने किया हद तक कर दिया था, यह बात इंग-जाहिर है।

इस काम को करने के लिये यह भी आवश्यकता थी कि चारण भी लड़ाई के समय लड़ाई के मैदान में राजपूतों के साथ मौजूद हों। नगर इस बात की भी आवश्यकता थी कि वे चारण लड़ाई में मारे न जायें क्योंकि यदि वे हाथ गुलामगिरी ही मार दिये जायें तो कम उनको मृत्युदंड दिया हुआ था यह समझा रहें। इसलिये राजपूत जाति ने चारणों

को मौजूदा Red cross की तरह मान लिया था। और जिस राजपूत-पाटी की हार होती थी उसके चारणों को, जीतनेवाले राजपूत भी उतने ही सम्मान से रखते थे; क्योंकि वे जानते थे कि अगर चारण को मार दिया तो शत्रुओं के घाव को सराहनेवाला भी कोई बाकी नहीं रहेगा और कभी उनकी हार होने पर उनके चारण भी भी मारे जायेंगे और उनका नाम कायम रखनेवाला कोई भी नहीं रहेगा।

चारणों के इस महद् कार्य के विषय में नीचे लिखा दोहा प्रसिद्ध है—

मातपिता सह बीसरै, बन्धू बीसारेह।
सुरांधूरां बातड़ी, चारण चीतारेह॥

अब सोचा जा सकता है कि जिस चारण को वीर राजपूत अपना नाम संसार में कायम रखनेवाला मानते थे, वह उनको कितना प्यारा होगा! उसकी वे किन्ती इज्जत होंगे!!

जब लड़ाई न भी होती थी तब भी चारणों को राजा लोग व राजपूत सरदार अपने पास ही रखते थे और उन्हें अपने पुरंदरों की वीरता व अच्छे गुणों का हाल सुनते थे।

चारणों ने भी अपने इस काम के लिये जरिया कविता का सोचा और उसके लिये माया रास कर डिगल को पसंद किया, जो वीररस के लिये बहुत उपयुक्त है। वीरता का वर्णन कितना अच्छा और प्रभाव के साथ कविता से हो सकता है उतना साधारण तरीके से कहने पर कभी नहीं हो सकता, इसलिये चारणों को

कविता का धंधा भी अखिरवार करना पड़ा। कविता अथवा प्रभावशाली होने के मनोरंजक भी होती थी और जैसे लड़ाई में चारण, कविता से राजपूतों में वीरस भरते थे वैसे मुल्ह के जमाने में कविता से उनका दिल बहलाव करते थे।

राजपूतों के लड़कों को बचपन से ही लड़ाई के लिये तैयारी करनी पड़ती थी और छोड़े चढ़ना व दाख चढ़ाना सीखना पड़ता था; और वे पढ़ना-लिखना नहीं सीख सकते थे इनलिये खुद पढ़ने-लिखने के बजाय चारणों से कविता व कहानियाँ सुन करके शिक्षा (Education) पाते थे। यह शिक्षा (Education) देने का काम बहुत पुराने समय में तो ब्राह्मण लोग किया करते थे मगर ब्राह्मणों के व राजपूतों के खानपान में फर्क होने से यह काम राजपूतों ने चारणों के हाथ में दे दिया था या चारणों ने अपने हाथ में ले लिया, जिनका खानपान-व्यवहार राजपूतों से बिलकुल एक-सा था।

जब चारणों ने यह धंधा अखिरवार कर लिया तो उनकी जीविका के लिये भी कोई इंतजाम होता जरूरी था, इसलिये राजपूत राजा एवं सरदारों ने चारणों को आजीविका में कई गाँव दिये। राजपूतों की जमीरों तो बदलती रहती थी, आज एक के हैं तो कल दूसरा छीन लेता था या राजा ही बदल देते थे, मगर

चारणों को जो गाँव दिये जाते थे उनमें ये प्रतिज्ञा होती थी कि ये कभी वापिस नहीं लिये जावेंगे।

इन चारणों के गाँवों से राजपूत सरदारों को एक यह भी सुनिता था कि जब वे देखते कि दुश्मन ज्यादा ताकतवर है और उनके हारकर मरने की सम्भावना है तो वे अपनी औरतों व बच्चों के चारणों के घरों में रखकर लड़ाई में चले जाते थे। अगर वे राजपूत लड़ाई में मारे जाते और वापिस न लौटते तो चारण उनके बच्चों का पालन-पोषण करते और लड़ाई के लिये शस्त्रादि चलाया सिखाकर होदियार कर देते थे। जो राजपूतों की किर्याँ इस तरह चारणों के घरों में रहती थीं उनके चारण अपनी मा-बहिन के समान रखते थे। इतिहास में चारण-राजपूतों के सम्बन्ध में एक भी ऐसी मिसाल नहीं है जिसमें किसी चारण ने, इस प्रकार रखी हुई किसी राजपूत स्त्री के साथ मा-बहिन के सिवाय और तरह का वर्ताव किया हो। चारण इस तरह से रखे हुए राजपूतों के बाल-बच्चों को अपनी पवित्र धाती (Sacred trust) समझते थे और जहाँ तक बन पड़ता, उनके पालन-पोषण में कसर नहीं आने देते थे।

जाधपुर राज्य के स्थापित करनेवाले राव जूझजी भी इसी तरह काठाऊ ग्राम के एक चारण के घर में पले थे। जिसकी स्मृति दिलानेवाला यह मेरठा बहुत प्रसिद्ध है—

(शीघ्र पृष्ठ ३२ पर)

काव्य-कुंज



चाह दुवारा चाह !

(कवि श्री शम्भूदासजी सा० आशिष्या, मंगटिया-मेकाड़)

देहा

घर ओढण नहँ गृदडी, फाकण नहँ फूलाह ।

तो पण प्याली नहँ तजै, चाह दुवारा चाह ॥

करज फलाळी रौ कदै, तिण स्रं हुवै तवाह ।

चोरी कर दारु चखै, चाह दुवारा चाह ॥

पीतां ही सुख व्है प्रगट, दुखद हिया रौ दाह ।

स्वान देह चाटै सरब, चाह दुवारा चाह ॥

प्याला दुय पीधां पछै, लाव लाव कह लाह ।

यातां, पी अलबल बकै, चाह दुवारा चाह ॥

घर में तिय सोचै वणी, आया कंत न आह !

पिय मग में पड़िया रहै, चाह दुवारा चाह ॥

सोरठा

हुवै भयन धन-हाण, व्याधी कई लागै वपू ।

अंग नणो आपाण, गटकायां मद रै वटै ॥

छानै ले ले छाक, वप रै क्यूं यांसि पड़्या ।

अब पीणो पराक, त्यागो कावू चित रखै ॥

पोशीदा मद प्रंग, पी पी चार पधारवो ।

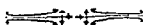
दुनिया आंख्यां देख, पीधाहो जाणै परो ॥

जिन्दगानी स्रं जाय, आसव यो अधकाळिया ।

मेल्या का इण मांय, पीणो मद छाडी परो ॥

हालत मद खं होय, देखी या दाखी नुरस ।

करी रीस मत कोय, किणी एक पर नहँ कही ॥



नौकरी के नुस्खे

(स्थायिता-कवियर श्री " रसिक ")

मनहर

मान ले सलाह मेरी करनी है नौकरी तो,

अकड़ तुम्हारी अरे एक ओर धर दो ।

खातिर खुशामद तो आला अदना की करो,

रिश्तत खिलाओ खाओ खूब घर भर दो ।

हाकिमों में होने की तुम्हारी होय इच्छा गर,

आला अप्सरों की यार ! जेय गर्म कर दो ।

रहना हो रईस पास " रसिक " तुम्हें तो एक,

अच्छी सी...लाके भेट उन्हे करे दो ॥ १ ॥

मान ले सलाह मेरी करनी है नौकरी तो,

बचाकर वक्त थोड़ा यार सुब-शाम ही ।

रोज़-रोज़ जाकर के हाकिमों के पास जरा,

झुक-झुक किया करो जोर से सलाम ही ।

हाज़िर, हुज़ूर, बड़ा हुक्म है-पैसे लफ़्ज,

हाथ जोड़ बोला करो पड़े जब काम ही ।

बच्चों को खिलाया करो उनकी नज़र आगे-

दे दे कर चुटकियां ले ले चापू नाम ही ॥ २ ॥

श्री संपादक महाशय के उपरोक्त आक्षेपों के उत्तर में निवेदन करते हुए 'चा० हि० सभा' के स्थिति-संयोगों को स्पष्ट करना मैं उचित समझता हूँ।

'अ० भा० चा० संमेलन' के चतुर्थ अधिवेशन (जोधपुर) के अवसर पर कच्छ-काठियावाड़ एवं गुजरात के जिन दो-चार प्रतिनिधियों ने सम्मेलन का पंचम अधिवेशन काठियावाड़ या गुजरात में कराने का आमंत्रण दिया था, उनमें मैं भी एक था। परंतु उस समय प्राइवेट बातचीत में मैंने श्री संपादक महाशय से कि जो उस समय संमेलन के प्रधानमंत्री थे एवं संमेलन के अन्य एक-दो कार्यकर्त्ताओं से, निवेदन किया था कि, यह पंचम अधिवेशन 'चा० हि० सभा' के चतुर्थ अधिवेशन के साथ-साथ ही होगा। और यही कारण है कि 'चा० हि० सभा' के तृतीय अधिवेशन के प्रसंग पर उसी बातचीत के अनुसार हम लोगों ने सभा के आगामी चतुर्थ अधिवेशन के साथ ही संमेलन का पंचम अधिवेशन राजकोट में कराने का निश्चित किया था।

संपादक महाशय ने कहा ही होगा कि, इन दोनों संस्थाओं के अधिवेशनों का समय-विभाग अलग-अलग रहता गया था और तदनुसार दोनों का कार्य अलग-अलग एवं एक-दूसरे के परस्पर हुआ करता था। ऐसी दशा में 'चा० हि० सभा' के कार्यकर्त्ताओं द्वारा सम्मेलन-कार्य को गौण रूप प्रदान होना कदा

कहाँ तक उचित है? फिर भी मैं 'चा० हि० सभा' की ओर से शपथपूर्वक स्पष्ट करता हूँ कि सभा के कार्यकर्त्ताओं के दिल में सम्मेलन-कार्य को गौण रूप बनाने की वृत्ति का ही जन्म नहीं हुआ था। यहाँ तक कि 'चा० हि० सभा' के अधिवेशन-कार्य के लिये जितना समय निश्चित किया गया था, उससे कहीं अधिक समय की आवश्यकता प्रतीत होते हुए भी सभा के कार्यकर्त्ताओं ने कई अत्यावश्यक प्रश्नों के निर्णय को स्वर्गित रखकर सम्मेलन के अधिवेशन की समय-मर्यादा का पालन किया था और जैसे भी हो सम्मेलन-कार्य को अधिक महत्त्व देने का प्रयत्न किया था।

संपादक महाशय का 'चा० हि० सभा' के कार्यकर्त्ताओं पर दूसरा आक्षेप यह है कि, उन्होंने सम्मेलन के कार्यालय-सूच, प्रचार-कार्य, सुस्पष्ट एवं रिपोर्ट छपवाने के लिये धन-संग्रह की अपील न करने दी। मैं इसके उत्तर में यह निवेदन करना चाहता हूँ कि, हम सब के लिये जोधपुर-अधिवेशन में अपने-अपने हिस्से का चंदा नियमित देते रहने का वादा करने पर भी गिरा सारवाट के सम्मेलन से संबंधित भेवाड़, डंडाट, बीकानेर, अजमेर आदि प्रांतों ने हम विषय में कुछ भी सहायता नहीं दी है, हम हालत में सम्मेलन के राजकोट-अधिवेशन में उपस्थित प्रतिनिधियों से कि जिनमें अधिकांश गुजरात-काठियावाड़ एवं कच्छ के थे और जो सम्मेलन के कार्य-प्रदेश से प्रायः अनभिज्ञ थे;

सम्मेलन के उपरोक्त कार्यों के लिये चर्चे की अपील करना कदां तक ठीक था, इसका सम्मेलन के पदाधिकारियों को विचार करना चाहिये।

सम्मेलन के कार्यकर्तागण बड़े बुद्धिमान और शिक्षित हैं, परंतु सेवाभाव की दृष्टि से मेरी समझ में उनमें स्वार्थत्याग की भावना बिलकुल कम है। संभव है, इतने मेरी गलतफहमी या मिथ्यादोष-दृष्टि ही कारणभूत हो। फिर भी यह बात तो सच है कि, बिना अपना स्वनिष्ठाए पराई वेदना का अनुभव नहीं होता अर्थात् निजी स्वार्थत्याग किये बिना कोई सेवाकार्य सफल होना कठिन है, क्योंकि सेवाभाव में स्वार्थत्याग ही उसकी वेदिका-स्वरूप है।

उदाहरण-स्वरूप सम्मेलन के पंचमाधिवेशन की विषय-निर्वाचिनी समिति में इस प्रश्न की चर्चा के समय मैंने अपना दृष्टिबिंदु स्पष्ट करते हुए कार्यकर्ताओं को अपनी-अपनी जेब से कम से कम दस-दस रुपये निकालकर आदर्शरूप बनने के लिये प्रार्थना की थी। हालांकि चतुर्थ अधिवेशन से पंचम अधिवेशन तक मैं भी सम्मेलन का एक कार्यकर्ता चुना गया था, इस लिये अन्य सहकारी कार्यकर्ताओं के साथ यथा-शक्ति अधिक सहायता देना मेरा कर्तव्य था और इसके लिये मैं तैयार भी था, परंतु राजस्थानी कार्यकर्ताओं ने मेरे सूचन पर कोई ध्यान नहीं दिया। यदि उन्होंने मेरी प्रार्थना का स्वीकार किया, होता तो उपस्थित प्रतिनिधियों से बिना अपील किए अकेले सम्मेलन के कार्यकर्ता

में ही कम से कम १२५० रुपये उठा सम्भव हो जाते और मुझे विश्वास है, इनके देना-देरी काटियेवाड़-मुजरत के भी अन्य सम्मेलन-धर्मा मजबूत चर्चे में यथाशक्ति कुछ अवसर मिलवाने।

इसके साथ मैं यह भी स्पष्ट करना चाहता हूँ कि, 'चा० हि० सभा' के कार्यकर्ताओं के सम्मेलन के कार्यकर्ताओं को धन के लिये अपील करने की मनाही नहीं की थी। यह निवेदन अवश्य किया था कि इधर के प्रतिनिधियों से 'चा० हि० सभा' के सदस्य-फीस के साथ-साथ श्री 'कृष्णकुमार-चरण-विद्यालय' के स्थायी फाँट के लिये भी अपील की जानेवाली है, इस हालत में सम्मेलन के लिये अपील करने से अधिक सहायता मिलना कठिन है, परंतु अपील करना ही चाहें तो अवश्य करें संभव है, इस निवेदन की बात संपादक महोदय के भी स्मरण-पट में हो।

अब रही सम्मेलन के सुखपत्र की बात इसके पुनर्जीवन का प्रस्ताव तो जाधपुरीय अधिवेशन में स्वीकृत हो चुका था और इसके द्वारभिक व्यय के लिये कुछ चर्चा भी किया गया था। जहाँ तक मुझे स्मरण है, इस चर्चे के रकम ८०० रुपये के करीब हुई थी। हालांकि विद्युत्-सा० श्री किशोरसिंहजी के देहांत से सुसंपन्न हुए न हो सका, परंतु दस रकम से वह प्रसिद्धता अवश्य किया जा सकता था। इतना हीना हुआ भी जब विषय-निर्वाचिनी समिति में सुसंपन्न

चंदे का प्रदत्त रक्खा गया तो संपादक महा-
प्र ने जिन लेखों पर प्रांतीयता के भाव का
रोपण कर सम्मेलन को हानि पहुँचाने का आक्षेप
लिया है, उन्हीं में के एक श्री शंकरदानजी देवा
जीवड़ी) ने मुखपत्र शुरू करने की जिम्मेवारी
पने ऊपर ले, उसके लिये प्रतिवर्ष १००)
रुपये तक हानि सहन करते रहने का वादा किया था
और उसका वे इस समय बराबर पालन कर
रहे हैं ।

संपादक महाशय लिखते हैं कि, " सम्मेलन
: लिये एकत्रित लेखों से.....उन्हीं लेखों के
ारण कर हजारों रुपये प्रांतीय कार्य के लिये
कट्टे कर लिये जायें ।" मैं उनके इस कथन से गर्वित
नहमत हूँ कि, वे लोग सम्मेलन का नाम सुनकर
भाये थे, परंतु साथ-साथ यह भी स्पष्ट करना चाहता
हूँ कि, वे सब 'चा० हि० सभा' के अधिवेशन
में साथ देने एवं 'श्री कृष्णकुमार-चारण-विद्यालय'
के स्थायी फंड में कुछ सहायता देने को भी
आये थे ।

'इन एकत्रित लेखों में से केवल एक महाशय
श्री कालिदासजी जीजीनंद कोट (वीरवदरका
आठियावाड़) ने ही १,००१) रुपये 'श्री कृष्ण-
कुमार-चारण-विद्यालय' को और द्वितीय उदार
महाशय श्री जीवणलालजी बरसड़ा (भादरवा
-गुजरात) ने १००) रुपये 'श्री उमेश
-चारण-सालाख' (जोरपुर) को सहायता-स्वरूप
प्रदान किये थे । हाँ, अन्य बंधुओं से भी 'श्री

कृष्णकुमार-चारण-विद्यालय' को कुछ न कुछ
आर्थिक सहायता अवश्य मिली थी, परंतु हजारों
की तादाद में जैसा कि संपादक महाशय लिखते
हैं, सिवा उपरोक्त एक महाशय के अन्य किसी से
नहीं मिली । 'चा० हि० सभा' के लिये प्रायः
सभी व्यक्तियों से जो रुपये लिये गये
थे, वे तो उनकी सदस्य-फीस के थे और
बहु मालना लिये जाते हैं । परंतु इस सदस्य-
फीस का आंकड़ा भी कोई वर्ष हजार रुपये तक
तो नहीं पहुँचा ।

× × ×

अब रहा 'चा० हि० सभा' का 'अ० भा०
चा० सम्मेलन' से संबंधित रहने-न रहने का
प्रश्न । इस प्रश्न को मुलजाने के लिये दोनों
संस्थाओं के उद्भव, नियम, कार्यपद्धति, इतिहास
आदि-दोनों संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं को-समझना
चाहिये ।

'अ० भा० चा० सम्मेलन' का जन्म चारण
जाति की सर्वांगीण उन्नति के लिये हुआ था ।
उसके अबाधित रूप से तीन अधिवेशन भी हुए ।
जिनमें अच्छे-अच्छे प्रस्ताव पास हुए और कुछ
सक्रिय कार्य भी हुआ । परंतु यह सब हुआ
राजस्थानी बंधुओं के प्रयत्न से और कार्यक्षेत्र
भी राजस्थान तक ही सीमित रहने से उसके
नियमादि बनाये गये राजस्थानी चारण-समाज की
परिस्थिति के अनुकूल । गुजरात-काठियावाड़ के
तो बहुत ही कम व्यक्ति सम्मेलन के इन अधि-
वेशनों में उपस्थित हो सके थे । और सिवा

इसके इधर के प्रदेशों में उसका कोई प्रचार-कार्य नहीं हुआ। काठियावाड़-गुजरात एवं राजस्थान के बीच भाषा, रीति-रस्म आदि का बड़ा अंतर है। सम्मेलन की मर्यादित शक्ति उसकी मिटाने में गफलत न हुई। संभव है, इसी कारण से सम्मेलन का इधर किसी प्रकार का संबंध स्थापित नहीं हुआ, और उसका संदेश भी शुद्ध रूप में यहाँ तक पहुँचा नहीं। इस हालत में प्रचार-कार्य तो दूर की बात है। इसके पीछे तो-तृतीय अधिवेशन के परचार-सम्मेलन ही मूलप्रश्न हो गया।

इसी बीच भगवती जगदंबा की कृपादृष्टि एवं श्री शंकरदानजी देवा (खैरती) और श्री रामदानजी उपरिया (बावड़ी) के प्रयत्न से गुजरात-काठियावाड़ एवं कच्छ के चारण-बालकों के लिये एक छात्रालय की स्थापना करने एवं जाति में सामयिक सुधार करने के लिये 'चा० हि० सभा' का जन्म हुआ। भक्त कवि श्री दूलाभाई काग ने उसकी जिम्मेवारी का भार अपने कंधे ऊपर ले लिया। इन तीनों महाशयों के सतत् प्रयत्न एवं अन्य सज्जनों की हार्दिक सहायता से छात्रालय एवं इस सभा की स्थापना होकर इधर की चारण जाति में कुछ जागृति आई। संक्षेप में इस तरह 'चा० हि० सभा' का जन्म, नियम-कार्यादि का आयोजन और जातीय संगठन बिल्कुल स्वतंत्र ढंग से हुआ और आज तक गतिमान है।

जोधपुर में सम्मेलन का चतुर्थ अधिवेशन करवाकर मारवाड़ी वंशुओं ने राजपूताने में सम्मेलन की ज्योति को पुनः प्रकटित की। परंतु कच्छ-काठियावाड़ एवं गुजरात के अधिकांश जातिप्रेमी व्यक्ति राजकोट-अधिवेशन तक उसके उद्देश, नियम एवं कार्यादि से अपरिचित थे।

ठीक इसी समय 'चा० हि० सभा' ने सम्मेलन को राजकोट में आमंत्रित किया। इस अधिवेशन के अन्तर्गत पर राजस्थानी वंशुओं ने बिना इधर की परिस्थिति का सर्वप्रामाणी दृष्टि से कुछ विरोध अभ्यास किये इस हटाग्रह को सामने रखता कि, इसी अधिवेशन से 'चा० हि० सभा' को सम्मेलन की मानद्वत प्रांतीय सभा बनाई जाय, परंतु इधर के चारण नेताओं के लिये यह प्रश्न बिल्कुल नया था। आज दिन तक 'चा० हि० सभा' प्रधानतः शिक्षा-प्रचार का ही कार्य कर रही है। इस दशा में सम्मेलन से संबंधित होने से सम्मेलन की नियमावली के अनुसार उसको अन्य सामाजिक कार्यों के साथ सम्मेलन का योग्य आर्थिक भार भी उठाना पड़ता। यही कारण है कि जो लोग सम्मेलन के उद्देश, नियम, कार्य-प्रदेश आदि से बिल्कुल अतृप्त थे, उनसे अपनी बात स्वीकृत करा देने का सम्मेलन के कार्यकर्ताओं का आग्रह भरी समझ में उचित नहीं था।

ऊपर स्पष्ट कर ही दिया गया है कि, 'चा० हि० सभा' अभी तक प्रायः शिक्षा-प्रचार का कार्य कर रही है। सामाजिक कार्यों के

लिये उसने जो कुछ प्रयत्न किया वह प्रायः निष्फल गया। यही कारण है कि दोनों संस्थाओं के कार्य-प्रदेश में अंतर होने से 'चा० हि० सभा' के कर्गधारों ने उसको संमेलन की मातहत प्रांतीय सभा स्वीकृत कर आर्थिक एवं अन्य जिम्मेदारियों को उठाने में उसको असमर्थ पाया और उत्तर में बैसा निवेदित किया। इसमें 'चा० हि० सभा' ने एकत्र किये हुए पैसों की बात ही न थी, क्योंकि, यह पैसे तो पहले से 'कृष्णकुमार चा० विद्यालय' की संपत्ति बन गये थे।

उपर्युक्त परिस्थिति होते हुए भी राजस्थानी बंधुओं के आप्रह्व के मानकर संमेलन से संबंध जोड़ने के लिये इधर के अप्रगण्य व्यक्तियों ने 'बृहत् गुजरात-चारण-सभा' स्थापित की। परंतु जहाँ संमेलन का वर्षों से प्रचार एवं उसके कर्गधारों का निवास है, उस राजपूताने की ही प्रांतीय सभायें गिवा भारवाट प्रांतीय चारण-सभा के प्रायः निष्क्रिय रही हैं, वहाँ इस नवजात सभा से ठोस कार्य-शक्ति की आशा तो नहीं रखी जा सकती, परंतु फिर भी मैं विश्वास दिलाता हूँ कि, यह सभा अपने कर्तव्य का अनुरूप पालन करेगी।

मुझे उर है इस निवेदन से कोई यह मान लेता कि मैं संमेलन का विरोधी हूँ। परंतु वास्तव में मैं भी तो उसका एक नम्र मेक हूँ

और उसके प्रधान उद्देश-आंतरप्रांतीय जातीय संगठन के महत्त्व को पहिचान सकता हूँ। परंतु यह सब स्पष्टीकरण तो इसी लिये किया गया कि, संपादक महोदय के जो-जो विधान मुझे चर्चा-स्पद मालूम हुए, उनका निरसन कर 'चा० हि० सभा' के कर्गधारों का संमेलन के विषय में जो दृष्टिबिंदु प्रारंभ से आज तक है, स्पष्ट करना उसके मंत्री के नाते मेरा धर्म है।

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि, संपादक महोदय चारण जाति के एक रत्न हैं। अतः मैं यह मानने को तो हर्गिज तैयार नहीं कि, उन सदस्य बड़े आदमी ने उपर्युक्त आक्षेपार्ह विचार जानबूझकर प्रकट किये हैं। वास्तव में 'चा० हि० सभा' की आंतरिक परिस्थिति से अनभिज्ञ होने के कारण ही उन्होंने ऐसे विचार प्रकट किये हैं, उनमें कुछ ऐसा आ गया जिसका मुझे यह उत्तर देना पड़ा है।

इस निवेदन से संपादक महोदय या अन्य किसी बंधु का दिल दुखाने का मेरा बिल्कुल आशय नहीं। बल्कि मैं विश्वास दिलाता हूँ कि चाहे कहीं विचार-भेद हो, परंतु संमेलन को हानि पहुँचाने के कारणभूत तो 'चा० हि० सभा' कभी न होगी। संपादक महोदय मेरे गुरुजन हैं, मैं उनका सेवक हूँ और सदैव रहूँगा।

पिंगलमी परम्यतजी पायक,

मंत्री-चारण-हितचर्चक भायनबहा

[अनन्य जाति-सेवक बन्धुवर श्री पिंगलश्री भाई पायक भी०ए०, एल्-एल्०बी०-अंजी, श्री चारण-हितवर्द्धक सभा ने "चारण" के प्रथम अंक में प्रदर्शित सम्मेलन के राजकोट-अधिवेशन-संबंधी कुछ सम्पादकीय विचारों के लिये जो उपरोक्त भाव प्रकट किये हैं उनसे ज्ञात होता है कि उक्त सम्पादकीय विचारों से पायकजी एवं उनसे सहमत उधर के सम्मानित सजातीयों के हृदय-को कुछ ठेस पहुँची है और इसी लिये उन्हें यह स्पष्टीकरण अक्षरशः प्रकाशित करवाने का आग्रह करना पड़ा। उनके इस आग्रह को मान देकर अन्य आवश्यक लेखादि रोक हम इसे स्थान दे रहे हैं।

श्री पायकजी के लेख का व्यूरेवार उत्तर देने के लिये न तो स्थान है और न आवश्यकता है। इस स्पष्टीकरण के अनुसार ही बलुस्थिति

रही हो और हो एवं सम्मेलन के प्रति श्री पायकजी के समान ही उनके अन्य सहयोगियों की भी श्रद्धापूर्ण सक्रिय सद्भावना हो और कोई कारण नहीं है कि श्री पायकजी सदृश निर्मल-हृदय मज्जन के शब्दों पर विश्वास न-किया जाय, तो और अभीष्ट भी क्या था और है ?

हमें खेद है कि, अपने विचारों के कारण बंधुवर पायकजी को दुःख हुआ और इतने लंबे स्पष्टीकरण की आवश्यकता अनुभव हुई। आशा है, श्री पायकजी और उनसे सहमत सज्जन यह जानकर हमें क्षमा करेंगे कि प्रदर्शित विचार न केवल एक सम्पादक ही के थे प्रत्युत और भी कई प्रतिनिधि बन्धुओं के थे और उन्हें प्रकाशित करने में किसी प्रकार का मलिन हेतु नहीं था।

—सम्पादक]

सम्पादकीय टिप्पणियां

प्रताप-जयन्ती

कुछ वर्षों से देश के अनेक भागों में हिन्दू-सूर्य महाराणा श्री प्रताप की पुण्य जयन्ती उनके शुभ जन्मदिन ज्येष्ठ शुक्ला ३ के उत्साहपूर्वक मनाई जाती है। इस वर्ष भी यह पवित्र उत्सव विभिन्न स्थानों पर समारोह के साथ मनाया गया था। परंतु खेद के साथ कहना पड़ता है कि

मेवाड़ और खास कर उदयपुर में यह उत्सव जिस शान के साथ मनाया जाना चाहिये उस शान के साथ नहीं मनाया जाता। हमारे स्वागत से इसका मुख्य कारण उत्सव के राजकीय सहयोग का न मिलना ही है।

इन्दौर की स्वनामधन्या महारानी श्री आदि-त्याबाई की जयन्ती के अवसर पर कुछ वर्ष पूर्व हम इन्दौर में थे। उस समारोह के

और राव साहिबने कौनसा काम हाथ में लिया है वह उन्हीं के इन शब्दों से पाठकों को ज्ञात होगा—मेरे सामने अब केवल एक ही उद्देश्य है और वह है क्षत्रिय जाति का संगठन और उसमें शिक्षाप्रचार। अगर मैं इसमें सफल न होऊंगा तो भारत में रहना ही छोड़ दूंगा।

जगदम्बा राव साहिब के सदुद्देश्य में उन्हें सफल मनोरथ करे।

मेवाड़ के चारणग्राम

‘गतांङ्ग’ में, मेवाड़ के चारणग्रामों के संबंध में मेवाड़-चारण-सभा की ओर से जो आवेदन-पत्र मुसाहिब आला सा०—राज्य मेवाड़ की सेवा में पेश किया गया वह प्रकाशित हुआ है। मुना है इस आवेदनपत्र को प्राप्तकर मुसाहिब आला सा० ने श्रीमान् मेदपाटेश्वर की सेवा में यथोचित निवेदन किया और श्रीमान् मेदपाटेश्वर ने उक्त आवेदनपत्र में प्रकट किये अनुसार हेनिवाली अनुचित कार्यवाहियों पर अनभिरुचि प्रकट करके आवेदनपत्र में की गई प्रार्थनासुम्मार कुछ मन्कीक कर देने का उदारतापूर्ण आदेश प्रदान किया। फलतः देवेन्नु कमिश्नर पं० कमलाकरजी साहिब ने इस संबंध में उनसे तलब की गई सम्मति उपाधिकारियों के पास भेज दी है जिस पर विचार हो रहा है।

यदि उन्निर्धारित मंषाद सत्य हो और मेवाड़ी पं०पुत्रों पर हेनिवाले अन्याय का अन्त हो जाय तो उनके लिये मित्र मेवाड़ की चारणजाति ही

नहीं अखिल भारतीय चारणजाति श्रीमन्मेदपाटेश्वर की चिर कृतज्ञ होगी। श्रीमन्मेदपाटेश्वर के परमोदार महान् व्यक्तित्व से हमें आशा रखना चाहिये कि वे अपने वीरवदान्य पूर्वजों की मर्यादा का पालन करके चारणों के जो गांव सैकड़ों वर्षों से उनके अधिकार में हैं उन्हें केवल सनद न होने के बहाने से वापस लेने की निषेधाज्ञा शीघ्र प्रचारित कर यश एवं पुण्य के भागी बनेंगे।

श्री करनी-मन्दिर-पुष्कर, मथुरा

पाठक शायद जानते होंगे कि राजस्थानांतर्गत पुष्कर क्षेत्र में और संयुक्त प्रान्तान्तर्गत मथुरा पुरी में चारण जाति की ओर से बनाये हुए श्री जगदीश्वरी करनीजी के प्राचीन मन्दिर हैं जिन की देखभाल एवं माताजी की पूजा तीर्थों में रहनेवाले चारण जाति के तीर्थगुरु ब्राह्मणों के सिपुर्द है। ये मन्दिर बहुत प्राचीन होने से जीर्णोद्धार अवस्था को प्राप्त हो गये थे।

मथुरा के करनी-मन्दिर (विधाम घाट) का तो एक हिस्सा गिर ही गया था या गिरनेवाले था, इसलिये सम्मेलन के जोधपुर-अधिवेशन के समय तीर्थगुरु लालजी ने मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिये सम्मेलन से प्रार्थना की। उस पर विचार करके तीर्थगुरु को इस संबंध में चर्चा करने के लिये सम्मेलन की ओर से एक प्रमाणपत्र एवं रसीदबुक्के दी गई और चर्चा की रकम २०००० मुणरिदानजी कविया, जयपुर के पास जमा करने की हिसाबत की गई। प्रसन्नता की बात है कि

पर्याप्त चंदा इकट्ठा होकर अ० सा० सुरारिदानजी की देखभाल में इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हो गया है। इसके लिये अ० सा० सुरारिदानजी, तीर्थगुरु एवं वे सब सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने चंदा देकर इस सत्कार्य को सम्पन्न कराया।

मथुरा के इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हो जाने से सुना है, उसके तीर्थगुरु पर के समान काम में ला रहे हैं और उसी में रहना शुरू करके अपने घर मकान को किराये पर दे देना चाहते हैं। यदि यह सत्य हो तो तीर्थगुरुजी का यह व्यवहार बेजा है। आशा है, वे ऐसा न करेंगे और मन्दिर की मर्यादा को यथावत् बनी रखेंगे और इस संबंध में उन्हें कुछ अधिक कहने सुनने का मौका न आने देंगे।

पुष्कर के करनी-मन्दिर के जीर्णोद्धार का विचार तभी से शुरू हुआ जब सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन पुष्कर में हुआ था। परन्तु जोधपुर

-सम्मेलन तक इस संबंध में कुछ न हो सका। जोधपुर-सम्मेलन में फिर यह तैयार किया गया कि श्रीमान् बीकानेर-नरेश से इसके लिये प्रार्थना की जाय। तदनुसार सम्मेलन के अध्यक्ष-महोदय अ० सा० केसरीसिंहजी ने बीकानेर-नरेश के कोठा पधारने पर इस संबंध में रोबक अर्ज की। अध्यक्ष महोदय से आवश्यक दर्याफ्त के बाद प्रसन्नता पूर्वक प्रार्थना स्वीकृत करके श्रीमानों ने इस कार्य को सम्मेलन के अध्यक्ष महोदय के विचार-सहयोग से करने की आज्ञा आर्मी मिनिस्टर जनरल श्री हरिसिंहजी सा० सत्तासर, को उसी समय दे दी। उन्होंने आज्ञानुसार इस कार्य को चढ़ा तत्परता से किया और अभी गत ज्येष्ठ मास में अ० सा० केसरीसिंहजी को कोठा तार द्वारा सूचना दी कि मैं पुष्कर वमुक्त तिथि को पहुँच रहा हूँ, आप भी आ जायें तो देख लें कि अब क्या काम बाकी है। अतः अध्यक्ष महोदय ने पुष्कर पहुँच कर देखा कि मन्दिर का काम प्रायः सम्पूर्ण है।

* यह बात बिलकुल ठीक है। विगत वर्ष जन्माष्टमी पर कोयल (उत्तर गुजरात) के सम्भ्रांत चारण सुबक श्री केशरभाई बाटी मथुरा गए थे तब करनी-मन्दिर के दर्शनार्थ जाने पर उन्होंने वहीं ठहरने की इच्छा प्रकट की तो चौबेजी ने इन्कार कर दिया। ठीक इसी समय वे अधिक पैसे देनेवाले चारणेश्वर व्यक्तियों को मन्दिर में ठहरा रहे थे। यह देखकर केशरभाई ने राजकोट-अधिवेशन पर उक्त मन्दिर के जीर्णोद्धार के चर्चे में अपनी ओर से दो रुपये दिए गए थे इसकी याद दिलाकर उनके इस अनुचित व्यवहार के विषय में डाँट बताई तब उन्हें ठहरने दिया और यह बात किसी सम्भ्रांत चारण व्यक्ति के सम्मुख न करने की चौबेजी ने प्रार्थना की। सम्मेलन के पदाधिकारियों का चाहिए कि आइं दे वे भावुकता के जोम में ऐसे किन्हीं सुदूरस्थ जातीय स्थानों की मरम्मत के लिये उनके भोलेबाज़ ठेकेदारों को चंदा उगाहने की आज्ञा खूब सोच-विचार के पश्चात् प्रदान करें, अन्यथा उनकी प्रतिष्ठ को घच्चा लगेगा।

—सम्पादक, गुजराती विभाग

प्रायः इसलिये कि मन्दिर का जीर्णोद्धार तो पूरा हो गया और साथ ही अहाते का कोट व उस में यात्रियों के ठहरने के लिये सुविधाजनक पांच कमरे भी बन गये हैं। परन्तु स्नान के घाट व भोजनशाला का मकान नहीं बना। इनके लिये श्रीमान् श्रीकानेर-नरेश्वर से प्रार्थना की गई है। आशा है कि यह शेष कार्य भी उनकी उदारता से शीघ्र सम्पन्न हो जायगा। जगद्वा अपने इन अनन्य भक्त नरेश्वर का चिरायु करे।

श्री भूपाल-चारण-छात्रालय, उदयपुर
द्वितीयांक में इस छात्रालय संबंधी जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसमें, छात्रालय में मीटिंग होकर कई प्रस्ताव पास होने का उल्लेख है। उन सभी प्रस्तावों का अमल में लाना जातिहित की दृष्टि से परमावश्यक है। परन्तु मौजूदा हालत में यह बात केवल सैक्रेटरी सा० की इच्छा पर निर्भर है। उक्त प्रस्तावों में एक प्रस्ताव छात्रों की संख्यावृद्धि के लिये छात्रालय की भोजन-प्रांत में दो रुपये माहवार की कमी करने का था। इसके लिये अरसे से सैक्रेटरी सा० को कहा जाता रहा। परन्तु उनके ध्यान में यह बात नहीं आती थी। अब सौभाग्य से उन्होंने इस प्रस्ताव का तो अमल शुरू कर दिया है जिससे छात्रालय खुलते ही इस वर्ष मेवाड़ छात्रों की संख्या करीब तिगुनी हो गई है। सैक्रेटरी सा० को धन्यवाद।

दूसरी प्रकार यदि सैक्रेटरी सा० बहुमत के द्वारा निर्णीत नियमों के अनुसार छात्रालय का

सब कार्य होने दें और मेवाड़-चारण-सभा को नियमानुसार संगठित होने दें तो उनका तो कुछ भी अहित नहीं है और जाति का हित स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे। क्या वे ऐसा करेंगे? सुना था, उक्त मीटिंग के प्रस्तावानुसार छात्रालय का अब तक का विवरण एवं हिसाब छपवाने के लिये सैक्रेटरी सा० तय्यार करवा रहे हैं। अच्छा हो यह खबर सच निकले।

“चारण” का सम्पादन

इस अंक से ‘चारण’ का प्रथम वर्ष समाप्त होता है। इस वर्ष में ‘चारण’-समय पर नहीं प्रकाशित हो सका इसके लिये प्रकाशक को तो दुःख होगा ही हमें भी हार्दिक दुःख है। प्रथमांक में एवं बाद में भी जो २ त्रुटियाँ सम्पादन-संबंधी रही हुई पाठकों को ज्ञात हों उनके लिये हम सविनय क्षमा चाहते हैं।

प्रथम वर्ष के इन चार अंकों के हिन्दी विभाग का जैसा भी कुछ हो सका सम्पादन कर अब यह कार्य किसी सुयोग्य-उत्साही विद्वान् के हाथों में दिये जाने के अमिप्राय से एवं अपनी परिस्थिति के कारण इस कार्य का त्यागपत्र सम्मेलन के अध्यक्ष महोदय की सेवा में हमने भेज दिया था और इसकी सूचना प्रधानमंत्रीजी को भी दे दी थी; परन्तु उन्होंने इस्तीफा मंजूर नहीं किया और गुजरगती-क्रियावादी एवं राज-स्थानी स्नेही-मज्जनों ने आप्रह्न किया कि अभी हम इस काम को न छोड़ें। अब तक हम उन मित्रों के शृंगारण आप्रह्न को स्वीकार करने में

अपनी अराम्यता प्रकट करते रहे हैं, किन्तु सम्मेलन-पदाधिकारी लिखते हैं कि पत्र बंद हो जायगा अतएव हमको अपनी अमुविधा एवं अयोग्यता की ओर दुर्लक्ष्य कर कुछ काल तक सम्पादन-कार्य करते रहने की आज्ञा मानने को विवश होना पड़ रहा है। इस परिस्थिति में आप्रहृक्ता महानुभावों से यदि हम यह आशा करें कि जो राजन दण्ड कार्य में तन-मन से सहायता दे सकें वे लेखादि सामग्री शुद्ध सुंदर रूप में लिखकर समय पर भेजते रहें और जो धन से सहायता दे सकें वे पत्र को गर्वीय सुंदर बनाकर समय पर निकालने की व्यवस्था के लिये धन से सहायता करें, तो कदाचित् अनुचित न होगा। जो लोग इस कार्य के महत्त्व को जानते हैं, इस प्रकार सहायता देने को तय्यार न हों तो पत्र जैसा चाहिये वैसा और समय पर नहीं निकल सकेगा और इसका ठोप आवेगा हम सम्पादकों के धिर पर। अतः सब सुयोग्य जाति-हितैषियों से तादर सविनय प्रार्थना है कि जिससे जैसी वन पड़े पत्र के लिये सहायता दें। इस प्रसंग पर हम यह भी सूचित कर देना उचित समझते हैं कि आगामी वर्ष से पत्र के नियमित एवं शुद्ध-सुंदर रूप में निकलते रहने का प्रयत्न से प्रबंध कर लिया है। अतः यदि इस समय हैं उतने भी प्राहक बने रहें तो आशा है आगामी वर्ष से पत्र के अनियमित प्रकाशन की शिक्रयत न रहेगी और उसका सम्पादन भी सुचारु रूप से होगा।

इस प्रसंग पर हम अपने सुयोग्य एवं विद्वान् सहकारी श्री सैतसिंहजी सा० मिश्रण और श्री शुभकर्णजी सा० कविश एम्० ए०, एल्-एल्० वी० को हार्दिक धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझते हैं। श्री सैतसिंहजी के तो हम अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने गुजराती-विभाग का इस प्रकार सुन्दर सम्पादन करने के साथ २ हमारे काम में भी प्रेमपूर्वक बहुत परिश्रम उतारा।

मारवाड़ राजकार्य में चारणों का प्रतिनिधित्व

जमाने की रफ्तार को देखकर हमारे मरेशण्ण भी प्रजा को राजकार्य में हिस्सा देने के लिये योजनायें बना रहे हैं। कई राज्यों में मलाहकार मन्त्रियों कायम हो चुकी हैं जिनमें प्रजा-प्रतिनिधियों को राजकाज में सीमित सलाह देने का अधिकार दिया गया है।

जोधपुर के सेंट्रल एड्वाइजरी बोर्ड (केन्द्रीय सलाहकार सभा) में चारण माफीदारों के प्रतिनिधि की हैसियत से श्री० शुक्रदेवजी किनिया, वी० ए०, एल्-एल्० वी० को लिये जान की खबर गतांक में प्रकाशित हो चुकी है। नीचे हम उन सज्जनों के नाम देते हैं जिनको भी सरकार ने परगना-सलाहकार सभाओं में चारण माफीदारों के प्रतिनिधि की हैसियत से चुना है—

प्रतिनिधि	परगना
श्रीमान ठाकुर साहिब देवीसिंहजी	नागौर
चारदठ, मुँदियाड	

श्री० लक्ष्मीदानजी सा० बारहठ, जोधपुर

मोरटहूका

श्री० बदरीदानजी सा० कवैया, जंतरण

बासणी

श्री० शंकरदानजी सा० बेगमा, सीवाणा

सरवडी

उपरोक्त प्रतिनिधियों के चुनाव के लिये हम
ने जोधपुर सरकार को धन्यवाद देते हैं और
जाना करते हैं कि शेष परगनों में भी इसी

प्रकार चारण-प्रतिनिधि लेने की कृपा की जायगी।

प्रतिनिधि महाशयों को उनकी नियुक्ति पर
हम बधाई देते हुए आशा करते हैं कि वे राजा
और प्रजा के हित को, जो हमारे विचार से
अभिन्न है, ध्यान में रखते हुए इस प्रकार से
कार्य करेंगे कि वे लोककल्याण-सम्पादन में अधिक
से अधिक महायक हो सकें।

—सह० सम्पादक

बधाई

बड़े ही हर्ष का विषय है कि अब राजस्थान में भी चारण छात्र उच्च शिक्षा की ओर
बढ़ रहे हैं। इस वर्ष एम०ए० कक्षा से एन्ट्रेंस कक्षा तक जो चारण छात्र उत्तीर्ण हुए हैं
उनके नाम नीचे प्रकाशित किये जाते हैं। इन छात्रों को उनकी सफलता पर हम हार्दिक
बधाई देते हैं।

छात्र-नाम

कक्षा

(१) श्री सत्यदेवजी आड़ा, पांजरेदिया (मारवाड़)

एम०ए०

बी०ए०, एल्-एल्०बी०,

(इतिहास)

(बरसी-हिन्दू-विश्वविद्यालय)

(२) श्री० रामरामजी बारहठ,

बी०ए०

छाटा उदयपुर (किशनगढ़)

(महाराजा कॉलेज, जयपुर)

(३) श्री० नाथिदानजी सद्दिया, एकलव्य (सीतामढ़)

बी०ए०

(मिथिलम कॉलेज, इन्डौर)

(४) श्री० उदयगिहजी दधिकदिया,

एल्-एल्०बी०

बासणी (मारवाड़)

(प्रथम वर्ष)

(बरसी-हिन्दू-विश्वविद्यालय)

(५) श्री० मोहनसिंहजी चारहट, आंगदोस (मारवाड़) (जसवन्त कॉलेज, जोधपुर)	एफ० ए०	२
(६) श्री० कैलाशदानजी उज्ज्वल, ऊजळां (मारवाड़) (जसवन्त कॉलेज, जोधपुर)	एफ० एस० सी०	२
(७) श्री० शुभकर्णजी आडा, पांचेटिया (मारवाड़) (जसवन्त कॉलेज, जोधपुर)	एफ० ए०	३
(८) श्री फतहसिंहजी कविया, वासणी (मारवाड़) (हर्षद कॉलेज; कोटा)	एफ० ए०	—
(९) श्री० वी० डी० चारण	एफ० ए०	२
(१०) श्री जेठार्यभिमिंहजी सांद, मिरगेसर (मारवाड़) (महाराणा कॉलेज, उदयपुर)	एन्ट्रेस	३
(११) श्री० के० डी० देया, एंग्लो वैदिक हाइस्कूल, जोधनेर (जयपुर)	एन्ट्रेस	१
(१२) श्री० आर० डी० चारण, एंग्लो वैदिक हाइस्कूल, जोधनेर (जयपुर)	"	२
(१३) श्री पावूदानजी, एंग्लो वैदिक हाइस्कूल, जोधनेर (जयपुर)	"	३
(१४) श्री० चण्डीदानजी दधिवाड़िया, वासणी (मारवाड़) (दरबार हाइस्कूल, जोधपुर)	"	३
(१५) श्री० रामसिंहजी (दरबार हाइस्कूल, जोधपुर)	"	३
(१६) श्री० पृथ्वीमिंहजी,	"	३
(१७) श्री० एल० डी० चारण, (शाहूल हाइस्कूल, बीकानेर,	"	३
(१८) श्री० वी० डी० चारण, (मोहना मूलचन्द हाइस्कूल, बीकानेर)	"	३
(१९) श्री० दुर्होसिंहजी भादा, लसाड़िया (अजमेरा) (गवर्मेण्ट हाइस्कूल, अजमेरा)	"	३

उपरोक्त नामावलि में जोबनेर-हाइस्कूल से उत्तीर्ण छात्र, स्व० दीनवीर स० बालाबहाजी पालवत (हणूतिया-जयपुर) की चारण छात्रों की विधार्थी इस स्कूल को भी हुई दश हजार रुपयों की निधि के आभारी होंगे।

एन्ट्रेंस से नीचे की क़स्मों में विविध विद्यालयों से उत्तीर्ण अनेकों चारण छात्रों में श्री भूपाल-चारण-छात्रालय, उदयपुर के विद्यार्थी श्री भवानीसिंहजी टापरिया भी बभाई के पात्र हैं जो अपनी क़ास के मेवाड़ भर के सब छात्रों में सर्व प्रथम उत्तीर्ण हुए हैं।

—सह० सम्पादक

* इस वपं इतनी अधिक संख्या में हमारे राजस्थानी छात्र बंधु उच्च शिक्षा की विविध कक्षाओं में उत्तीर्ण हुए हैं, यह देखकर हम परप्रांतीय चारणों का हृदय भी मारे ठप के फूल नहीं मृमाता। परंतु उपर्युक्त नामावलि में जिन बंधुओं ने अपने-अपने नाम के पीछे अपना-अपना गोत्र-अन्त न लिखकर 'चारण' शब्द का व्यवहार किया है, उनका ध्यान हम इस ओर आकृष्ट करना चाहते हैं कि 'चारण' शब्द हमारा जातिबोधक है, परंतु अपने नाम के साथ उसका व्यवहार करना अपनी संस्कृति से अनभिज्ञता प्रकट करना बल्कि इससे आगे बढ़कर दुःखपूर्वक कहना होगा कि अपनी अकल का दिवाला फूँकना है। हमारी जाति का बोधक मानवाचक शब्द राजस्थान में 'वारहठ' एवं गुजरात-काठियावाड़ में 'गडवी' है, अतः जिनको अपने नाम के साथ अपना गोत्र लिखना पसंद न हो वे देशानुकूल 'वारहठ' या 'गडवी' शब्द का व्यवहार कर सकते हैं, परंतु 'चारण' शब्द लिखकर तो वे अपने-आपको तिरस्त्रित करते हैं। अधिक दुःख तो इस बात का है कि, ये छात्र-बंधु ही नहीं, धात्रधर्म, धात्रियमित्र आदि पत्र-पत्रिकाओं में लेख-कविता लिखनेवाले हमारे कतिपय प्रतिष्ठित सजातीय बंधु भी अपने गोत्र या मारी जाति के मानवाचक 'वारहठ' शब्द से उकलाकर अपने नाम के पीछे 'चारण' शब्द का उच्छ्वास लगाते हैं और इस तरह राजपूतों को उनकी संस्कृति का बोध कराने हुए अपनी संस्कृति के बारे में अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हैं! आशा है, हमारे उपर्युक्त पदे-लिखे बंधु इस दिग्दर्शनी को ध्यानपूर्वक पढ़कर आइये वसी भूल न होने देंगे।

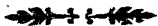
—सम्पादक, गुजराती विभाग

દેથાકુળ-ઉજાળક



સાહેબી દેવી શ્રી આંબુબાઈ દેથા, મીઠી (થરપારકર)

શ્રી નીખરાજી દેથા (ગદડાં) ના ગણકુલ્યથી]



(‘ રાજ્યી ભગ્યાછે ભાણ, શૈક્ષિતને આંગણે. ’ એ રાગ)

ચારણે ચતુર મુજાન, જાયા જગદંબના;

પડી હાકલ ને થળે સાવધાન, જાયા જગદંબના. રેક

હાકલ પડી છે માતા ભારતીના ભાવિની;

મરદાઈથી આવળે મૈદાન, જાયા જગદંબના.

કજિયા-કંકાસને જડમાંથી કાઢળે;

ઐક્ય સાધી ખેતો બળવાન, જાયા જગદંબના.

ત્યાગ-ભાગને તમે આપશો તિલાંજલી;

(તો) વધશે વડીલોથી માન, જાયા જગદંબના.

વખત વિચારીને વ્યસનોને ત્યાગશો;

(તો) ખતશે પ્રજા બળવાન, જાયા જગદંબના.

પાપી પ્રથા તણ પ્રેત-ભોજનની;

દેળે વિદ્યાલયમાં દાન, જાયા જગદંબના.

બિરુદ તમારું જે બંધુઓ વિચારશે;

(તો) સ્વર્ણકૂલે થશે સન્માન, જાયા જગદંબના.

લોહીનાં આંસુ બાળવિધવાનાં લૂંછીને;

સુખનાં શોધળે સ્થાન, જાયા જગદંબના.

આવડ, ખેડલ, આધ નાગલ, વરવડી;

દશે અભય વરદાન, જાયા જગદંબના.

અભેસિહ રામભાઈ ખળેલ, કોંઈ



કવિતા પ્રચલિત દેશભાષાઓમાં કરવા માંડી.* કેમકે દેશના જે ભૂભાગમાં રાજકીય હલચલ મચી રહી હતી, ત્યાં જ આ બંને કામોનો વસંતોટ હતો, અને એ ભૂભાગમાં જ હગલગ એ સમયે ઉપર્યુક્ત અપભ્રંશ કે પશ્ચિમી બોલીમાંથી ઉત્પન્ન થઈને વજ, ડિંગળ (રાજસ્થાની) અને જૂની મુજરાતીનું સાહિત્ય પાતાનો શૈલવકાળ વ્યતીત કરી રહ્યું હતું. દેશની સ્થિતિ પ્રમાણે એ ભાષાઓના સાહિત્યનો વિકાસ થયો. બીજા હલચલના એ સુખમાં શીરગાથાઓની રચનાઓ સંભવિત હતી.

* પ્રચલિત લોકભાષામાં રચાયેલી ચારણોની કવિતાઓ અધિક સુભોધ અને હૃદયગ્રાહી હોવાથી સંસ્કૃત ભાષાના પાઠશાળા કવિઓનો રાજસ્થાનમાં ઓછો આદર થવા લાગ્યો, તેથી તેઓ ચારણોની નિંદા કરવા લાગ્યા હતા. હરિ નામક એક કવિએ 'સુખાપિત-હારણલિ' નામક સુભાષિત શ્લોકોનો સંગ્રહ (પિટર્સન, બીનો રિપોર્ટ, પૃષ્ઠ ૫૭-૬૪) કરેલો છે, તેમાં મુજારિ કવિના નામથી એક શ્લોક છે:

૧. ચર્ચામિશ્વરણનાં કિતિ રમણ !

૨. પરાં પ્રાપ્ય સમોદલીલ !

મા કીર્તિઃ સૌવિદલ્લાનવ

મર્ણય વૈવેપ્રેતવાણીવિલાસાન્.

ગીત સ્થાવર ન નામ્ના-કિમ્પિ

રુપવેરય યાવત્પ્રસાદી-

શાલીકેરેવ વાગ્દેવોઃ ધવ્રલયતિ

યદોમુદ્રયા-રામમદ ॥

આશયઃ કોઈ રાજ ચારણોની લોકભાષાની કવિતાઓથી પ્રસન્ન થઈને સંસ્કૃત કવિઓનો

સાહિત્યની સર્વતોમુખી ઉન્નતિ એ અંશાંતિના કાળમાં થઈ શકે તેમ નહોતી. અને એ વાંતથી પણ સૌ કોઈ વાકફ છે કે, જે સમયે કોઈ દેશ લગાઇઓમાં અસ્ત હોય છે, તે વખતે સુદનો જ જ્વનિ પ્રધાનરૂપે સંભળાય છે. એ કાળમાં વીરશાસિની કવિતાઓની ગૂંજ દેશભરમાં કાને પડે છે. એ સમયે અન્ય પ્રકારની જે કાંઈ રચનાઓ થાય છે, તે સુરક્ષિત ન રહેવાને લીધે જલ્દી નષ્ટપ્રાય બની જાય છે. દેશની રક્ષાનો અને સુદ કરવાનો ભાર રાજપૂત જાતિ પર હતો, એટલે તેની સાથીદાર ચારણ જાતિના કવિઓએ ઉપર કહેવામાં આવ્યું છે તેમ, તેમને પ્રોત્સાહન આપવા માટે બહુધા વીરરસની કવિતા એ વખતે લખી હતી. અને તે માટે તેમણે માંખમાં નાનો, પરંતુ સામાને તત્કાળ યાદ રહી જાય, અને જેના

કે, હે મહીપાદ ! ચારણોની અર્ચાઓથી ઘણો આનંદ મેળવીને (સંસ્કૃત) કવિઓનો અનાદર ન કરો. કેમકે તેઓ જ કીર્તિરૂપી નાથિકાના રક્ષક અને રાજાઓ સાથે તેનો મેળાપ કરાવનાર છે. બુદ્ધિ, રામચંદ્રનું એક પણ 'ગીત' અથવા 'ખ્યાત' નથી. પરંતુ વાલ્મીકિની કૃપાથી જ રામચંદ્ર પોતાના યશની છાપદાર પૃથ્વીને અલંકૃત કરી રહ્યા છે. અર્થાત્ ચારણોનાં (દેશભાષાનાં) 'ગીત' અને 'ખ્યાત' અસ્થાથી છે, અને સંસ્કૃત ભાષાના કવિઓનો સંસ્કૃત-વાણીવિલાસ અમર રહે છે.

મુજારિ કવિ પ્રસિદ્ધ 'અનર્ષાપવ' નાટકનો કર્તા છે. એનું ઉપનામ 'બાલ વાલ્મીકિ,' એના પિતાનું નામ 'ધર્માન' ભટ્ટ અને માતાનું નામ તંત્રમતી હતું. એનો સમય

અત્રિતિમ શબ્દનાદને લીધે તેમાં સમયલક્ષા ઉપદેશની ઘણા કાળ સુધી અસર રહે, તેવા 'દુહા' જાંદને પસંદ કર્યો હતો. કેમકે કોઈ પણ ભાષાનું શ્રુતિનિષ્ઠ સાહિત્ય જ્યારે ત્રિપિન્દ્ર બદ્ધ બની જોડાયેલાનું તરત ધારણ કરે છે, ત્યારે તેમાં સર્વપ્રથમ નાનાં નાનાં વૃત્તો કે જોડે લખાય છે. એ રીતે વૈદિક ટાળ પછીની સંસ્કૃત ભાષામાં પહેલવહેલો અનુષ્ટુપ્ સદૃશ નાનો શ્લોક વાંઘીકિંચે લખ્યો, અને એ શ્લોક સંસ્કૃત ભાષામાં રાત્ર, પ્રેમ, વહેવાર સમજ આદિ પ્રત્યેક મનુષ્યના હૃદયને સ્પર્શે એવા ભાવોનાં દુઃખકા ગીતોનો જન્મ થયો. પ્રાકૃત ભાષામાં આવી જાંદની ગાથાએ તથા દુહાએ અને અપભ્રંશમાં એકલા દુહાએ એ સ્થાન લીધું. દુહો એટલે અપભ્રંશ, પ્રજા, ડિંગળ (રાજસ્થાની) અને જૂની ગુજરાતી ભાષાનો જોડતો કાવ્ય-મય લોકાદ્યગાર. દુહાનો પ્રભાવ દારકાંથી મજબૂતિ પર્વત જ નહિ. પરંતુ ઠેક જંગળા સુધી હતો. ૨૫૦ મહામહોપાધ્યાય દરબ્રહ્મા શસ્ત્રીના 'વૈદ્યગ્ન કો વેદા' માં જંગળાની જોડવાળા અપભ્રંશ દુહા મળી આવે છે. અને તેમના કહેવા મુજબ ઠેક નવમી, દશમી સદી અને તેથી થોડા કાળના એ જોડો છે.

'દુહા' નું નામ કોઈ સંસ્કૃત ભાષાના અભિમાનીએ 'દોષક' બનાવ્યું છે, પરંતુ તેમાં શાબ્દિક અમાનતાં સિવાય બીજી કંઈ સાર જણાતો નથી. સંસ્કૃતમાં 'દોષક' નામનો એક જુદો જ જન્મ છે. 'દુહા' પદની નિરૂક્તિ 'જે' સંખ્યા પરથી થાય છે. જેમ એકાદ અને છપ્પ (પદ્મપદી) ની 'ચાર' અને 'જ' સંખ્યા છે, તેમ દો-પદ-દો-પદ થા દો-ગાથા. મેક્ષુગાથામાં 'પ્રવચ્ચિન્તામણિ' ગ્રંથમાં એક સ્થળે પ્રાકૃતનો 'દોષક' પણ આપ્યો છે, પરંતુ તે દુહા જન્મમાં જ છે :

પદ્ધિલી તાલ ન મનુહરદ,

ગોરી મુદ્દ કમલસસ ।

અદિદ્વિ પુનિ ઉત્તમરે,

પદ્ધિપગલી ચંદસસ ॥

દુહાનો પ્રાચીન પ્રયોગ હરિભદ્રચરિત્રે અને ધન્યાલોકના રચયિતા આનંદવર્દને કરે છે. હરિભદ્રચરિત્રે સમય વિ. સં. ૧૫૭૭-૮૨૬ સુધીનો અને આનંદવર્દનેનો સમય વિ. સં. ૯૧૧-૯૩૬ સુધીનો ગણાય છે. વિ. સં. ૯૬૦ માં દેવસેન નામક એક જૈન ગ્રંથ ઇર્ધ ગયા. તેમણે 'ઘાવકાનાર' નામક એ ગ્રંથ દુહાઓમાં બનાવ્યો હતો. તેની ભાષા અપભ્રંશની મર્યાદા બહારની અને ક્યાંક ક્યાંક પાછળથી કાવ્યભાષા તરીકે પ્રચલિત પદ્યોની બોલી સાથે બિલકુલ મળતી આવે છે. એક દુહો ઉદાહરણ તરીકે લઈએ :

જો જિણ-સાસણ માધિયડ

સો મદ્દ કહિયડ રાણ ।

જો પાલે સડ માવ કરિ

સો તરિ પાવડ પાઠ ॥

ઉપર કહેવામાં આવ્યું છે તેમ દશ ગ્રંથ પછીના ચારણ કવિઓએ સંસ્કૃત ભાષાને સર્વાંશ પ્રચલિત લોકભાષાઓમાં કાલ્પવા માંડ્યાં. એ કાવ્યોની ભાષા સાધારણ રીતે કેવી હશે, તેનું આ દોહાની ભાષા ઉપર અનુમાન કરી સકાય છે.

વિ. સં. ૧૦૩૬ માં મુગરાજ સોલ્લ (વિ. સં. ૧૦૧૭-૧૦૫૨) ને હાથે કાટની સગણમાં. વીરગતિ પામનાર કવિ દશનો રાજ લાખો ફૂલાણી તેની અદ્વિતા દાનશીલતા અને કાવ્યપ્રેમને માટે ચાર

સાહિત્યમાં ખૂબ પ્રસિદ્ધ છે. ચારણ કવિઓએ
એલા એના પવાડા, ગીત, છંદ અને દુહા
પ્રસિદ્ધ છે, પરંતુ તે કંઠોપકંઠે ઊતરી આવ-
તાથી તેમનું અત્યારે ડિંગળ-સ્વરૂપ આવું થયું
કે:

ગણા પુત્ર સમુદ્ર કા, ફૂલ ધરે અવતાર ।

તરવૌ મોતી ચુમે, લગ્ના રે દરવાર ॥

× × ×
લગ્નાળી હીરે જડી, સુરત પચૌળી ।

લગ્નમ્ હંદો પાતશા, લાલો ફૂલૌળી ॥

ચારણો પાસે પાદપૂર્તિઓ કરાવનાર અને
તેમનાં હૃદયોર્મિથી રચાયેલ કાવ્યોના રસ
કુટનાર એ લાખો ફૂલાણી સ્વયં એક ઉત્તમ
કવિ હતા. મૂળરાજ સાથેની લડાઈમાં કંથ-
કાટના કિલ્લામાં ધેરાધ જતાં તેણે માનવ-
જીવનના વિવિધ લાવો વ્યક્ત કરતા અનેક
અમોલ દુહા કેહ્યા હતા. જૈનાચાર્ય મેરુતુંગે
સંવત ૧૩૬૧માં રચેલ ‘પ્રવંચ-ચિંતામણિ’
નામક સુપ્રસિદ્ધ ગ્રંથમાં લાખાએ તે વખતે
કહેલ એક દુહો આવી ભાષામાં મળી આવે
છે:

લગ્નયા તાવિઠ જહિં ન કિંઠ,
લગ્નચઠ મળઈ નિપટ ।

ગણિયા લગ્નમ્ દીઠહા,
કે રહક અહવા અટ્ટ ॥

(કુશળ લાખો કહે છે કે, ઉદય પામતા
રાત્રીને જો તપાંગ્યો (દખાંગ્યો) નહિ તો
(આપણને) ગણ્યાગાંડ્યા દિવસો (જીવિત રહેવા
માટે) મળે છે. કાં તો દસ અથવા આઠ.)

લાખાના એ દુહાઓને આજે કુશળ અને
કોશિયાવાડમાં ચારણોને મોટે આવા સ્વરૂપે
સાંભળીએ છીએ:

પ્રથમ કચ્છી ભાંપાની જાંટવાળા એ દુહા
લખ્યો:

જટે તમી વડ છાંય, અટે ખોડી ખંભ થિયાં;
લખી કર કર ખાંય, અટે ચૂડાવારિયું.

× × ×
એક દિથે, દુલ્હા લિથે, (આંઉ) ફેકરા ડિ’ કહાં;
અલ્લા ! એા ડિ’ દ, લાખો ખારક થિયાં.

દ્વે સોરડી અને ડિંગળ ભાંપાની શબ્દ-
જાંટવાળા એ દુહા લખ્યો:

લાખો કે’ ધુ’ ખારિયો, લીસી છીપરિયાં;
હાથ હિલોળે પગ ઘસે, ગહુકે ગારલિયાં.

× × ×
જેડા સખ સરાણિયાં, એડા નહિ રાણા;
એક તાણે ખીજું ચાકવે, ઝડ લાગી નેણાં.

લાખા ફૂલાણી અને મૂળરાજ સોલંકીની
એ લડાઈમાં લાખાના ભાણેજ અને મૂળરાજના
ઓરમાન ભાઈ રાખાવશે ભાણેજ અને ભાઈનો
અપ્રતિમ ધર્મ બળતી મરતી વખતે પેણું
પોતાના મામાની આંખોને મેમળાઈથી બચાવવા
માટે કટાર કાઢવા કમર પરે હાથ નાંખ્યો,
પરંતુ કટારને બદલે આંતરડાનો લોચો હાથમાં
આંખો; તે લઈ સમળી ઉપર ફેંક્યો. સમળી
લક્ય મળતાં જોડી ગઈ; અને મામાની આંખો
બચી ગઈ એ પ્રસંગને અમર કરતો તે કાળના
કાઠિ ચારણ કવિએ કહેલો એક દુહો અત્યારે
આવા સ્વરૂપે સાંભળવામાં આવે છે:

કરે ગો કાટાડી, કરે ગો કાંચોળાં ભણી;
વગ કોઈ ના વણસી, રણ ભડતે રાખાશની.

ચોદમી સદીમાં રચાયેલ ‘પ્રવંચ-
ચિંતામણિ’ ગ્રંથમાંથી ઉદાહરણ રૂપે આપેલ

(હે આણુંદ ! બિંબ (ફળ) જેવા અધર ઉપર દાંત કરેલો ધા કેવો શોભે છે ?-જાણે કે, પિયુએ નિરૂપમ રસ પીને ખાડીતા (રસ) ઉપર (બીજો કાઈ પી ન જાય તેટલા માટે) મિહોર મારી છે !)

એ વ્યાકરણમાં ઉદાહરણ રૂપે ચારણુ વેઓના જ અધિકતર દુહાઓ લેવામાં આવ્યા ઉદાહરણ તરીકે:

एति घोड़ा एह थरि,

एति निसिआ खग ।

एतु मुणीसिम जाणिब्रद,

जो न विवाहइ बग ॥

(આ ઘોડા તે જ છે, સ્થળ પણ તે જ છે, અને મ્યાનમાંથી કાઢેલી આ નિસ્તિંશ અથાત્ શત્રુઓનું રક્તપાન કરનાર તલવારો પણ તે જ છે. એવા આ યુદ્ધક્ષેત્રમાં જેમણે પોતાના ઘોડાઓની વાધ ખેંચીને તેમને (શત્રુ પર હુમલો કરવા માટે) તેજ કર્યા નહિ; તેમને પહેલાંથી જ શત્રુતુલ્ય સમજવા લેખએ)

આ દુહાને મળતો ભાવ ચારણીને મોટી મોલાતા નીચેના એક દુહામાં પણ લેવામાં આવે છે:

मल्ल घोड़ा वज्रवंकड़ा, दुल्ल भांधो दुधियार;
आं घोड़ोंमां जींकेवा, मण्णो दुकड़ी आर.

हु कंतहो बे दोमड़ा.

हंम्ल म शंतहि आल ।

केन्हो हउं पर उज्जरिअ,

जुज्जानओ करवाल ॥

(હે સખી ! મારા પતિમાં જે દોષ છે.

(સખી તેને તેમ કહેતાં રોકે છે કે, એવું) વધા (આળ) જોલીશ (અંખ) નહિ. (તે જે દોષ ક્યા ? એ સ્ત્રી જવાબ આપે છે :) તેના દેતાં દેતાં (દાત્ દેતાં) ફક્ત હું બચી (જિગરી); અને યુદ્ધમાં લડાઇ લડતાં લડતાં (જૂઠતાં) કેવળ તલવાર જાચવા પામી છે !)

એ વ્યાકરણમાં ઉદાહરણ તરીકે લીધેલ ચારણુ કવિઓના કેટલાક દુહાઓ તો આજે પણ ચારણીને મોટે તેના વિકૃત રૂપે સાંભળીએ છીએ. ઉદાહરણ તરીકે:

मल्ला हुआ तु मारिआ,

बहिणि महारा कंतुं ।

लज्जेअन्तु वयसिअहु,

जइ मग्गा घर एतु ॥

(હે બહેન ! મારા પતિ યુદ્ધમાં કામ આવ્યો, તેને હું લડું થયું સમજું છું. કેમકે લે તે રણાંગણમાંથી ભાગીને ઘેર પાછો આવત તો (તારા જેવી) સખીઓ મને (તે બદલ) મહેણું મારીને લલિત કરત.)

આ દુહો આજે આવા રૂપે સાંભળવામાં આવે છે:

ભાગે તું મંત કંથડા ! તું ભાગે મું ખોડ;
સરખા-સરખી સાહેલિયું, તાળી દે મુખ મોડ.

वायसु उद्भवन्तिआ

। पिउ दिट्टउ सहसत्ति ।

अद्धा बलया सहिहि गय,

अद्धा पुट्ट तटत्ति ॥

(એક વિયોગિની સ્ત્રી કાગડાને ઊડાડવા લાગી કે, મારો પિયુ આવતો હોય તો ઉડી

જાળના જૈન વિદ્વાનોના પ્રથેમાં ઉપર પ્રમાણે
જો કેશણે ઉલ્લેખ મળે છે, પરંતુ જૈન
વેદાનોમાં થણા કાગ સુધી દેશની પ્રચલિત
ભાષાથી જૂની ભાષા લખવાનો રિવાજ રહ્યો છે,
તેથી તેમણે જૈની ભાષામાં એ દુહા સંગૃહીત કરેલ
છે, તેવી ભાષામાં જ એ દુહા ચારણ કવિઓએ
લખ્યા હશે, કે કેમ તેનો સંદેહ રહે છે. પરંતુ તે
સિવાય બીજો આધાર ન હોવાથી આપણે એ
ઉલ્લેખો પર સતોપ માનવો પડે છે. જો કે એ
દુહાઓનાં પંદરમી સદી પછીનાં રૂપાંતરો તો વિપુલ
સંખ્યામાં પ્રાપ્ત થાય છે, અને તેનાં થોડાંક
ઉદાહરણ ઉપર આપવામાં પણ આવ્યાં છે.

હેમચંદ્રાચાર્યે તેમના પ્રાકૃત વ્યાકરણમાં
ઉદાહરણ તરીકે ચારણ કવિઓના જે દુહા
આપ્યા છે, તે બધા તેમના સમકાલીન કવિ-
ઓના નથી. કેમકે એ ઉદ્ધરણ માત્ર છે. અને
ઉદ્ધરણ બહુધા પોતાનાથી પ્રાચીન લેખકો કે
કવિઓની કૃતિઓમાંથી લેવામાં આવે છે.
હેમચંદ્રાચાર્યનાં વ્યાકરણનો સમય ખારમી સદી
છે. ત્યાર પછી પણ 'ચારણો રો પીહર' નામથી
પ્રસિદ્ધ કાઠિયાવાડ દેશમાં તો ચારણોનો વસ-
વાટ ચાલુ રહ્યો. પરંતુ ખારમી સદી પછી
ચારણ જાતિનો અધિકારો-શુદ્ધિમાન વર્ગ
પોતાની આરાધ્યા દેવી આવડ માતાના દર્શન
માટે કાઠિયાવાડ અને રાજપૂતાનાના બીજા
ભાગોમાંથી નીકળી જસગમેર રાજ્યમાં આવેલ
પોતાના આદિસ્થાન તેમજા પર્વતનાં
માર્ગે પશ્ચિમ રાજપૂતાનામાં વસવા લાગ્યો. એટલે

ત્યાં વસેલા ચારણ કવિઓ ત્યાંની જૂની
રાજરથાની ભાષામાં કવિતા કરવા લાગ્યા.

એ વખતથી ચારણ કવિઓની કાવ્ય-
ભાષાનાં દેશ-બેદને લીધે એ વિભાગ પડ્યા:
રાજપૂતાના, માળવા અને સિંધની પૂર્વ સરહદ
પર વસનાર ચારણ કવિઓની ભાષા જૂની
રાજરથાની કે ડિંગળને નામે, અને ગુજરાત
કાઠિયાવાડના ચારણ કવિઓની કાવ્યભાષા
સોરઠી કે ચારણ ભાષાને નામે ઓળખાવા
લાગી. જો કે એ બન્ને ભાષાઓની પ્રકૃતિ
એક જ છે, પરંતુ ડિંગળ ભાષા પર હિંદી
ભાષાની અને સોરઠી-ચારણ ભાષા પર
ગુજરાતી ભાષાની ખૂબ અસર છે, છતાં બન્ને
ભાષાની કવિતાઓ એક જ પ્રકારનાં જૂતો કે
જો 'ગીત' ને નામે ઓળખાય છે, તેમાં લંખાય
છે.

સોગમી સદી સુધીમાં તો એ બન્ને
પ્રકારની ચારણોની કાવ્યભાષા પૂર્ણ ઉન્નત
અવસ્થાએ પહોંચી; અને તેમાં તેનાં બોલેર
પ્રકારનાં 'ગીતો' ના પિંગળના તથા
રાજ-સંગ્રહનાં વિવિધ ગ્રંથો લખાયા. એ વખતે
દુદાનું સ્વરૂપ વર્ણસંગ્રાહ, ઝડઝમક અને
અન્ય અલંકારોથી સુશોભિત બની પૂર્ણતાએ
પહોંચ્યું. અને તેમાંથી નૈસર્ગિક ઉર્મિમયતા
ઓછી થઇ, નાદ-વલ્લવ વગેરે.

સોગમી સદી પછીથી રાજપૂતાનામાં વસતી
તમામ ચારણ જાતિ સરકોર-બેદે 'મારૂં'
નામે ઓળખાવા લાગી. અને રાજપૂત જાતિને

મુખ-દુઃખમાં અપૂર્વ સદાય આપવાને લીધે તથા કાવ્ય-શક્તિને બળે એ તમામ ગાદ ચારણો સારી સારી જગીરો ધરાવતા થયા. જગીરોના મદમાતા એ ચારણોએ કવિતા, મુદ્ધ અને રાજકાર્યમાં સત્તાદ આપવા સિવાય બીજા ધંધાને તિલાંજલિ આપી. તેમની રચનાઓમાં પણ દુહાનું સ્થાન તો મોખરે રહ્યું. છતાં કવિતાના શાસ્ત્રીય અભ્યાસે અથવા વધુ આરાધને તેમણે 'ગીતો' અને અન્ય છદો ઉપર વધુ હાથ અજમાવ્યો, અને એ ગીતોના તથા છદોના રચકારે તેમનો દુહાનો નાદ કંઈક ઓછો કરી નાંખ્યો. પરંતુ કાંઈવાણમાં અને તેમાંય સોરઠ વિભાગમાં વસનાર 'સોરઠિયા' અને 'પરજિયા' નામથી સંસ્કાર અને દેશ-ભેદે આજખાતા ચારણોએ કવિતા-દ્વારા માન અને જગીરો મેળવવાને બદલે પોતાના પરાપૂર્વના પશુ-પાત્રનના ધંધાને વધુ મંદસ્ત્ર આપ્યું. અને તેને ચાલુ રાખ્યો. એટલે તેમનામાં પરાપૂર્વના દુહા-પ્રેમ અખંડ ચાલુ રહ્યો. કારણ કે, ચારણજાતિ નૈસર્ગિક કવિત્રી હોવાથી ગમે તે ધંધો કરવા છતાં અને વિદ્યાભ્યાસ સિવાય પણ તેની કાવ્ય-શક્તિ નષ્ટ થઈ નથી. કવિતા તો એના લોહીમાં મળી ગયેલી છે. અને તેથી જ કાંઈ પણ ચારણ 'વણ પદિયો વાનું કવે' છે.

ચારણ જાતિને ધંધરે કાવ્ય-શક્તિની સાથે મીઠા કંઈની પણ બહોલ આપેલી છે.

સોરઠ દેશની સ્ત્રીઓના કંઈની પ્રશંસા તે પાણિનિ જેવા ધુરંધર વિદ્વાને પણ પોતાના આકરણમાં કરી છે. એ દેશમાં મુરમ કંઠવાળા ચારણોનો વસવાટઃ પછી પૂછવું શું ? મેરુગાચાર્યે પણ દુહા-વિદ્યાની સ્પર્ધા કરતા ચારણોને સોરઠના જ ગણાવ્યા છે, એટલે હંમચંદાચાર્યના વખતથી જ એ દેશના ચારણો દુહાની રચના તથા બોલવા માટે પ્રસિદ્ધ છે. અને ત્યાર પછી પણ ઉપર જણાવ્યું તેમ એમણે એ કળા સચ્છી રાખી છે. ચારણોના એક મુખેથી બીજે મુખે અને બીજેથી ત્રીજે એમ દમરો મુખે શૌર્યકથાઓ, પ્રેમકથાઓ, નીતિ-વાર્તાઓ અને જ્ઞાનઉપદેશના દુહાઓ રમતા ગયા. જેમ જેમ તેમની જીભની સરાણે એ દુહા ચડતા ગયા, તેમ તેમ કંઈસ્થ વૃત્તિને આવરણક તેનો નાદ-વૈભવ વધતો ગયો. એટલે કે, તેને મીઠી દલકથી બોલવા-ગાવાની અનુપમ કળા એ માલધારી ચારણોને સાધ્ય થઈ. અને તેથી જ દુહામાં પણ "સોરઠ રાં દુહો લાલો" એ કહેવત પ્રચલિત બનવા પામી.

કાવ્યસાસ્ત્રના જ્ઞાતા ચારણ કવિઓ જેવું ઔરવભર્યું સ્થાન શિષ્ટસમાજમાં બોગવતા આપ્યા છે. તેવું સ્થાન આ માલધારી ચારણો, તેમના સંગી-સાથી કાકી, આયર, રબારી, ભરવાડ અને મેરવગેરે માલધારી સામાન્ય લોક-સમાજમાં બોગવતા આપ્યા છે. અને પોતાની કંઈસ્થ વાણીનું

(અનુસંધાન પૃષ્ઠ ૧૪ ઉપર)

દેથાકુળ-ઉજળક સાધ્વી દેવી શ્રી આંબુબાઈનો જીવન-પરિચય

ચારણ જાતિમાં સમય સમય પર દેવી વિભૂતિસંપન્ન અનેક મહાશક્તિઓએ જન્મ લઇને તેને ગૌરવાન્વિત કરી છે. હિંદુસમાજની અન્ય જાતિઓને મુકાબલે ચારણ જાતિનો હિંદુ-સમાજ બહુ તેજસ્વી લેખાયો છે. અને તેથી જ ચારણો દેવાપુત્ર કે દેવીના બાળકો

(પૃષ્ઠ ૧૩નું અનુસંધાન)

મેમને રસારવાદન કરાવી એ લોકોને પણ તેમણે હા કંઈક રાખી બોલવાનો નાદ લગાવ્યો છે. જ્ઞાંતી મીઠી હલકથી ફુલો બોલવો અને ગાવો એ તો ચારણના આપનો છે. એ વાતની કાંઈથી ના કંઈ શકારો નહિ. દુહાને શું શૌર્યકથા કે શું પ્રેમકથા, શું નીતિ-ઉપદેશ કે શું ઉદ્બોધન રૂપે જનતાનો પ્રિય હૃદ બનાવવાનું માન ચારણોને છે. અને રહેશે. *

ગણાય છે. આજે પણ મારવાડમાં ખુડા ગ્રામ-નિવાસી દેવી શ્રી ઇંદિરાબાઈ રત્ન તેમની દેવી શક્તિ માટે સર્વત્ર પ્રસિદ્ધ છે. અત્રે ચરપારકર જેવા શુષ્ક પ્રદેશમાં લક્તિની વેલિ સજીવન રાખતાર એવાં જ એક વિભૂતિસંપન્ન સાધ્વી ચારણ બાઈનો દ્વંક જીવન-પરિચય. આપવા પ્રયત્ન કર્યો છે.

બહેન આંબુબાઈનાં પ્રથમ દર્શન મને ૩૨વર્ષ પૂર્વે તેમના ધર્મશુદ્ધ ૨૫૦ લક્તરાજ શ્રી મધારામજીની મંડળીમાં થયેલાં; અને ત્યાર બાદ સને ૧૯૦૧ની સાલથી મારી નોકરી ઉક્ત લક્તરાજના દીપલા ગામે, અને પછી મીઠી ગામે—જ્યાં ગાઈનો નિવાસ છે; ત્યાં ચરપારી બહેન સાથે પરિચય વધતો ગયો.

ધન્ય મારા પ્રભુને ! ક્યાં મારા જન્મ પાંચ-ચરણમાં ને બહેનનો ગદગ (થળ) માં ! ક્યો દેશ, કંઈ જાતિ અને ક્યા જન્મના સંસ્કાર ! મને લખનાં આનંદ થાય છે, જાણે અમે સર્ગા ભાઈ-બહેન ન મળ્યાં હોઈએ ? મેં જાણે કેટલાય જન્મોના વિખૂટા પડેલા ગહન સંબંધો તે આ રીતે પાછા જોડાયેલા અનુભવાય છે. વાહ પ્રભુ ! તમારી ગહન ગતિ છે.

બહેન સ્વભાવે માયાળુ હોવા ઉપરાંત પરાંપકારવૃત્તિ, પોતાની જાતમાં અને અન્ય જાતમાં બિલકુલ બેદરબાં ન રાખતાં આત્મવત્ત સર્વ મૂલેષુ-સર્વપ્રાણીઓને પોતાની પેઠે જોવાં, સર્વમૂલ હિતેતા-સૌનું હિત ચાહતું ઈત્યાદિ સદગુણસંપન્ન છે.

પ્રાકૃત્યમાં ઉદ્ભવિત ગુણોના આદર્શરૂપ આ બહેન ચરપારકર પ્રદેશમાં પાનાનો ધર્મ-મય શુદ્ધબક્ષિતનો પ્રમાણ પડીત જાકે-કલ્યાણની અદ્વૈતકી પ્રવૃત્તિ મેરી ન્હાં છે તેમના બક્ષિતમય જીવનની ઉપરના દેશવાનો સુઅવસર મારા હાથને પ્રાપ્ત થતાં સનેય અનુભવું છું.

જરવાદના આ જમાનામાં સાધુ-સતો અને સન્નારીઓનાં જીવનગતિઓના અભ્યાસની ખાસ અગત્ય છે. કેમકે તે વડે નિઃસ્વાર્થતા, ઉદારતા, નિઃપ્રયત્નતા આદિ સદગુણો જે તેમના જીવનમાં આત્મપ્રાપ્ત

થયેલા હોય છે, તેનું અનુકરણ કરવાને આપણને મદદ મળે છે. માટે તેવાં જીવન ચરિત્રો જેમ વધુ આવેલાય અને તેનો વધુ અભ્યાસ થાય તો સંસારી જીવોને લાભપ્રદ અને ઉપયોગી નીવડે એ નિર્વિવાદ છે.

બહેન આંખુબાધનો જન્મ વિ. સં. ૧૯૪૨ના ચૈત્ર વદિ ૧૦ ને દિને થળપ્રદેશ અંતર્ગત ગઢડાગામમાં, પિતા મૂળચંદ્ર ૨૧૩૫૬ન દેશ અને માતા ત્રીજાંબાઈની કૃપેથી થયો છે. એમનાં માતૃથી હળુ હયાંત છે. બહેનના એકમાત્ર ભાઈ નામે ખીંબરાજ તે ગઢડાની સ્કૂલમાં હેડમાસ્ટર છે. ભાઈને ત્રણ પુત્રો-નામે ત્રિલોક, રણમલ અને ભમરદાન છે. બહેનનું સાસરું અને દાક્ષીમાં નિવાસીમાં છે. તેમનું લગ્ન સં. ૧૯૫૧ના વૈશાખ સુદિ ૩ ના દિને થયેલું, પરંતુ ત્યાર પછી તથા જ વર્ષે સં. ૧૯૫૪ તથા સુદિ ૧ ને દિને તેમને વૈધવ્ય પ્રાપ્ત થયું. એ રીતે ૧૩ વર્ષની વયમાં જ બહેનનો સંસાર-વ્યવહાર સમાપ્ત થઈ ગયો. એમ માતો કે બહેનને માં સંસારનું સુખ નિર્મોલુ જ નહોતું. પૂર્વનાર આજ્ઞાનુગ્રહને લીધે જ જન્મનો પ્રસંગ હતો; અને પાછળથી સંસારની એ મોહજાલ જરવાથી તેમને લક્ષિતમય જીવન પ્રાપ્ત થયું.

બહેનના પતિ ભાનોજી દવારકોજી યુઅં જોના આરણુ હતા. તેમના અવસાનના બહેનનાં સાસરામાં વૃદ્ધ સાસુ, એક દિવર જે ગેજ અને નજીદ જાનુબાધ તથા નણુંદને

નિયમ છે. નિરંતર ભજનમાં મગ્ન રહે છે. તે જ્ઞાન મેળવીને બીજા બાધ્યોને જ્ઞાન ભવવાની સગવડ કરતાં રહ્યાં છે. નાનાં પરમાત્માનાં કામો પણ કરે છે. તેમના ઉત્તમ ચારિત્ર્ય પર લોકોનો વિશ્વાસ બેસી ગયો છે; જેને બિધિ આવો સારો વહીવટ તેઓ ચલાવે છે. ભક્તનામાં કાર્યદક્ષતા, તીવ્રબુદ્ધિ અને આત્મભજન સાથે વ્યવહારકુશળતા હોવાથી તેમની સમાગમમાં આવનારાઓને પણ તેઓ ધણાં સહાયશ્રુત થઈ પડે છે. તેમનામાં વિશિષ્ટ ગુણ એ છે કે, તેઓ સાક્ષિ નિર્લોભી ને નિઃસ્પૃહી છે. ‘શૃદ્ધશાસ્ત્રમમાં’ હતાં તે જ કપડાંમાં હાલ રહે છે; પરંતુ અંતઃકરણ ભક્તિથી રંગાયેલું છે. કોઈ પણ શુભ વિચાર મનમાં બેઠો તો તે પૂરો કરવામાં મનતાં લગી દીલ કરતાં નથી. નિરંતર પુરુષાર્થ-પરાયણ રહે છે. લોકો તેમને પૂજ્યભાવથી માને છે. પ્રભુસ્મરણ સિવાય અન્ય પ્રવૃત્તિ તેમને ગમતી જ નથી. તેઓ શુરસેવા-પૂજનમાં અડગ શ્રદ્ધાળુ છે. શુરનો પ્રદાપ માની તેમની જય બોલાવે છે. “મહાન પુરુષની દ્વાથી કે પ્રભુનો કૃપાકટાક્ષથી મનુષ્યને દુઃખની પાછળ ભક્તિરૂપી મુખ પ્રાપ્ત થાય છે. દુઃખ એ મુખની કંસોટી છે.” તેનો આબેહૂબ આ દાખલો છે. બહેનના સરશુર (ધર્મપિતા) ભક્તરાજ મધારામજી ભગવાનના અનન્ય ભક્ત હતા. આ દેશમાં ડંકાની ચોટે તેમની માન્યતા છે. સમગ્રે ગ્રહસ્થાશ્રમમાં જ રહીને પોતાની અનન્ય

ભક્તિ વડે ભગવાનનો સાક્ષાત્કાર કર્યો હતો. તેમના સ્વરૂપમાં પ્રભુએ આવીને તેમનું ઋણ ચૂકવી આપ્યું હતું અને અનેક પરચા પૂર્વા હતા. પૂર્વના પુણ્ય સંબંધે આવા સાચા સમર્થ સરશુર તેમને ઘેર ખેડાંજ મળ્યા હતા. શ્રી મધારામજીનું શરીર સં. ૧૯૬૮ ની સાલમાં પચત્વને પામ્યું. તે દેહોણે દીપકમાં દહેરી કરાવી ને તેમના તથા બહેનના ભાવિકજનો દરસાલે ત્યાં મેળો ભરી ઉત્તમ વ મનાવે છે. મીડીમાં બહેનની જગ્યામાં તેમનો ફોટો સ્થાપિત કરીને તે જગ્યા ઉપર ‘ભક્ત મધારામની કુટિયા’ એવું નામ રખાવ્યું છે. ત્યાં ભક્તરાજની આજ્ઞા-પ્રમાણે બહેનના આધિપત્ય તથા અહર્નિશ ભજનવાણી, કથાકીર્તન અને જ્ઞાનચર્યા થાય છે. એ ભક્તરાજ મધારામજીનું જીવનચરિત્ર તેમની ભજનમાળા નામક પુસ્તકમાં છપાયેલું છે. બહેન પોતે ઘણું બણેલાં નથી, પરંતુ ઘેર ખેડાં અવ્યાસ કરી; ગીતાજીની ભાષાટીકા, હિંદી ભાષામાં શ્રીમદ્ ભાગવત, અને તુલસીકૃત રામાયણ ટીકા સહિત વગેરે સરળ ધર્મગ્રંથોની કથા કરી શકે છે.

દૂકમાં તેઓ સૌનાં શુભેચ્છક હોઈ, સર્વ સાધારણ પ્રત્યે આત્મભાવજન્ય નિર્મળ પ્રેમ રાખી, અતિથિ સત્કાર અને ગૌ-સંતની સેવામાં તત્પર રહે છે. અને પશુપક્ષીનું દાણા-ચાંચાથી પોષણ કરવામાં આનંદ માને છે. તેમનું જીવન સર્વદા આદર્શમય છે.

બહેનનો ધર્મભાઈ

પીતાંબરદાસ અબ્દુનજી વારડ

નિવૃત્ત મામલતદાર, ધિરીશઃગવર્નમેન્ટ, મીડી (ઘરપારકર)



સેવા અને સંસ્થા



લેખક: શ્રી જયમહાદેવજી શિવદાનજી પાયક, લોદ્રાણી (વાગડ-૨૦૭)

મહાત્મા ભર્તૃહરિએ કહે છે:— સેવાધર્મ:
પરમ ગૃહનો ગૌર્ગામિણમ્યમ્ । અથોત
સેવાનો ધર્મ એટલો ગહન છે કે યોગીઓ
પણ તેને પૂરેપૂરો જાણી શકતા નથી.

સંસારનાં મુખેને માનવકલ્યાણ દ્વારા
આત્મકલ્યાણ સાધવા માટે તૃણવત
ગણી છોડી દેનાર યોગીઓ પણ સેવા-
ધર્મને સંપૂર્ણ સમજી શકતા નથી; તો
આપણા જેવા દુન્યવી લોકોની તો વાત જ
શી કરવી? છતાંય આપણા જીવનવ્યવસાયો-
માંથી સમય મેળવી જનસમાજનું, દરિદ્ર-
નારાયણોનું કલ્યાણ થોડે ઘણે અંશે પણ
આપણે જો કરી શકીએ તો જ માનવજીવનની
સાર્થકતા. આપણો મનુષ્ય તરીકેનો અવતાર
ફક્ત આપણી સુખ-સગવડો માટે નથી. આપણું
શાસ્ત્રોએ ત્યાગને મોટા ગણેલ છે. આપણે જો
દેશમાં જન્મ્યા, જો રાત્રિમાં કે કુટુંબમાં આપણો
જન્મ થયો, તે દેશ, રાત્રિ, કુટુંબ બધેકે દરેક
માનવી પ્રત્યે આપણી અમુક પ્રકારની-કરજ
છે. સમાજજનતાની આજ ગુણ ચાવી છે.
મહાત્મા તુલસીદાસે “ જીવ જીવ કે આસરે
જીવ કરત હૈ રાજ ” કહ્યું છે, તે પણ આવા જ
અર્થમાં.

મનુષ્યોને કુદરતમાંથી પણ સેવામાર્ગ
સૂચન મળી રહે છે. એક કવિએ કહેલ છે કે
સરવર, તરવર, સંતજન,
ચોથો ખરસે મેલ;

પરમ્પરથ કે કારણ,

ચારોં ધરિયા દેહ.

આપણું શાસ્ત્રો આવી નિઃસ્વાર્થ
સેવાઓના દાખલાઓથી ભર્યા પૃથ્વી પર
પોતાના ગણિદાનથી જમતું કલ્યાણ ધ-
હોય તો બલિદાન આપતાં માણસો અટકે
નથી. મહાત્મા દધીચિની કથા બધા જાણુ-
હશે. તે જ સાચી સેવા છે. જે સેવામાં જરૂર
સરખી પણ સ્વાર્થની ગંધ હોય તે સાચી
સેવા કહી શકાય નહિ. આત્મભોગ. આપ્ય
સિવાય કંઈ પણ સેવા કરી શકાતી નથી
એક કવિએ કહેલ છે કે:—

આત્મભોગ આપ્યા વિના,

કદી ન સુધરે કામ;

સગળે બળે દિવાસળી,

પ્રગટે દીપક ધામ.

આજની આપણી સમાજજનતાના પાપામ
અનેક પીર પુરોનાં જીવન હોમાઈ ગયાં હશે
કંઈ રાખ્ રવતંત્ર ધાપ તેટલા માં

અનેક આશાભર્યા યુવાનોએ બલિદાન આપેલાં હોય છે. દિંદુરથાન સ્વતંત્ર થાય એટલી જ ભાવનાથી માળાપ, સ્ત્રી-પુત્ર, નાનાં ભાઈ-બહેનો, મિત્રો, મુખ-સગવડો છોડી ફક્ત અમારો દેશ સ્વતંત્ર થાય, અમારા ભાઈઓને, અમારી બહેનોને પૂરતી રોટી મળે તે માટે આંદામાનના જીવતા નરક સમાન કારાગૃહોમાં જીવન પર્યંત સહતા, દાંસીને માંચડે ચડી જતા યુવાનોનો સાચો આત્મત્યાગ છે. તે જ સાચી સેવા છે.

સેવાપંથના એ દીક્ષાધારીને પોતાનું કે પારકું હોતું નથી. તેને મન તો “ સખી જમિ ગોપાલ કી, સખ ઈશ્વર કે બાલ ” એ ભાવના હોય છે. તેને માફ, સોરડિયા, પરજિયાઓના બેદોમાં અટવાવાનું હોતું નથી. અમુક કુળ ઝેર્યું કે અમુક કુળ નીચું, તે તરફ તેનું લક્ષ્ય પેણુ ન હોતું બોધ્યું; “ ચારણ એક ધારણુ.” કારણ કે:

“ ઇશ્વરે નરો ઉપાવિયો,

કૃષ્ણ ચોરાડો કીધ;

બ્રહ્મા ચુવો નિપાવિયો,

શાખાં તીનું સિદ્ધ.

સમસ્ત ચારણ જ્ઞાતિના હિતમાં જ પોતાનું હિત સમજનાર, તે હિત સાધવા માટે નિઃસ્વાર્થભાવે સેવા કરનાર જ સાચો સેવક છે. તેની સેવાનો તેને બદલો ભડે ન મળે, તેની સેવા ફળદાતા કદાચ ન પણ સાચ, પરંતુ

તેને મન તો ગીતામાં ભગવાન શ્રીકૃષ્ણે કહેલ કર્મણ્યેવાધિકારસ્તે. મા ફલેણુ કદાચન-ફળા કર્મ-કાર્ય કરવાનો જ પોતાનો અધિકાર છે; ફલદાતા ઈશ્વર છે એ વિચાર. આ પ્રમાણે “ હું ” ને બૂલી સેવા કરનારા કેટલા ચારણો છે? આજે કહેવાય છે કે અમુક અમુક ભાઈઓને ચારણોની સેવાની કોગની લાગી છે. તે લગની સાચી છે? સાચી લગની કેવી હોય તે બાબતમાં એક દુહો છે કે:

લગની લગની સખ કહે,

લગની કહાવે સોય;

‘ નારાયન ’ જેહિ લગનિ મેં,

તનમન ડારે ખોય.

આ પ્રમાણે આપણામાં છુપાઈ રહેલા અહંને આપણે ત્યાગી શકીએ, ચારણોના ઉત્કર્ષના પ્રશ્નોમાં અને ઉપાયોમાં તન્મય થઈ શકીએ, ત્યારે સાચી સેવા કરી કહી શકાય.

કેટલાક ચારણભાઈઓને ફક્ત ઉધરાવતાં કે જ્ઞાતિસેવાનાં ખીજાં કાર્યો કરવામાં પોતાની જાત હલકી થઈ જતી હોય તેમ લાગે છે. સેવામાર્ગને ગમે તેવું હલકું કાર્ય કરતાં સરમ ન આવવી બોધ્યું. અલગત તે આપણી નીતિ કે ચારિત્ર્યને બાધક ન હોતું બોધ્યું. કલકતા-કેમ્બ્રિજમાં મહાત્મા ગાંધીજીએ પાપખાનાં સાફ કરવાનું, અને એકવાડો સાફ કરવાનું કાર્ય કર્યું હતું. આથી મહાત્માજી હલકા બની ગયા નથી. આજે સમસ્ત વિશ્વમાં તેમનાં પ્રત્યે માનની લાગણીથી જોવાય છે.

આપણા હિંદુઓના ઈશ્વર મનાતા ભગવાન શ્રી મૃષ્ટે પછે મહારાજ યુધિષ્ઠરના રાજસૂય યજ્ઞ પ્રસંગે એકવાડનાં પત્રાણાં એકઠાં કરી ઉકેરડે નાંખવાનું કાર્ય માથે લીધું હતું.

સેવાનું કાર્ય શીખવા માટે પરદેશ જવાનું નથી, તેના માટે કોઈ શાળા કે કોલેજ નથી. આપણે માણસ છીએ તેથી બીજાં આપણાં-માઘ બહેનો પ્રત્યે આપણી ફરજ છે. એ ભાવની જાગૃતિ થવી અને તે ફરજ જાળવવા પ્રયત્ન કરવો તે જ સેવાનું શિક્ષણ છે.

આપણો આધુનિક સમાજ કેવો બની ગયેલ છે, તેનો આપણે વિચાર કરવો જોઈએ. સેવા માટે આ ક્ષેત્ર નાનું નથી. આપણા બીજા બંધુઓના દુઃખમાં ભાગ લઈ, તેઓનાં દુઃખ-દર્દી મટાડવા આપણાથી બનતું બધું કરવું જોઈએ. સેવા કરવાથી બીજાઓ સાથે આપણું પણ હિત સંધાય છે. કેમકે:

સેવા કીધે સાંપડે,

પરમ આશ્વના પાસ;

સેવા કરીએ સ્પહૃદી,

દાની ઘડતિ (જેમલ) દાસ.

ઘણી વખત એવું બને છે કે, સેવા કરવા ઈચ્છતાં સેવાયત્રમાં પોતાનો સૌંદર્ય રાજો આપવા બારતા ભાઈ કે બહેનને યોગ્ય ક્ષેત્ર મળી

શકતું નથી. પરંતુ હવે આપણે તેમ કહી શકીએ તેમ નથી. છેલ્લાં ચાર પાંચ વર્ષથી આપણી શ્રી ચારણ-હિત-વર્ધક સલાની અને તેના ફળ-સ્વરૂપ શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાસપતી સ્થાપના થયેલ છે. દરેક સુત. ચારણ ભાઈ-બહેનની ફરજ છે કે 'ફૂલ નહિ તો ફૂલની પાંખડી' આપણી આ મંસ્થા પ્રત્યે, જૂહાર યુગરાતની આપણી આ યતી સંસ્થાને પગભર ફરવા અને કાયમ ફરવા માટે તે યથાશક્તિ મદદ કરે. જે ભાઈઓ બીજી સેવા ન કરી શકે તે પોતાથી બની શકે તેટલી આર્થિક મદદ કરે અને બીજાંઓને મદદ કરતાં કરે તો તે પણ સાચી સેવા ગણાશે. જૂહાર યુગરાતમાં આપણાં પાંચ હળાર ઘર છે. ઘર દીક્રાને વાર્ષિક એક એક રૂપિયા મળે, તો પણ વાર્ષિક પાંચ હળાર રૂપિયા સંસ્થાને મળે. આ પ્રમાણે થાય તો આપણી આ સંસ્થાને અત્યંત જે આર્થિક મુશ્કેલીઓનો સામનો કરવો પડે છે, તેનો થોડો ધણે અંશે ઉકેલ થાય, અને તેટલી ગ્રહીત અને સમય મળતાં આપણા સમાજજીવનમાં પોલા સડાઓ દૂર કરી ભવ્ય ધમારત ચણવાનો આપણને સુઅવસર સાંપડે. જેવડે આ ગરીબ સેવકની અરજ છે કે:

૫૬

રાગ કલાધરો

(શ્રીમંતો વખત વિગારો એ રાગ)

ચારણ-હિત-સલાને સારો રે, સેવાનો આપણે ફાળો. રે
તન-મન-ધનને વચન થકી, નેન અમીએ ન્યાણો;

જીગરવાનો એ જ છે આરો, ચારણ-હિત-સલાને સારો.

પ્રેતભોજનને પોસ્ત પરવાના કામથી પરવારો;

ભૂંડપનો ફેંકી દો ભારો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૨

કન્યાવિક્રયનો ત્યાગ કરીને, સધવા સુધારો;

વિધવાનાં દુઃખ વિચારો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૩

ઝારિંગ ખુલી લણાયો બાળક, નીચતા નિર્ધારો;

પોતાની મહત્તા પાળો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૪

શંકર, જશકર્ણ, રામદાન શોભે, કારણ દિલકારો;

ફલો જ્ઞાતિ-દુઃખ દમનારો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૫

છવણ, નારણ, ખેતસિંહણ, મેડ માયાળો;

પાયકળને મંથ છે ખ્યારો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૬

સાહ્ય કરો ને કાર્ય સુધારો, 'જેમલ' ના ચારો;

આબ્યો હવે નજીકમાં ચારો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૭

‘ ચારણ ’ નો સત્કાર

ચારણ-સાહિત્યના મર્મજ્ઞ શ્રી અવેશ્યદ મેઘાણીના તત્રીપદે પ્રગટ થતું પ્રસિદ્ધ રાજસ્થાની પત્ર ‘ ફૂલછાળ ’ તેના તા. ૨૬-૬-૩૯ના અંકમાં લખે છે કે—

ચારણ કોમ વારસાને હાથ ધરે છે

‘ચારણ’ ત્રૈમાસિકનો મોડો મોડો પથ કોમ. સાહિત્ય પર જીવેલી, આગળ વધેલી ત્રીજો અંક હાથમાં આવે છે, અનિયમિતતા અને એને ભૂલી જતાં પાછી પડેલી એ મોટું દુઃખ થાય છે; પથ પાનાં ફેરે છે ચારણ કોમનું આ ત્રૈમાસિક અત્યારના અને દુઃખ ભુલાવે છે. સાહિત્ય જગતમાં પોતાનો એકડો નોંધાવવા આવે છે. એનો વર્તમાન ઇતિહાસ ઓછો છે; સંપ્રદાયની-સાહિત્યોપજીવી જનતાની આદિ કાલિને અત્યારના સાહિત્યિક જગતમાં આગળ

પડતું સ્થાન આપે તેવો નથી. પણ જૂતકાલીન ચારસો તો ગર્વ લેવા જેવો છે. જેની અત્યારના સાહિત્ય અને જીવન પર આછી ઘેરી છાપ પડી છે.

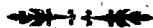
એ વિશિષ્ટ ચારસોને આ ત્રૈમાસિક ઉમેળતું આવે છે, એના પર ચડી ગયેલી ધુળને ઝંઝેટું એનું શુદ્ધિકરણ કરી પ્રગટ કરતું આવે છે. કામમાં થઇ ગયેલા અને અત્યારે પણ અધે ખૂણે પડેલા સાહિત્યજીવી અને શુદ્ધ સાહિત્યો-પાસકોનાં-શ્રી. ઝોપાજીઆદા, શ્રી. જાંજીદાસજી આસિયા, શ્રી. કેસરીસિંહજી ગારહક, શ્રી. સૂર્યમલ્લજી મિશ્રજી વગેરેનાં કાવ્યો આ અંકમાં રજૂ થયાં છે, સંગ્રહાયાં છે. એ ઉપરાંત આ તખ્તના અંકમાં તો વાઘા કોટડિયા જેવી ઐતિહાસિક વાર્તાનું પણ સંસ્કરણ થયું છે. કાવ્યો-લેખો સિવાય આગળ પડતા ચારણ કવિઓ, લેખકોના ટુંકા ટુંકા પરિચય પણ અપાયા છે.

હિંદી સાથે ગુજરાતી વિભાગ પણ છે. હિંદી તેમ જ ગુજરાતી વિભાગમાં જ્ઞાતિની અવદશા. તેનાં કારણો, તેનું નિવારણ-વગેરે

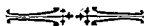
માટે ધણા લેખો છે. પણ ‘ચારણ’ ની વિશિષ્ટતા તો એના વેડફાઈ જતા અમોઘા ચારસાનું સંસ્કરણ કરીને સૂત્રાદી લેવામાં છે. એ ચારસો અનેક વિભાગોમાં, અને અનેક પ્રદેશોમાં પથ્યો છે. એ પ્રદેશને હાથ ધરી કામમાં અધારખૂણે બેઠેલ સાહિત્ય સમૃદ્ધિ.

‘ચારણ’ બહાર લાવશે, એ દ્વારા ચારસાથી વિશ્વપિત ચારણોની સાહિત્યશક્તિને માર્ગ અને વેગ આપતો ‘ચારણ’ એ કાર્પ જ્ઞાતિનું સુખપત્ર નહિ રહે, એ તો થઇ રહેશે સાહિત્ય જગતના એક વિભાગનું શાસ્ત્રીય સંપાદન, જેનું સ્થાન આધુનિક સાહિત્યસમાજમાં પણ વિશિષ્ટ રહેશે અને આધુનિક સાહિત્ય સમાજને પણ એને યોગ્ય સત્કાર આપવો જ પડશે.

છેલ્લા અંકમાં ચારણ જ્ઞાતિના ઇતિહાસ માટે થતી-તૈયારી જ્ઞાતિના ઇતિહાસ સાથે એમાં જૂતકાળમાં સાહિત્યોપજીવી સંસ્થાનો પરિચય બની રહેશે. અત્યારની સાહિત્યોપજીવી સંસ્થાને પણ એમાંથી મોંઘા નરીતતા. મળે, એ, યીતે, એ ઇતિહાસ લખાય તો એ એક સાહિત્ય જગતમાં નવી જ ભાત પાડી જશે.



તંત્રી-નોંધ



મેઘરાગ્ન મનાયા—

ચાલુ વર્ષે ચોમાસું ખેસતાં ખેડૂત અને માલધારી લોકો વરસાદની સારી આશા સેવી રહ્યા હતા. પણ અધિક શ્રાવણને લઇને કે ગમે તે કારણસર વરસાદે મોડી શરૂઆત કરી. લોકોની ચિંતા થોડા વખત માટે દૂર થઇ, અને વાવણીના કામે લાગી ગયા. વાવેતર પણ ઠીક ઊગી નીકળ્યાં. પરંતુ ફરી પાછા મેઘરાગ્ન રીસાયા અને પૂરા દોઢ મહીના સુધી સમરત પશ્ચિમ હિંદુસ્તાનમાં વચમાં લગારે મહેરબાની કરી નહિ. દિવસે પવન અને રાત્રે તારા નેઈ લોકો ભારે મૂંઝવણમાં પડી ગયા.

અધિક શ્રાવણ આખો કારો ગયો, એટલે લોકોને વરસાદની ઓછી આશા રહેવા લાગી. સુખી ખેડૂતોએ ઘરમાંથી દાણો કાઢવો અને ઘાસ-ચારો વેચવો બંધ કર્યો. સાધનવિદ્વાણુ ગરીબ ખેડૂતો અને માલધારીઓની સ્થિતિ ભયંકર થઇ પડી, ટકે ટકે દોર યેચાઇ ગયાં. માણસો મજૂરી માટે અમદાવાદ જેવાં મોટાં શહેરો તરફ લાગવા લાગ્યાં ચારણજાતિ પણ બૃહદ ગુજરાતમાં તો મુખ્યત્વે ખેડૂત અને માલધારી હોવાથી ગુજરાત અને કાઠિયાવાડનાં કેટલાંક ચારણ-કુટુંબો મુશ્કેલીમાં મુકાઈ ગયાનું અખબારોમાં આવેલું. પરંતુ આખરે મરતી મેદનીને બચાવવા માટે સાચા રાગ-મેઘરાગ્નએ પુનઃ પધરામણી કરી સૌની ચિંતા દાલ તરત તો મટાડી દીધી છે. જો કે જે લોકોનાં દોર-ઢાંપર તારાગ્ન થઈ ગયાં, તેમને તો કારો કાળ જ રહ્યો છે. છતાં ઓ મહેનત-મજૂર કરીને પણ પોતપોતાના માળામાં જરૂર રહી શકશે.

ઉપરા છાપરી આવાં નયજાં વર્ષો આવતાં હોવાથી માલધારી ચારણ બંધુઓએ તો ખૂબ ચેતનિ ચાલવાનું છે. પોતાના ગમ ઉપરાંત દોર ન રાખતાં ખેતી જેવો બીજો નેહિયો ધધો કરતાં શીખવું નેહિયો. નંદિ તો પછી કોઈ વખત

મેયું માગ ન દેતીયું, રૂંધતીયું આરા;

જળ જંખૂર તણાં, માણો મહિયારા ?

જેવો દુઃખદ પ્રસંગ ઊભો થઇ ખબેથી લાકડી હેડી મકરી પડી ! જે બંધુઓ ખેતી કરે છે, તેમણે પૂરા અમરીત બનવું નેહિયો. વાવણી દાગે મહેમાન બની વાતોમાં

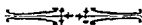
રોકવાનું કે લણણી ટાળે કાંઈ રાજપૂતને ત્યાં લગ્ન સાંભળી વગર નોંતરે ત્યાગ લેવાં દોડી જવાનું હોડી દેવું જોઈએ. 'નથી સ્વાદ પરાધીન શાળ મહી', જેવો સ્વાદ છે મેંનતના કણમાં, એ શ્રી દલા ભગતનાં વચન હમેશાં લેહ્યમાં રાખી મર્દની જેમ જીવતાં શીખવું જોઈએ. લિશ્નકવૃત્તિ કે પરાશ્રિત જીવન કરતાં માલધારી અને ખેડૂત તરીકેનું જીવન ઘણું આદરણીય છે. પરંતુ તેને જીવી જાણનાં આવડવું જોઈએ. "વા અને વરસાદ કાંઈના નથી" નહિતો !

ગ્રાહક બંધુઓને—

આ વર્ષે પ્રતિકુળ સંજોગોને લીધે 'ચારણ' અનિયમિત, અધુરું અને જનીય પ્રશ્નોની જીણવટ રજૂ કરતા લેખો વિનાનું લખું નીકળ્યું છે. છતાં આખે તેના ગ્રાહક બની અમને જે સાથ આપ્યો છે, તે બદલ અમે આપનો જેટલો આભાર માનીએ તેટલો થોડો છે. છતાં આપણા આ પત્રને સર્વાંગ સુંદર અને નિયમિત નીકળવું કરવા માટે જોછામાં જોછા પાંચસો ગ્રાહકો હોવાની જરૂર છે. એટલે આપ સૌ આવતે વર્ષે વધુ નહિતો એક એક ગ્રાહક વધારી આપો તો એ સહેજે જસો જેટલા ગ્રાહકો વધે. અલવરથી ભર્યું અને બોપાળથી દારકાં સુધી પથરાયેલી આપણી વિશાળ જાતિ માટે આ માગણી મોટી ન કહેવાય. પરંતુ તે પૂરી થવી આપ સૌના સાથ ઉપર અવલંબિત છે. બીજા બંધુઓને આપ સંમતની શંકા છે કે, પાંચ મહેમાન આપે છે તો એ આપણે બે રૂપિયા ખર્ચ કરી નાંખીએ છીએ. દર વર્ષે 'રાવળ-વેરા' ના પણ જોછામાં જોછા બે રૂપિયા આપણે આપવા પડે છે. તો શેરજેઠાં આપણને નાતની નવા-બૂની સાથે આપણા અતીત અને ગૌરવ અને સાહિત્યનો પરિચય કરાવી સમસ્ત જાતિને એક સાંકળે જોડનાર આપણા આ પત્રના લવાજમના બે રૂપિયા ખર્ચે તેમ નથી. તેની સાથે લખી વાંચી જાણનાર બંધુઓ વધુ નહિતો આપણા મદવાડાંના સમાચાર પણ લખી મોકલતા રહે તો સમસ્ત જાતિને એક સૂત્રમાં બાંધવના અમારા મનોરથ પૂરા થઈ, આપણા પુરાતન આદર્શ 'ચારણ એક, ધારણ' ની નાટક આપણે પહોંચી શકીએ. કાંઈ પણ દેશ અધવા-જાતિની જાગૃતિમાં પ્રવેશોને જેટલો દિરસો છે, તે આપનાથી અગત્ય નથી. વળી જનીયતાની રક્ષા કરવા માટે પણ હવે પક્ષ-પ્રથા નાણું થવાથી આવા જાતીય પત્રની ખાસ અગત્ય છે. ધારો કે, કાંઈ મદવાડાંમાં કાંઈ બંધુ એવું જરૂર કામ કરવા જિસો યાય કે જેથી સમસ્ત જાતિને નીચું ધાલવું પડે તેમ હોય, તો તેને તેમ કરતો રોકવા માટે કાલદાની દૃષ્ટિએ આપણે કાંઈ પણ ન કરી શકીએ. પરંતુ તેને મનુષ્યોચિત શરમમાં નાંખી રસ્તે ચલાવવામાં આપણા આ મુખપત્રને સંમળ

સાધન તરીકે જરૂર પૂરવાર કરી શકીશું. તેની સાથે જાતિને આદર્શ રૂપ તીવરે તેવા કાર્યના સમાચાર પણ આપણે એ દ્વારા ફેલાવી શકીશું.

ત્રીજા અંકમાં જણાવ્યા મુજબ અમે અમારા પદનું રાહનામું આપ્યું હતું. પરંતુ આપણા નેતાઓનો આગ્રહ થયો કે ગુજરાતી વિભાગ અધ્યક્ષ જરૂર. તેથી અગવડ વેડીને પણ અમે સહકારી તંત્રી તરીકે ચાલુ રહેવું ઉચિત માન્યું છે. આવતા વર્ષથી 'ચારણ' સંચિત નીકળશે. તેનો પ્રથમ અંક આપણા સળગતા જાતીય પ્રશ્નોની જણાવટ રચી કરતા કુલીન-શાહી, પ્રેતબોજનની પારાવણ, રખડુની રોજનિશી જેવા અભ્યાસપૂર્ણ લેખોથી સર્વાંગ સુંદર અને વિજ્ઞાનશીખી પર સમયસર પ્રકટ થશે. તો આપ સૌ આવતા વર્ષે ગ્રાહક તરીકે ચાલુ રહી આપનું લવાજમ આ ચોથો અંક મળે કે તરતજ મનીઓર્ડરથી 'ચારણ' ના મેનેજર પર મોકલી આપશો, એવી આશા છે. વીં પીં થી નાહક ચાર આના આપને વધુ આપવા પડશે, તે અમને કે આપને કાંઈ રીતે હિતાવહ નથી. વળી આપના ઉપર મોકલેલું વીં પીં આપ પાછું વાળો તે પણ આપને શોભારપદ નથી. વધુ શું ?



સમાચાર-સંગ્રહ

૧૯૪૫-૪૬

ચાલુ સાલે મુંબઈ યુનિવર્સિટી તરફથી લેવાયેલી ઈટર. આર્ટ્સની પરીક્ષામાં વાળો-વડવાળા શ્રી અણ્ણતસિંહ રામસિંહ દેયા અને મોહનદાસ શ્રી પ્રતાપસિંહ તેજમાસ દેયા તથા મેટ્રિકની પરીક્ષામાં ચરાડાવાળા શ્રી કળિદાસભાઈ બાટીના સુપુત્ર શ્રી રિત્વિરસભાઈ અમે શિયોદવાળા શ્રી અંકુલાસ દાદાભાઈ વરસગ પસાર થયા છે. એ ચારે બધુઓને તેમણે મેળવેલી રૂતબ અદલ અમારાં અભિનંદન.

ચરાડાવાળા શ્રી કળિદાસ દાસાભાઈ બાટીની ચાલુરમા તાલુકા સ્કૂલના હેડમાસ્તર પદેથી કરી મદાસ સાગાધિકારી તરીકે અદલી થઈ, તથા પાંજા વિજયપુર મદાસ ગોઝારિયા વિભાગ સાગાધિકારી તરીકે તેઓ અદલાયા છે.

સિંધાવદરવાળા શ્રી નારણભાઈ મેકરભાઈ મેદડિયા, બીએન્ની કોલેજની વખારિયા

પદાર્થોલભાઈ અધ્યાપક તરીકે નિમણુંક થઈ છે.

તા. ૧-૧-૩૬ના રોજ ના. ૭૭ મસ સાહેબ શ્રી દિગ્વિજયશિલ્પી ધ્રોણ પધારતાં 'હરધોળ-ગરાસિયા-સમાજ' તરફથી ધ્રોણનરેશને પ્રમુખપદે તેમને માનપત્ર આપવાનો મેળાવડો થયેલો, તે પ્રસંગે કાળાવડવાળા શ્રી માવદાનજી રતનને "કચ્છ-કાઠિયાવાડ-ગુજરાત-ગરાસિયા એસોશિએશન" તરફથી ૭૭ મસ સાહેબને હસ્તે, તેમણે જળવેલી ક્ષત્રિય સમાજની સેવા ગદ્ય મુવર્ણવ્યવસ્થા અપાયાં હતો. અને ના. ૭૭ ધ્રોણનરેશ તરફથી ૨૦૧૫ રૂપિયાનું વપાસન ખાંધી આપવામાં આવ્યું છે.

શ્રી માવદાનજીને અમારાં અભિનંદન. તેમની કદરમાં અમે સમસ્ત ચારણજીતિની કદર સમજીએ છીએ પરંતુ તેઓ આ કદરનો ઉપયોગ પ્રિય જીવન-સંગી રાજપૂત જ્ઞાતિના રાજવીઓ અને ગિરાસદારોને ચકાવી મારવામાં ન કરતાં સાચો ચારણધર્મ જાળવી તેમની પ્રજાનાં સુખદુઃખ જાણવામાં કરશે, એવી આશા છે. રંગ રાંભા! રંગ બાદશાહ! એવી મિથ્યાપ્રશંસાનો યુગ હવે આઘમ્યો છે. નવયુગના ક્ષત્રિયો અને ચારણોને તેની સ્થૂં પેદા થઈ છે. એ વાતથી તેઓ અગ્નિયુ તો નહિ હોય. તેમના કેટલાક વ્યક્તિગત વિચારો સમસ્ત ચારણ જ્ઞાતિના વિચારો, તરીકે રજૂ થતા હોવાનો જનતાને ખ્યાલ અધારો હોવાનું અમારો જાણવામાં આવ્યું છે તે ખાતે તેમને વિનંતિ કે, ચારણ જ્ઞાતિની ઈર્ષજનતાને ખાતર તેઓ અવિધમાં એવું ન કરે.

ગ્રાહક બંધુઓને સૂચના

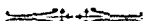
આવતા વર્ષે 'ચારણ'ના ગ્રાહક તરીકે ચાલુ રહેવા માટે અન્યથા વિનંતિ કરવામાં આવી છે. છતાં જે લોકોએ ગ્રાહક તરીકે ન રહેવું હોય તેમણે આ ચોથા અંક મેળે કે તરતજ અમને એક કાર્ડ લખી તેની સૂચના આપવી. નહિ તો બીજા વર્ષના પહેલો અંક તેમના ઉપર વી. ૦ પી. ૦ થી મોકલવામાં આવશે. અને પછી તેઓ વી. ૦ પી. ૦ નહિ સ્વીકારે તો તેમનાં નામ અમારે દિલ્લીગીરીપૂર્વક 'ચારણ'માં જોડેર કરવાં પડશે.

મેનેજર "ચારણ"

વખારિયા-હાલરૂંડ કલોલ (ઉત્તર ગુજરાત)

આપને તરીકે જરૂર પૂરવાર હરી શકીશું. તેની સાથે જનિતે આદર્શ રૂપ તીવરે તેવા કાર્યના સમાચાર પણ આપણે એ દ્વારા ફેલાવી શકીશું.

ત્રી ન અંકમાં જન્માત્મા મુજબ અમે અમારા પદનું રાજનામું આપ્યું હતું. પરંતુ આપણા નેતાઓનો આગ્રહ થયો કે મુજબની વિભાગ બંધ થઈ જાય. તેથી અગત્ય પેટીને પણ અમે સદકારી તરીકે નરીકે ચાલુ રહેવું ઉચિત માન્યું છે. આવતા વર્ષથી 'ચારણ' મચિત નીકળશે. તેનો પ્રથમ અંક આપણા સંગમના જનનીય પ્રરોધની જન્મપટ રજૂ કરતા ફૂલીન-ગાર્ડી, પ્રેમજીવનની પારાપણ, રમણની રોજનિરી જેવા અવ્યક્તપૂર્ણ લેખોથી સંપૂર્ણ સુંદર અને વિજ્ઞાનસભી પર મજબૂત પ્રકટ થશે. તે આપ સૌ આવતા વર્ષે માદક તરીકે ચાલુ રહી આપનું જવાબદાર આ ચોથા અંક મળે કે તરતજ મનીઓર્ડરથી 'ચારણ'ના મેનેજર પર મોકલી આપશો. એવી આશા છે. ત્રી ૦ ૧ી ૦ થી નાદક ચાર આના આપને વધુ આપવા પડશે, તે જમને કે આપને કાલ રીતે દિતાવડ નથી. જગી આપના ઉપર મોકલેલું ત્રી ૦ ૧ી ૦ આપ પાછું વાળો તે પણ આપને ફાભારપદ નથી. વધુ શું !



- ३६ श्री रामदानजी, जोधपुर
 ३७ ,, लालजी चौबे, मथुरा
 ३८ ,, सुमेरदानजी वणसूर, पारलाड
 ३९ ,, अंबादानजी रन्, जोधपुर
 ४० ,, जयकरणजी, टाँठवा
 ४१ ,, सुमेरदानजी बारहठ, बाटमेर
 ४२ ,, गुगारिदानजी कविशो, बी०ए०, जोधपुर
 ४३ कविराजा सा० श्री दुर्गादानजी
 महियारिया, कोटड़ी
 श्री शैलतसिंहजी महड, कोटड़ी
 ,, हेतुदानजी सा० उज्जल, एम०ए०,
 एल्-एल्०बी०, सोजत
 ,, भारतदानजी बारहठ, ईंटदड़ा
 ,, रामकरणजी, साचौर
 हरलालजी, डेगना
 आशकरणजी बारहठ, ईंटदड़ा
 कल्याणसिंहजी हवलदार, बेंगलोर
 (दक्षिण भारत)
 ,, भुरदानजी बारहठ, यड़ी गारी
 कविराजा सा० तेजनिहजी आशिया, जोधपुर
 ,, संभुदानजी, सिवाणा
 अर्जुनसिंहजी, बी०ए०, एन्-एल्०बी०,
 सोजत
 महेंद्रसिंहजी सा० राणावत, बी०ए०, बैदी
 सबलदानजी, सोजतराड
 जनरामजी उज्जल, जोधपुर
 गंगाविदानजी, मारवाड जंकान
 पाचुदानजी, भीनमाल

- ६० श्री हर्षनदानजी, चारणवास
 ६१ ,, जोरावरसिंहजी महड, बैदी
 ६२ ,, मूलकरणजी वणसूर, पारलाड
 ६३ ,, मदनसिंहजी महड, बैदी
 ६४ ,, श्रीमती इंदुबाई सा० रन्, रुदद
 ६५ स्व० श्री शंकरदानजी वणसूर, पारलाड
 ६६ श्री अमरदानजी पाण्डवत, हर्षतिया
 ६७ ,, मन्वदेवजी आडा, एम०ए०,
 एल्-एल्०बी०, जोधपुर
 ६८ ,, रुड़दानजी बारहठ, तुरकियावास
 ६९ ,, संभुसिंहजी, जयपुर
 ७० ,, बालाबहादुरजी बारहठ, रत्नपुरा
 ७१ ,, सुमानसिंहजी, सेनाणा
 ७२ रा० ब० ठा० सा० श्री फतहसिंहजी
 कृपावत, भांसाप
 ७३ श्री प्रतापसिंहजी, पटोली
 ७४ ,, अमरदानजी बारहठ, टेला
 ७५ ,, धनसिंहजी, बिलाड़ा
 ७६ ,, शंकरसिंहजी बारहठ, राजगढ़
 ७७ ,, रणवीरसिंहजी, लूणी जंकान
 ७८ ,, पनेदानजी, गड्डाराड
 ७९ ,, मोमदानजी, मिरासूर
 ८० ,, दुर्गादानजी महियारिया, राजपुर
 ८१ ,, रामसिंहजी भादा, सारवाणिया
 ८२ टा० सा० श्री देवीसिंहजी बारहठ,
 मूंदियाड
 ८३ श्री मैतसिंहजी दधिवाडिया, जोधपुर
 ८४ ,, पीरदानजी महड, मऊ

૧૭૫ શ્રી કાળાભાઈ સાદૈયા, વાંકાનેર
 ૧૭૬ ,, લાલસંગજી રોહડિયા, સિધાવદર
 ૧૭૭ ,, રવાભાઈ આરટ. ધુનાનું, ગામ
 ૧૭૮ ,, જીવાભાઈ શામળ, ગાંગડ
 ૧૭૯ ,, દાજીભાઈ લાળસ, કરાંચી
 ૧૮૦ ,, જગજીવનજી, કાળાવડ
 ૧૮૧ ,, પ્રતાપસિંહજી નાંધુ, નરસંગ
 ૧૮૨ ,, ભલુભાઈ કુનડા, કનીપુર
 ૧૮૩ ,, જીવજીલાલજી વરસડા ભાદરવા
 ૧૮૪ ,, કાગિદાસભાઈ બાટી, ચરાડા
 ૧૮૫ ,, ભગવતદાનજી રોહડિયા, રોરડી
 ૧૮૬ ,, કાગિદાસજી આરટ, રાવળ
 ૧૮૭ ,, અમરસિંહજી બાટી, ધવાવ
 ૧૮૮ ,, ચકુભાઈ આરટ, સવાણા
 ૧૮૯ ,, નારણભાઈ ભોગાત
 ૯૦ ,, નારણભાઈ બાલિયા, જનમનગર
 ૯૧ ,, અભેરાજજી દેયા, બાળિયા
 ૯૨ ,, મુળભાઈ મળિયા, રાજકોટ
 ૯૩ ,, કૃષ્ણસિંહજી મહેડુ, કાસિંદ્રા
 ૯૪ ,, મંત્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય,
 ભાવનગર
 ૯૫ ,, ઉદયરામજી શામળ, મુંજ
 ૯૬ ,, ગોપાળજી રોહડિયા, મુંજ
 ૯૭ ,, શક્તિદાનજી શામળ, ગટકા
 ૯૮ ,, પદાભાઈ બોગેસા, મુળી
 ૯૯ ,, ધનરાજજી સાંગો, જાડલા
 ૧૦૦ ,, જીવોભાઈ પાંડરશિંગા, પોલીમ
 સમર્થ-સ્પેક્ટર વીરમગામ,

૨૦૧ દરબાર શ્રી ગોપાળસિંહજી સાંબડેમ
 ગણોદ
 ૨૦૨ કવિશ્રી રામદાનજી ટાપરિયા, વાવડી
 ૨૦૩ શ્રી હરદાનેભાઈ નેરેલા, ભાવનગર
 ૨૦૪ બોરોણાના ચારણ ડાયરા સમસ્ત,
 હાલ શ્રી રામરવભાઈ રોળા, બોરોણા
 ૨૦૫ શ્રી શિવજીલજી બ્રહ્મભટ્ટ, મહેસાણા
 ૨૦૬ ,, જીવાભાઈ આરટ, વીરવદરકા
 ૨૦૭ ,, મેળુભાઈ આરટ, વીરવદરકા
 ૨૦૮ ,, મેળુભાઈ આંદણી, અમદાવાદ
 ૨૦૯ ,, જાંબડી ગામના ચારણ જગીરદારો,
 હાલ શ્રી મુળભાઈ રતુ, જાંબડી
 ૨૧૦ શ્રી હિમાભાઈ ટાપરિયા, વઢવાણ
 ૨૧૧ ,, કેશરદાનજી નાટી, ઢેલાલ
 ૨૧૨ નાં રાણા સુવરાજશ્રી ધંધ્રાસહજ
 સાંબડા, લખતર
 ૨૧૩ ,, શ્રી જશકરજી રતુ, પોરણદર
 ૨૧૩ ,, મુળજીભાઈ વદ, અમરેલી
 ૨૧૪ ,, કાનજીભાઈ લીલા, વંડીયા
 ૨૧૬ ,, મોંધાભાઈ સાંગાવદરા, ઘાટકોપર
 ૨૧૭ ,, અજાદાનજી મોડ, રાણેસર
 ૨૧૮ ,, પૂંજભાઈ મોડ, રાણેસર
 ૨૧૯ ,, મોડભાઈ મોડ, રાણેસર
 ૨૨૦ ,, રૂંજભાઈ આરટ, સરી
 ૨૨૧ ,, જીભાઈ મહેડુ, કોચરિયા
 ૨૨૨ ,, રૂપશીભાઈ આટયા, આવળા

२२३ श्री मोडभाई मोड, सरी	२३८ ले० कर्नल श्री सरदारसिंह सा०
२२४ ,, त्रिकमवाड आदी, अमदावाद	गोदिल, लावनगर
२२५ ,, अहोलांछ मोड, अमदावाद	२३९ ना० हरार श्री रामबाणी सा०
२२६ ,, नानुबाह आदी, इलोव	अमसरा
२२७ ,, प्रतापसिंह आदी, इलोव	२४० ले० कर्नल श्री नोरावरसिंह सा०
२२८ ,, इपशीभाई आदी, इलोव	गोदिल, दिवान, पन्ना (खुद्दसिंह)
२२९ ,, तेगभाह आदी, इलोव	२४१ राजा श्री चंद्रसिंह सा०, रायपुर
२३० ,, तेगभाह इमरिया, सरहद	२४२ श्री प्रथ्वरत्न सा०, रतन, विराटनगर
२३१ ,, अमोसिंह भोज, इंड	(अंगणा)
२३२ ,, प्रतापदान नांधु, वरसोणा	२४३ ,, यडीदान, घांटीसा
२३३ ,, जगन्नाथ नांधु, वरसोणा	२४४ ,, प्रथ्वरत्न देवडा, मीरुनाडा
२३४ ,, प्रथ्वरत्न सांदाय, देवराय	२४५ ,, जगन्नाथ आदी, इलोव
२३५ ,, देशणसिंह, कापल, अमदावाद	२४६ ,, नारथुभाह गोडिया, गी० अ०
२३६ ,, अष्टसिंह देवा, वागोव	सिंघावद
२३७ ,, हाथभाह आदी, इलोव	२४७ ,, कान्हा मोरारजी, नागलपुर दी०

इस तरह प्रारंभ से लेकर ता० १-१०-३५ तक कुल २४७ प्राहक हुए हैं, जिनके नाम उपर दिए गए हैं। उपर्युक्त नामावली में गलती से किसी राजन का नाम, खोप या निवास-स्थल अशुद्ध दिया गया हो तो कृपया चे इसकी हमें सूचना दें। इस विषय में एक शिकायत है कि 'वारहट' उपाधि हमारी समस्त जाति की मान्योपध होने पर भी जहाँ तक हमको मालूम है, अपने नाम के साथ ही इसका उपयोग सिर्फ 'सौदा' एवं 'सिंहडिया' गोत्र के कारण ही कर सकते हैं। हम हालत में इनसे अन्य गोत्र के कई सजातीय प्राहक बंधु अपने नाम के साथ अपना गोत्र न लिखकर 'वारहट' उपाधि लिखते हैं, यह अनुचित है। यही नहीं, कई तो केवल अपना नाम ही लिखते हैं, इससे यह समझना भी कठिन होता है कि वे कारण हैं या राजपूत। यही कारण है कि ऊपर कई नाम विपक्षना हमको निरं ही देने पड़े हैं। आशा है, आइए प्राहक होनेवाले सजातीय बंधु अपने नाम के साथ अपना गोत्र-खोप भी लिखने की कृपा करेंगे।

जरा इस ओर ध्यान दें

राष्ट्रभाव को जागृत करने के लिये बंगालियों ने बंगला भाषा के प्रसिद्ध कवि श्री विजयलालजी की अध्यक्षता में एक 'चारण-दल' स्थापित किया है। हमारे जन्मजात चारणबंधु इसका रहस्य गमझकर-नवयुग के चारण-धर्म को कंधे समझने लगेंगे।

अ० सा० श्री किशोरसिंहजी बार्हस्पत्य की अमामयिक मृत्यु के कारण उनके संपादकत्व में निकलनेवाला 'राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी' (कलकत्ता) का त्रैमासिक मुखपत्र 'राजस्थान' बंद हो गया था वह विगत जुलाई मास से 'राजस्थानी' नाम से ४ रुपया वार्षिक मूल्य पर पुनः बड़ी सज्जधन के साथ निकलने लगा है। राजस्थान के इतिहास, संस्कृति, कला एवं साहित्य-दिंगल-साहित्य से प्रेम रखनेवाले प्रत्येक चारण बंधु से हम माग्रह अनुरोध करते हैं कि वह इसका ग्राहक बनकर उसके संपादक-प्रकाशक का उत्साह बढ़ावे। पता-मंत्री, राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी, ७३ ए. चासाबाबापाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता।

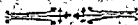
राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी (कलकत्ता) की ओर से 'राजस्थान' के लोकगीत नामक अपूर्व संग्रह-ग्रंथ का प्रथम भाग (पूर्वाद्ध-उत्तरार्द्ध) प्रसिद्ध हुआ है।

ग्राहक बंधुओं से

आखिर लज्जापूर्वक यह निवेदन करना पड़ता है कि, 'चारण' के दूसरे एवं तीसरे अंक की छपाई के लिये हममें से गुजराती विभाग के संपादक के कर्मी में कि जहाँ इस समय 'चारण' छपता है, २५ दिन टहरकर परिश्रम करने पर भी तीसरे अंक में बी हुई सूचना के अनुसार यह चौथा अंक समयसर प्रसिद्ध न हो सका। इसके उपरान्त लड़ाई के कारण कागज एवं मर्हेंगे हो जाने से दूसरे वर्ष की छपाई के कुछ दिन पूर्व निश्चित किए हुए रेट के बारे में कुछ झगड़ा उठा था और अब दीपोत्सवी पर प्रेम-मालिक एक सप्ताह तक बाहर जा रहे हैं। इससे दूसरे वर्ष के प्रथमांक का छपना दीपोत्सवी के दूसरे दिन से शुरू होगा और एक मास में यह ग्राहकों की सेवा में पहुँच जायगा। कागज मुर्य मर्हेंगे हो जाने से दूसरे वर्ष से 'चारण' का मूल्य चित्रशतया २॥) रुपया रखना पड़ा है। अतएव म० अ० से वार्षिक-मूल्य भेजनेवाले ग्राहकबंधु २॥) रुपया ही निम्न पते पर भेजें।

मनेजर, 'चारण' पा० कलाल
B. B. C. I. Ry (उत्तर गुजरात)

“चारण” के नियम



‘चारण’ वर्ष में चार बार विजयादशमी, पक्षतपचमी, अक्षयतृतीया और दशवधन पर प्रकाशित होगा।

चारण जाति की सर्वांगीण उन्नति के साधक लेखादि के साथ समयानुकूल अन्य विषयों के लेखादि को भी ‘चारण’ में स्थान होगा।

‘चारण’ में छपने के लेखादि का सदा काफी हाशिया छोड़कर कागज के एक ही ओर शुद्ध एवं स्पष्ट लिखा होना जरूरी है। दो लाइनों के बीच में भी जगह काफी होनी चाहिये, ताकि करेकशन आदि किया जा सके।

‘चारण’ में छपने के हिंदी भाषा के लेखादि डा० ईश्वरदान आशिया, ग्राम-वेगदिया, डा० नाथदारा (मेवाड़-राजपूताना) के एवं गुजराती भाषा के लेखादि श्री जेत्तसिंह नारायणजी मिश्रण (गढवी) ग्राम-मुढेरा, पो० वडावली (उत्तर गुजरात) के पते पर भेजने चाहिये।

प्राप्त लेखादि तभी वापस किये जायेंगे जब इसके लिये डाक-पत्र प्राप्त होगा।

बिना नाम के लेखादि नहीं छपे जायेंगे, परंतु कोई अपना नाम न छपवाना चाहें तो वैसा लिख दें।

वार्षिक मूल्य दो रुपये होगा और यह सर्वथा अग्रिम लिया जायगा। ग्राहक पो० पी० से ‘चारण’ न मंगाये, क्योंकि उसमें डाकमदखल ज्यादा लग जाता है और रुपये मिलने में भी देर होती है। वार्षिक मूल्य सीधे मनीऑर्डर से भेज देने पर ग्राहकों की भी वचत होती है और हम लोगों का भी सुविधा होती है।

‘चारण’ के ग्राहक बनने एवं वार्षिक मूल्य भेजने आदि प्रबंध-संबंधी लिखापदी आदि श्री नारणभाई रोहदिया, अध्यापक-बखारिया-हाईस्कूल, पो० फलेल (उत्तर गुजरात) के पते पर करनी चाहिये और किसी अंक के न मिलने पर भी उन्हें लिखना चाहिये। इस विषय में प्रकाशक से बिलकुल लिखापदी न करनी चाहिये।

पत्र-व्यवहार के समय ग्राहकों को अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये और जवाब के लिये टिकट भेजना चाहिये।

श्री किशोर-स्मारक-श्रद्धांजलि-ग्रन्थ

विद्वद्भ्यः स्व० ठाकुर किशोरसिंहजी चार्हस्पत्य, स्टेट हिस्टोरियन-पारगर्नमेंट, चारण जाति के समुज्ज्वल रत्न थे। आपने सम्मेलन के 'चारण' का कुशल संपादन करके चारण जाति ही नहीं, इतिहास की भी महान् सेवा की है। आप सार्वदेशिक ख्याति के व्यक्ति और इसके उद्भूत विद्वान् थे। आपके राजपूत-इतिहास संबंधी सर्वथा में गवेषणापूर्ण एवं चिंतनीय विचारों पर भारतीय और विदेशी इतिहास ग्रंथमुग्ध हैं।

आपका हिन्दी, गुजराती, अपभ्रंश, संस्कृत, पाली, प्राकृत, मागधी भाषाओं पर अद्वितीय अधिकार था। आप अंग्रेजी एवं इतर भाषाओं विद्वान् ही नहीं, डिंगल भाषा और साहित्य के विशेषज्ञ और उत्कृष्ट थे। आपके स्वर्गवास से चारण जाति ही नहीं, राजस्थान की महान् हानि है, जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में होनी कठिन है। चारण जातियों तथा राजस्थानियों का कर्तव्य है कि स्व० विभूति की स्मृति स्थायी बनाने के लिये वे कुछ ठोस कार्य करें। अतः अखिल भारतीय सम्मेलन और राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी (कलकत्ता) ने निश्चय वि कि सम्मिलित रूप से उनकी पुण्य स्मृति में एक स्मारक-ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय। उस ग्रन्थ में उनके संस्मरण और विविध लेखों तथा कविता का संग्रह भी रहे।

ठाकुर साहब के परिचितों, मित्रों और गुणानुरागियों से निवेदन कि वे उनके संबंध में अपने संस्मरण, श्रद्धांजलियाँ तथा लेख-कविता निम्नलिखित किसी एक पते पर शीघ्र भेजने की कृपा करें।

उक्त निश्चय को सफल बनाने के लिये प्रत्येक चारण और चारणसभ्य से विनम्र प्रार्थना है कि यह इस पुनीत कार्य के लिये यथा शीघ्र आर्थिक सहायता भी करें। ता० १-६-३९